# बौद्ध तथा जैनधर्म

[ धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के परिप्रेक्ष्य मे तुलनात्मक अध्ययन ]

डा महेन्द्रनाथ सिंह
एम ए पी एच डी
प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग
उदयप्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी



विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी

BAUDDHA TATHA JAIN DHARMA

BUDDHISM AND JAINISM

A Comparative Study of

Dhammapada and

Uttaradhyayan Sutra

by

Dr M N Singh

1990

ISBN 81 7124 036 4

The publicat on of th s book w financ ally support d by
the Indian Cou cil f H stor cal Research Delhi and
the respo s b lity for th f ts st ted pi ons
p essed o ncl s ons rea hed
ntirely that of the uthor d the
I d an ( ouncil of H storical
Resear h h no
respons b l ty

प्रथम सस्करण १९९ ई
मल्य ११ रुपये

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी
मुद्रक
शीला प्रिण्टस लहरतारा वाराणसी

पूज्य माता पिता

के

श्रीचरणो मे

सादर

# प्राक्कथन

सभ्यता के इतिहास म धर्म का बहुत ही महत्त्वपूण स्थान रहा ह। इहलोक और परलोक दोनों से सम्बन्धित जीवन के प्राय सभी कायकलाप धर्म से प्रभावित होत रहे हैं। लोकतात्रिक भावना विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने अवश्य इसके प्रभाव म कमी की है लेकिन आज भी बहुत से देशो म धम का यापक प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। हमारे देश म भी जीवन के प्राय सभी क्षत्र धम से प्रभावित हुए ह। सभी धम जीवन के परम उद्देश्य की प्राप्ति पर बल देते हैं और उसीको दष्टिगत रखकर समाज के सघटन और उसके काय क्षत्र का निर्धारण करते ह। भारत म प्राचीन ब्राह्मण धम के दाशनिक और आचार-सम्बधी विचारो ने भारतीय जीवन को जो विशिष्टता प्रदान की वह तिहास का क अ य त महत्त्वपूण तथ्य ह। आध्यात्मिक मा यताओ सामाजिक तथा राजनो तक सिद्धा तो और सास्कृतिक जीवन पर इसका गहरा प्रभाव पडा ह। इसके साथ ही उ ल्लेखनीय ह कि काल और परिस्थितियाँ जिनम धर्मों का ज म होता ह सदा अपरिवतनीय नही रहती। इसी कारण बदलते हुए परिवश म आवश्यक परिवतन लान के लिए सामाजिक और धार्मिक आ दालनो की आवश्यकता पडती ह। पर तु कट्टरपथी धम के मल सिद्धा तो को सावकालिक मानकर उनका विरोध करने म नही चकत जिसके कारण कुछ देशो को क्रा ति का माग ग्रहण करना पडा।

प्राय सभी धर्मों म जगत के स्रष्टा के रूप म ईश्वर के अस्ति व और मोक्ष प्राप्ति के साधनो का विधान है। प्राचीन ब्राह्मण धम म पुनज म कमवाद यज्ञ कमकाड और वण यवस्था आदि का काफी महत्त्व है। परन्तु ई पू छठी शताब्दी तक आते-आत वण यवस्था सामाजिक असमानता का कमकाड एव यज्ञ हिंसा और अनावश्यक धार्मिक कृत्यो का और ईश्वरवाद एक बाह्यशक्ति पर निभरता का द्योतक बन चका था। इन परिस्थितियो म जनधम और बौद्धधम ने प्राचीन धार्मिक मुख्यधारा से बहुत सी बातो म अपनी अलग पहचान बनाकर नय मागदशन की आवश्यकता पर जोर दिया। विभिन्नताओ के बावजद दोनो म दु ख की सव यापकता उसका कारण उसके निरोध का माग और जीवन का परम उद्देश्य —मोक्ष अथवा निर्वाण—एसे विषयों पर प्रतिपादित उनके सिद्धा तो म काफी समानता ह। जाति-पाँति ईश्वरवाद याज्ञिकी हिंसा और कमका ड का विरोध तथा आन्तरिक शुद्धि एव सदाचार पर जोर धार्मिक क्षेत्र में वस्तुत क्रान्तिकारी विचार थ। सामाजिक असमानता पर प्रहार और अनीश्वर वादी दर्शन के आधार पर मनुष्य का अपने भाग्य का स्वय विधाता का सिद्धा त

चनौतीपूण विचार थे। यद्यपि काला तर म बौद्धघम इस देश से लप्त हो गया और जनघम भी कुछ क्षत्रो तक सकुचित रह गया उनके सिद्धा त निस्सदेह सार्वकालिक महत्त्व के हैं। स य अहिंसा अपरिग्रह सदाचार और समानता की भावना की प्रासगिकता असदिग्घ ह।

डॉ मह द्रनाथ सिह द्वारा लिखित पुस्तक बौद्ध तथा जनधर्म दोनो का एक तुलनात्मक अध्ययन ह। कहने की आवश्यकता नही कि इन घर्मों का अध्ययन अनेक विद्वानो ने किया है और इन पर एक विशाल साहि य उपल घ ह। परन्तु लेखक ने मुख्यत अपने को घम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र पर केन्द्रित कर दोनो घर्मों के मल सिद्धान्तो का गहराई से अध्ययन किया ह। इन ग्र थो से पर्याप्त उद्धरण देकर और अन्य स्रोत सामग्री का यथोचित उपयोग कर डा सिह न पुस्तक को विश्वसनीय और उपयोगी बनाया है। दोनो घर्मों के दाशनिक सिद्धा तो औ उनकी आचार सहिताओ की विवेचना बड ही सन्तुलित ढग से की गयी ह। प्राय सभी अध्यायो म उनको समानताओ और असमानताओ को दर्शाया गया ह। कम घम अर्हत निर्वाण पाप-पुण्य भावना या अनुप्रक्षा आदि विषयो का विस्तारपूवक विवेचन किया गया ह।

हम आशा ह कि यह पुस्तक भारतीय घर्मों के अध्ययन म विशेष रुचि लेनेवाले और सामा य पाठक दोनो के लिए पयोगी होगी।

**—हीरालाल सिंह**
भतपूव प्रोफसर एव अध्यक्ष
इतिहास विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वाराणसी
२ अगस्त १९८९

# बौद्ध तथा जैनधर्म

भारतीय चिन्तन और सदाचार के इतिहास म बौद्ध और जन परम्पराओं का विशेष महत्त्व है। हिन्दू जीवन की रूढियो और विश्वासो का प्रत्याख्यान करते हुए बद्ध के विचार स्वत न्त्र धर्म के रूप म स्थापित हुए। उनकी उक्तियाँ शनै शनै इस तरह विकसित हुइ कि बद्ध के अनुयायियो ने न केवल अपने सघो और विहारो का विकास किया बल्कि निश्चित प्रकार की दाशनिकता तकशास्त्र तथा आचारशास्त्र का भी पूरी तरह विकास किया। बौद्धधर्म दशन साधना और आचार तीनो क्षत्रों में इतना प्रभावशाली हुआ कि आधी दुनिया पर उसका साम्राज्य छा गया। इसके साथ ही एक जन भाषा भी इस धम की भाषा के रूप म विकसित हुई। ब्राह्मण धम-व्यवस्था के पास यदि वदिक और सस्कृत जसी दो भाषाय थी और वेद स्मृति तथा उपनिषद जसे शास्त्र थे तो बौद्धो के पास पालि जसी भाषा थी पिटक थ निकाय थे और धम्मपद था। ब्राह्मण धम-व्यवस्था के पास ऋषि मुनि आश्रम कुटी मन्दिर तपस्वी साध और योगी थ तो श्रमण धम व्यवस्था के पास मठ विहार आराम ( बगीचे ) भिक्ष तान्त्रिक और चमत्कारी धम प्रचारक थे। भाषा दशन एव सगठन तीनो के कारण बौद्धधम ब्राह्मणधम को निष्प्रभ करन म सफल रहा। ठीक इसी तरह जैन धम का उद्‌भव एक ऐसे विचारक तपस्वी की चिन्ता से हुआ था जो ब्राह्मणधम की रूढियो से प्रसन्न नही था। ब्राह्मण शास्त्रो की व्यर्थता भगवान् म ावीर के मस्तिष्क म थी। जितेन्द्रिय महावीर ने जिस चिन्तन का सूत्रपात किया था उसे दर्शन तकशास्त्र और साधक मुनिम डल का सहयोग मिला। मन्दिर मसि शास्त्र और मुनियो के साथ जैनधम के पास बौद्धो की तरह एक निजी अभिव्यक्ति की भाषा भी थी। इस भाषा को जन प्राकृत कहा जाता है। इसीलिए जनधम के अनुयायियों ने भी ब्राह्मण व्यवस्था का पूरी तरह से उत्तर दिया और उसे निष्प्रभ बनाया। बौद्धधम को राजशक्ति का समथन मिला उसी तरह जनधम को भी राजाओ तथा श्रेष्ठियो का समथन मिला। इस तरह बौद्ध तथा जैन दोनो धम-व्यवस्थाय ब्राह्मण यवस्था के समानान्तर खडी हुइ। इन स्पर्धी यवस्थाओ न अपने धर्मशास्त्रो से श्रीमद्‌भगवदगीता के समानान्तर दो पुस्तको का प्रचारतन्त्र भी विकसित किया। गीता में १८ अध्याय हैं तो बौद्धधम के धम्मपद म २६ वग्ग हैं। इसी तरह जनों का धमग्रन्थ उत्तराध्ययनसूत्र खडा हुआ। इसमें भी ३६ अध्ययन हैं। इस तरह यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बौद्ध तथा जैनधम ब्राह्मण चिन्तन की शाखायें नहीं हैं बल्कि समानान्तर धम-व्यवस्थाय हैं और इनका

विकास ब्राह्मणधम के विरोध म स्पर्धो चिन्ता से हुआ है। इसी स्पर्धा म सस्कत शास्त्र श्रीमदभगवदगीता के समानान्तर पालिशास्त्र ध मपद और प्राकतशास्त्र उत्तरा ध्ययनसूत्र का सकलन और प्रचारण विकसित हुआ।

धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के मह व को बहुत अलग से देखने की जरूरत है। जब कोई सगठन चाह वह धार्मिक या साम्प्रदायिक हो अपने पूरे बल के साथ खडा होता ह तो उसके पास एक निश्चित जनभाषा का आधार होना चाहिए। साध और कायकर्त्ता होना चाहिए। सभाकक्ष मठ मन्दिर विहार बगीच म दिर और देवघर भी होन चाहिए। इसके साथ ही उसके पास प्रचलित धमपुस्तिका भी होनी चाहिए। सवग्रासी और सवव्यापी ब्राह्मणधम के समानान्तर यदि बौद्ध और जन धर्मों न अपनी पहचान बनायी तो वह इसी सामजस्य शक्ति के कारण बनी। य दोनो धम-व्यवस्थाय तभी दुबल हुइ जब इन्होन जनभाषा साध तापस बल आश्रम और मठ तथा अपना निश्चित आचार छोड दिया। बाद म अनक बौद्ध ग्रन्थ सस्कत म लिखे जाने लगे। इसी तरह परवर्ती जैन-साहि यो की भाषा सस्कत हो जाती ह। सस्कत का सूत्र ग्रहण करना बौद्ध और जैनों की पहली पराजय ह। इनकी दूसरी पराजय तब होती ह जब इनके साध और तपस्वी आश्रमो विहारो तथा आरामो म स्थायी रूप से ठहरन लगते हैं चलना छोड देत हैं। गुफाओ म रुककर चित्र बनाने लगते हैं और मठो म बैठकर मर्तियाँ और देवना गढन लगते ह। अजन्ता और एलोरा के ऐतिहासिक अवशेष यह स्पष्ट सकेत करत ह कि भिक्षचर्या म चलना माँगना घमना क्रमश कम हुआ और भिक्ष साध कलाजीवी साधक बनन लग। बौद्धधर्म के साधना ग्र थो से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि भिक्ष गुप्त स्थानो म निवास करने लगे और क्रमश त त्र वज्र कील म त्र और अ तत अभिचार यभिचार से बौद्धो का सम्ब ध बढता चला गया। जनो के साथ भी एसा ही कुछ हुआ और धीरे धीरे ब्राह्मण धम-व्यवस्था न बौद्ध धम व्यवस्था से लडकर श यवाद को अद्वतवाद के रूप म बदलकर यथावसर शस्त्र से और मख्यत घणा प्रचार से बौद्धधर्म को वस्त कर दिया। मुझ तो यह भी लगता ह कि घणा बढ जान के बाद बुद्ध मूत्तियो को तोडने और श्रमणो को नृशस ढग से मारने की परम्परा पुरोहित धम यवस्था का एक निश्चित कारक बन गयी थी। बुद्ध को तोडन की जो परम्परा शुरू हुई उसे ही तुर्कों ने भी आग बढाया। तुर्कों ने बुत के बहाने बुद्ध को ही तोडा। यह एक पूण नियोजित काय क्रम था जिसे पुरोहित धम के सचालक चला रहे थे। बुद्ध और बत एक ही शब्द क दो रूप हैं। इसलिए इन सारी टटी हुई मर्तियो वस्त जमीदोज आश्रमो विहारो और बुद्ध-तीर्थों के लिए तुर्कों को ही नही ब्राह्मणों को भी स्मरण किया जाना चाहिए। अनक स्थानो पर जन-मर्त्तियो को तोडकर जो हिन्दू मर्त्तियाँ स्थापित की

गयी है उनके पीछे छिपी जैन-ब्राह्मण-सघष की कोई अनकही कहानी सामने लायी जा सकती है ।

धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र का अध्ययन गीता से सम्बद्ध करके किया जाना चाहिए । क्योकि ये तीनों पुस्तक तीन धम व्यवस्थाओ—बौद्ध जैन और ब्राह्मण धम का मुख भाष्य है । तीनो की अपनी एकजातीय सस्कृति है । साथ ही तीनों के पीछे निजी भाषिक मिथक और अभिव्यक्ति-उच्चरण हैं । तीनो के पीछे सोचती-बोलती रहनेवाली तीन परस्पर सवादी धम-जातियाँ भी हैं । तीनो का रक्त एक है लेकिन तीनो को एक-दूसरे की चुनौती रक्त पिपासा की सीमा तक उत्तजित करती हैं । भाषा का टकराव रीति रिवाजो का टकराव एक दूसरे का एक दूसरे में समा जाना एक दूसरे से अलग होना फिर एकाकार हो जाना मिल जुलकर जाति-चरित्र से सम्बन्धित अनेक रहस्य समेटे हुए हैं । इसीलिए गीता धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र का अध्ययन तुलनात्मक और व्यतिरेकी स दर्भों म खास महत्त्व रखता है । मुझे यह देखकर सुखद आश्चय हुआ है कि प्रतिभाशील तरुण अन्वेषक डॉ महेन्द्रनाथ सिंह ने बहुत उपयुक्त समय पर धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र का सास्कृतिक विश्लेषण प्रारम्भ किया ह । डॉ सिंह मुख्यत इतिहास के विद्वान् हैं लेकिन उन्होंने बडी दिलचस्पी के साथ तत्त्वमीमासा और धार्मिक सिद्धान्त जसे सूक्ष्म प्रश्नो पर भी गहराई से विचार किया ह । उनकी अध्ययन प्रणाली एक शास्त्रगत अन्वेषक की है । वे डॉ एस अ तकर डा वासुदेवशरण अग्रवाल डा अजयमित्र शास्त्री डॉ जे एन तिवारी डॉ सागरमल जन और डॉ सुदशनलाल जैन की परम्परा के विद्वान् हैं । इस परम्परा के विद्वानो की विशेषता यह होती है कि वे मुख्य विषय से सम्बन्धित सारी सामग्री एव सूचनाओ को परिश्रमपूवक एकत्र करते हैं और उन्हें एक निश्चित क्रम मे उद्धृत करत हुए अज्ञात अश्रुतपूव को सामने कर देते हैं । डॉ महेन्द्रनाथ सिंह ने अपनी गुरु-परम्परा से काफी कुछ सीखा है और उनकी पुस्तक से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने न केवल पूव अध्यताओं का पूरा उपयोग किया है ब कि धम्मपद तथा उत्तरा ध्ययनसूत्र के अध्ययन के साथ-साथ बौद्ध तथा जैन मलग्रन्थों का भी परिश्रमपूवक अध्ययन किया है । इस अध्ययन के निष्कष बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । जो लोग बौद्ध और जैन-तत्त्वमीमासा और धम सिद्धान्तो से परिचित नही हैं वे लोग डॉ सिंह की पुस्तक से बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । सार-सकलन तथ्यो की प्रस्तुति व्याख्या विश्लेषण और अर्थापन सभी दृष्टियो से महेन्द्रजी ने एक पण्डित-पोथी लिखी है ।

मैं विश्वास करता हूँ और आशान्वित हूँ कि डॉ महेन्द्रनाथ सिंह आगे चलकर अपनी इस विद्या को श्रीमद्भगवद्गीता से भी सम्बद्ध करेंगे और सस्कृत पालि और

प्राकृत की भाषिक जीवन्तताओं का उपयोग करते हुए एक और सुन्दर पुस्तक तैयार करेंगे। वे मेरे आशीर्वाद भाजन हैं। मैं चाहता हूँ कि वे सभी गुरुजनों के प्रशंसा भाजन भी बनें।

कबीर विवेक
१७१ बी बिजइन्क्लेव
सुन्दरपुर वाराणसी

—शुकदेव सिंह

# शुभाशंसा

डा महेन्द्रनाथ सिंह का पी एच डी शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता है। मैंने इस प्रबन्ध को पढ़ा है और मैं यह कह सकता हूँ कि प्रस्तुत पुस्तक जो उनके शोध प्रबन्ध पर ही मूलत आधारित है अपने विषय का एक प्रामाणिक ग्रन्थ बनेगा। जहाँ तक मुझे ज्ञात है डॉ सिंह के शोध प्रबन्ध के परीक्षकों ने भी इनके प्रयास की सराहना की है।

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष
प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव
पुरातत्व विभाग तथा प्रमुख कला सकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

—के के सिन्हा

गीता धम्मपद और उत्तराध्ययन तीनों ग्रन्थ अपने अपने धर्मों के नाम पर ख्याति प्राप्त एव महत्त्वपूर्ण हैं। गीता महाभारत-कालीन श्री वेदव्यास द्वारा रचित सद्ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ म आध्यात्मिकता आलोकित होती है। लोक म ही परलोक का अरुणोदय होता ह। आत्मकल्याण से लोककल्याण तक के रास्ते सूझते हैं। इस ग्रन्थ के माध्यम से सद्‌मति और सद्गति साथ-साथ सवरती है।

त्रिपिटक का धम्मपद और जैन-आगम का उत्तराध्ययन दोनो का मूलाधार गीता ही है। आज से २८ वर्ष पहले शाक्य मुनि बुद्ध और महावीर जन दोनो अवतरित हुए थे। धम्मपद खुद्दकपिटक का एक लघु सकलन है। बौद्धधर्मावलम्बियो के लिए धम्मपद उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि उत्तराध्ययन की महत्ता जैन धर्मानुयायियों के लिए है।

उत्तराध्ययन एव धम्मपद दोनो ही श्रमण-परम्परा के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। किसी धर्म की तुलना किसी धर्म से नहीं की जा सकती। कहने के लिए तो कहा जाता है कि सभी धर्म एक हैं तो धर्म के नाम पर हम टुकड़ों में क्यो विभाजित हैं या धर्म को आड मे खून क्यो बहाये जाते हैं?

यहाँ बौद्धधम के धम्मपद और जैनधर्म के उत्तराध्ययन के तुलनात्मक अध्ययन के लिये डा महेन्द्रनाथ सिंह का श्रम सफल प्रशसनीय एव सराहनीय है। इसम डॉ सिंह का गवेषणात्मक प्रतिभा का स्थान महत्त्वपूण है।

म नवयुवक डॉ सिंह के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

संयुक्त मन्त्री
महाबोधि सोसाइटी आफ इण्डिया
धमपाल रोड सारनाथ वाराणसी

भिक्षु डी० रेवत

उत्तराध्ययनसूत्र और धम्मपद क्रमश जन तथा बौद्धधम और दशन का प्रतिनिधित्व करते हैं। दोनो ही लोकप्रिय एव महत्त्वपूण प्राचीन आगम ग्रथ हैं। प्राच्य और पाश्चात्य सभी विद्वानो ने इन दोनो ग्रन्थो के तुलनात्मक विवेचन की आवश्यकता पर बल दिया है। डा महेन्द्रनाथ सिंह प्रवक्ता प्राचीन इतिहास विभाग उदयप्रताप कॉलेज वाराणसी ने इन दोनो ग्रन्थों का तुलनात्मक विवेचन करत हुए जैन-बौद्धधम-दर्शन-सम्बन्धी प्राय सभी विधाओ की तुलना प्रस्तुत करने का सराहनीय प्रयत्न किया है। आशा ह लेखक के इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से दोनो दर्शनो की समानताओं और असमानताओ का ज्ञान प्राप्त होगा। इसकी प्रमुख विशेषता यह ह कि लेखक ने प्राय मूल उद्धरण दिए हैं जिससे इसकी प्रामाणिकता को परखा जा सके।

रीडर सस्कृत विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

—सुदर्शनलाल जन

# प्रस्तावना

धम्मपद बौद्धधर्म का प्रसिद्ध ग्रन्थ है और उत्तराध्ययनसूत्र जैनधर्म का। बौद्ध और जैनधर्म दोनों ही श्रमण-संस्कृति की धाराएं हैं। तथागत बुद्ध और तीर्थंकर महावीर समकालीन थे। दोनों का प्रचार-स्थल प्राय पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार था। दोनो मानवतावादी थे। दोनों ने ही जातिवाद एव कर्मकाण्ड को महत्त्व न देकर आन्तरिक विशुद्धि और सदाचार पर बल दिया। भगवान् महावीर के पावन प्रवचन गणिपिटक ( जैन आगम ) के रूप में विश्रुत है तो बुद्ध के प्रवचनों का सकलन त्रिपिटक ( बौद्धागम ) के रूप में प्रसिद्ध है। धम्मपद त्रिपिटक का एक अग है और उत्तराध्ययनसूत्र जैन आगम-साहित्य का एक भाग है।

बौद्धधर्म में जो महत्त्व धम्मपद को प्राप्त है वही जैनधर्म में उत्तराध्ययन को ह। बौद्धधम म धम्मपद के पाठ का तथा जैनधम में उत्तराध्ययन के पाठ का आज भी प्रचलन है। धम्मपद सुत्तपिटक में खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। इसम कुल २६ वर्ग और ४२३ गाथाय हैं। बौद्ध-परम्परा इन्हें भिन्न भिन्न अवसरो पर बुद्ध द्वारा कही हुई स्वीकार करती है। यद्यपि इस मान्यता को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार करना कठिन है परन्तु धम्मपद को प्राय खुद्दकनिकाय से अपेक्षाकृत प्राचीन स्तर का माना जाता है। धम्म शब्द से धर्म अनुशासन नियम आदि का तात्पर्य लिया जाता है और पद का अर्थ वक्तव्य या पथ से किया जाता है। इस प्रकार धम्मपद का अर्थ सत्य-सम्बन्धी वक्तव्य या सत्य का माग है। उत्तराध्ययनसूत्र अधमागधी प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इसकी गणना मूल सूत्रों म होती है। इसमें कुल ३६ अध्ययन हैं जिनम से १६५६ पद्य तथा ८९ गद्यसूत्र हैं। इनमें कुछ अध्ययन शुद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों का तथा कुछ धम्मपद की तरह उपदेशात्मक साधु के आचार एव नीति का विवेचन करते हैं। कुछ कथा एव सवाद-रूप हैं पर उनका विषय भी मुनि-आचार ही है। अत यह सूत्र भी किसी एक व्यक्ति की एक कालविशेष की रचना न होकर विभिन्न समयों म सकलित ग्रन्थ प्रतीत होता है। परम्परागत रूप म तो यह माना जाता है कि उत्तराध्ययन के ३६वें अध्ययन का प्रवचन करते हुए महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया था तथापि इस तथ्य का प्रमाणीकरण प्राचीन ग्रन्थों से नहीं होता। सामान्यतया भाषा छन्द एव विषय-सामग्री की दृष्टि से इसका रचना काल ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी के मध्य सिद्ध होता है।

धम्मपद बौद्ध-परम्परा का अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। वहाँ यह ब्राह्मण परम्परा की गीता के समकक्ष ह और आज भी श्रीलका में बिना धम्मपद का पारायण किय भिक्षु की उपसम्पदा नही होती। इसके अनक सस्करण और अनवाद प्राप्त हैं। धम्मपद को समझने में अटठकथा भी अत्यन्त सहायक है। प्राय बद्धघोष ही धम्मपद अटठकथा के रचयिता माने जाते ह यद्यपि इस पर शका भी की गयी ह। उत्तराध्ययनसूत्र पर भी प्राचीन अर्वाचीन विपुल व्याख्यात्मक साहित्य विद्यमान हैं। जन परम्परा में यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय था साथ ही इस पर सर्वाधिक टीका-ग्रन्थ भी लिखे गये जिनमें आचार्य भद्रबाहु की निर्युक्ति और जिनदास गणि महत्तर की चूर्णि विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्पष्ट है कि धम्मपद तथा उत्तराध्ययन दोनो अपनी अपनी परम्पराओ के अति विशिष्ट प्रतिनिधि-ग्रन्थ हैं। दोनो का तुलनात्मक अध्ययन रोचक तथा महत्त्व का हो सकता ह इसी दृष्टि से मैंने अध्ययन का यह विषय चना। यद्यपि बौद्ध और जनधम का अध्ययन अनक विद्वानो न किया है परन्तु उनमें प्राय सम्पूर्ण बौद्ध और जन-साहित्य को स्रोत के रूप में लिया गया है। डॉ सागरमल जैन के जन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन नामक शोध प्रबन्ध म तीनो धार्मिक परम्पराओ के आचार पक्ष का तुलनात्मक अध्ययन उपलब्ध ह और इस प्रसग म विद्वान् लेखक ने दोनो विवेच्य ग्रन्थो म विचार-साम्य एव गाथा-साम्य का भी उल्लेख किया है। परन्तु धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन अभी अपेक्षित है। तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनो ग्रन्थो म विषय उक्तियों एव कथानकों की दृष्टि से अत्यधिक साम्य ह। इस साम्य का मूल आधार यही हो सकता है कि दोनों ग्रन्थ श्रमण-परिव्राजक परम्परा से नि सृत थे तथा एक ही वातावरण काल और क्षत्र म निर्मित हुए थे। इन दोनों ग्रन्थो म प्राप्त सामग्री के आधार पर बौद्ध तथा जैनधम का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करना मुझ इष्ट है।

बौद्ध तथा जन दोनों धम सासारिक जीवन म दु ख की सवव्यापकता स्वीकार करते हैं और दु ख विमुक्ति का आदश रखते हैं। उत्तराध्ययन में अविनश्वर सुख की प्राप्ति के लिए चेतन और अचेतन के सयोग और वियोग की आध्यात्मिक प्रक्रिया का सम्यक ज्ञान आवश्यक बताया गया है। इस प्रक्रिया को जीव अजीव आस्रव बन्ध सवर निजरा मोक्ष पुण्य तथा पाप के द्वारा व्यक्त किया गया है। हिंसादि अशुभ कार्यों से अजीव से जीव का बन्ध होता है और अहिंसादि शुभ कार्यों से जीव मुक्त होता है। कुछ इसी प्रकार के सत्य का साक्षात्कार भगवान् बुद्ध ने भी किया। यद्यपि वे चेतन अचेतन द्रव्यों की नित्य सत्ता म विश्वास नही करते थे और अनित्यता अनात्मता तथा दु ख को सासारिक जीवन के प्रधान लक्षण मानते थे।

उन्होंने अपने ध्यानगत ज्ञान को चतुरार्य सत्यों के रूप में व्यक्त किया दु ख दु खसमुदय दु खनिरोध तथा दु खनिरोध-माग। दु खनिरोध के लिए जिन उपायों को धम्मपद में बतलाया गया है वे ही प्राय उत्तराध्ययन में भी हैं अन्तर इतना ही है कि जहाँ बौद्ध दशन नैरात्म्य पर जोर देता है वहाँ उत्तराध्ययन उपनिषदों की तरह आत्मा के सद्भाव पर। उपयक्त चार बौद्ध सत्यो की तुलना उत्तराध्ययनसूत्र की जैन तत्त्व योजना से निम्न रूप में की जा सकती है धम्मपद का दु ख-तत्त्व उत्तराध्ययन के बन्धन-तत्त्व से दु ख-हेतु आस्रव से दु ख निरोध मोक्ष से और दु खनिरोध-माग ( अष्टाङिगकमाग ) सवर और निर्जरा से तुलनीय हो सकते हैं।

आगे चलकर इसम शरण-गमन अहत-तत्त्व कर्म एव निर्वाण का विवेचन ह। बुद्ध धम और सघ की शरण को त्रिशरण कहते हैं। बौद्धधम में इनको त्रिरत्न माना गया है और प्रत्येक बौद्ध के लिए इनकी अनुस्मृति आवश्यक कही गयी है। बद्ध की अनुस्मृति का अथ है उनके अहत्व आदि गुणों का पुन पुन स्मरण। धम्मपद में बद्ध और उनकी स्मृति के ऊपर एक वग ही है। धम्म की अनुस्मृति को बद्ध की स्मृति से भी मह वपूण कहा गया है क्योंकि धम के साक्षात्कार से ही बद्ध बद्ध बन थे। धम्मपद में धम्म पर भी एक अलग से वग ह। धर्म के प्रचार एव आध्यात्मिक साधना के अभ्यास के लिए बौद्ध अनुयायियों का सगठन ही सघ था। बद्ध सघ को धम द्वारा सचालित और अपन से भी बडा मानते थे। सघ के गुणो का बार-बार स्मरण सघानु स्मृति है और धम्मपद में इसे भी उतना ही आवश्यक माना गया है। त्रिशरण की बात उत्तराध्ययन में तो नही है किन्तु चतुर्विध शरण का उल्लेख आवश्यक सूत्र म है। सघ के महत्त्व का उल्लेख नन्दी-सूत्र में है। बौद्ध और जैन दोनों म आध्यात्मिक प्रगति के विभिन्न स्तरो की कल्पना है। सामान्यतया बौद्धधम में इनको क्रमश स्रोतापन्न सकृदागामी अनागामी एव अर्हत कहा जाता था। धम्मपद म इनका क्रमबद्ध उल्लेख तो नही हैं किन्तु अहत-तत्त्व का वणन है। इस ग्रन्थ के सातवें वग्ग का नाम अरहन्त वग्ग है और इसकी प्रत्येक गाथा म अहतो का वर्णन है। अहत्व का तात्पर्य साधक की उस अवस्था से है जिसमें तृष्णा राग-द्वष की वृत्तियों का क्षय हो चुका हो और वह सभी सांसारिक मोह तथा बन्धनों से ऊपर हो। उत्तराध्ययन में भी वीतराग एव अरिहन्त जीवन का प्राय इसी रूप मे वणन है और उसे नैतिक जीवन का परम साध्य माना गया है। जैन और बौद्ध दोनो धर्मों को कमसिद्धान्त समान रूप से स्वीकाय है। जगत् के स्रष्टा और नियामक किसी ईश्वर की क पना अस्वीकार कर दोनों धम जीव की गति कम के ही अधीन मानते हैं। परन्तु दोनों के कुछ मौलिक अन्तर भी थे। बौद्ध कर्म को किसी नित्य शाश्वतकर्ता का व्यापार नहीं मानते थे। इसी प्रकार जहाँ बौद्ध कम को मूलत मानसिक संस्कार के रूप में ग्रहण करते थे वहाँ जैन उसे पौद्गलिक

मानते थे। धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के अध्ययन से भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है।

धम्मपद में यह उक्ति प्राप्त होती है कि मार्गों में अष्टांगिक मार्ग सर्वश्रेष्ठ है परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ के अनुशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि शील समाधि और प्रज्ञा ये तीन ही दुःख विमुक्ति के मूल साधन हैं तथा अष्टांगिक मार्ग इसी साधन-त्रय का पल्लवित रूप है। उत्तराध्ययनसूत्र में मोक्ष के चार साधन कहे गये हैं दर्शन ज्ञान चारित्र और तप। जैन आचार्यों ने सम्यक चारित्र में ही तप का अन्तर्भाव कर परवर्ती साहित्य में त्रिविध साधना-मार्गों का विधान किया। जैन-दर्शन में यह रत्नत्रय नाम से प्रसिद्ध हुआ। तुलनात्मक अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि उत्तराध्ययन के सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान धम्मपद के समाधि और प्रज्ञा स्कन्ध के समकक्ष हैं। धम्मपद का शील स्कन्ध उत्तराध्ययन के सम्यक चारित्र में सरलता से अन्तर्भूत हो जाता है। वस्तुतः बौद्ध और जैनधर्म के आचार में मौलिक समानतायें हैं। बौद्धों के शील जैन व्रतों से सहज ही तुलनीय हैं। अहिंसा के सम्बन्ध में दोनों में किंचित दृष्टिभेद अवश्य था और तत्त्वमीमांसा के मौलिक अन्तर के कारण दोनों की ध्यान-पद्धतियों में भी असमानतायें थीं परन्तु दोनों में सबसे महत्त्वपूर्ण भेद यह था कि जहाँ जैनधर्म काय-क्लेश और कठोर तप पर बल देता था बौद्धधर्म अतिवर्जना और मध्यम मार्ग के पक्ष में था। धम्मपद और उत्तराध्ययन से इन तथ्यों की भी पुष्टि होती है। धम्मपद और उत्तराध्ययन दोनों में पुण्य-पाप की अवधारणायें प्रायः समान हैं। दोनों में याज्ञिकी हिंसा तथा वर्ण भेद की आलोचना है। दोनों सदाचरण को ही जीवन में उच्चता नीचता का प्रतिमान मानते हैं और ब्राह्मण की जन्मानुसारी नहीं अपितु कर्मानुसारी परिभाषा प्रस्तुत करते हैं। साथ ही दोनों में आदर्श भिक्षु यति के गुण प्रायः समान शब्दों में वर्णित हैं।

दोनों ग्रन्थों में प्राप्त चित्त अप्रमाद कषाय तथा तृष्णा आदि मनोवैज्ञानिक तथ्यों का विवेचन है। साधारण रूप से जिसे जन-परम्परा जीव कहती है बौद्ध लोग उसीके लिए चित्त शब्द का प्रयोग करते हैं। उनके लिए चित्त कोई नित्य स्थायी स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। चित्त की सत्ता तभी तक है जब तक इन्द्रिय तथा ग्राह्य विषयों के परस्पर घात-प्रतिघात का अस्तित्व है। ज्योंही इन्द्रियों तथा विषयों के परस्पर घात प्रतिघात का अन्त हो जाता है त्योंही चित्त भी समाप्त या शान्त हो जाता है। बौद्धधर्म में चित्त मन और विज्ञान को प्रायः एक ही अर्थ का माना गया है। जैन दृष्टिकोण से जिसके द्वारा मनन किया जाता है वह मन है। उत्तराध्ययन के अनुसार मन भी एक प्रकार का द्रव्य है जिसके द्वारा सुख-दुःख की अनुभति होती है। दूसरे शब्दों में इन्द्रियों और आत्मा के बीच की कड़ी मन है। धम्मपद के चित्तवग्ग में चित्त

के ऊपर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। मनो पुब्बंगमा धम्मा (मन सभी प्रवृत्तियों का अगुआ है) और फन्दनं चपल चित्तं (चित्त क्षणिक है चंचल है) तथा उत्तराध्ययनसूत्र के मणसमाहारणयाएणं एगग्गं जण यइ (मन की समाधारणा से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है) तथा मणो साहसिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई (मन ही साहसिक भयकर दुष्ट अश्व है जो चारों तरफ दौडता है) जैसे वाक्य दोनों ग्रन्थों में मन के स्वरूप को भलीभाँति स्पष्ट करते हैं। वस्तुत मन व्यक्ति के अन्तरग म एक प्रकार का साधन है जिसके द्वारा वह बाह्य ससार को ग्रहण करता है। मन कोई सामान्य इन्द्रिय नही है वरन् इसे चेतना के रूप में स्वीकार किया गया है। सामान्यतया समय का अनुपयोग या दुरुपयोग न करना अप्रमाद है। धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र में अप्रमाद का विशद विवेचन है। धम्मपद में प्रमाद को मृत्युतुल्य तथा अप्रमाद को निर्वाण कहा गया है। उत्तराध्ययनसूत्र म प्रमाद को कर्म आस्रव और अप्रमाद को अकम सवर कहा गया ह। प्रमाद के होने से मनुष्य मर्ख और अप्रमाद के होने से पण्डित कहा जाता है। आत्मा को मलिन करनेवाली समस्त भावनायें वासनाय कषाय में गर्भित हैं। क्रोध मान माया और लोभरूपी भावनाय सबसे अधिक अनिष्ट व अशुभ हैं। उत्तराध्ययन म इन चारों को कषाय की संज्ञा दी गयी है। धम्मपद म कषाय शब्द का प्रयोग दो अर्थों में है। पहला जैन-परम्परा के समान दूषित चित्त-वृत्ति के अथ म तथा दूसरा सन्यस्त जीवन के प्रतीक गेरुए वस्त्रों के अर्थ म। धम्मपद में कषाय शब्द के अन्तगत कौन-कौन दूषित वृत्तियाँ आती हैं इनका स्पष्ट उल्लेख तो नही मिलता परन्तु इन अशभ चित्तवृत्तियो को दूर कर साधक को इनसे ऊपर उठने का सन्देश दिया गया है। उत्तराध्ययन में इन चारों का विशद वर्णन है।

प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग
उदयप्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय
वाराणसी

–महेन्द्रनाथ सिंह

# आभार

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना म अनेक गुरुजनो मित्रो तथा सस्थाओ से मझे बहुविध महायता मिली ह जिनके प्रति आभार निवेदन करना मेरा प्रथम कत्तव्य है।

ग्रन्थ-लेखन से प्रकाशन तक मझ परमपूज्य गुरुवर प्रो डॉ जगदीशनारायण तिवारी विभागाध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग ( काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ) तथा प्रो डा सागरमल जन निदेशक पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-सस्थान वाराणसी से प्ररणा सुझाव तथा प्रोत्साहन मिलता रहा है। इसके लिए म इन गवेषी मनीषी तथा प्रज्ञायुक्त यक्तित्वो का चिरऋणी रहूँगा।

आदरणीय डॉ ओमप्रताप सिंह सगर प्रधानाचाय डा वशबहादुर सिंह उपप्रधानाचार्य तथा डॉ हरिवश सिंह विभागाध्यक्ष प्राचीन भारतीय इतिहास उदयप्रताप स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी का मुझ पर सदैव स्नेह रहा है जिसके लिए मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। उन लोगो के प्रति आभार प्रकट करना मरा कर्त्तव्य है।

आदरणीय प्रो डा हीरालाल सिंह भू पू विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी डॉ शुकदेव सिंह रीडर हिन्दी विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रो डॉ कृष्णकुमार सिनहा भ पू सकाय प्रमुख कला संकाय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय डा सुदशनलाल जन रीडर सस्कृत विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा भिक्ष डी रेवत सयुक्त मन्त्री महाबोधि सोसाइटी ऑफ इण्डिया धमपाल रोड सारनाथ वाराणसी ने समय-समय पर अनेक समस्याओ के निदान तथा काम म गति बनाय रखने की प्ररणा दी ह। पुस्तक के लिए शुभाशसा प्रदान कर उन लोगो ने मुझ अनुगृहीत किया है। म उन लोगो के प्रति भी कतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में प्रोत्साहन एव परामश देनेवाले प्रो डॉ गोविन्द चन्द्र पाण्डय डॉ धमचन्द्र जन प्रो डॉ कृष्णदत्त वाजपेयी टैगोर प्रोफेसर एव भू प विभागाध्यक्ष हरिसिंह गौड विश्वविद्यालय सागर ( म प्र ) प्रो डा लक्ष्मी कान्त त्रिपाठी प्रो डॉ माहश्वरीप्रसाद तथा प्रो डा पुरुषोत्तम सिंह प्रा भा इति स एव पुरातत्त्व विभाग का हि वि वि वाराणसी का नामोल्लेख करना आवश्यक है। लेखक इन विद्वज्जनों का सदैव आभारी रहेगा।

महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर सुझाव एव दिशा निर्देशन देनेवाले प्रो डॉ कमलचन्द सोगानी विभागाध्यक्ष दर्शन सुखाडिया विश्वविद्यालय उदयपुर ( राजस्थान ) प्रोफेसर डॉ टी जी कलघटगी विभागाध्यक्ष जैन-दर्शन मद्रास विश्वविद्यालय प्रो डॉ जयप्रकाश सिंह विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग नार्थ ईस्टन हिल युनिवर्सिटी शिलांग प्रो डॉ लल्लनजी गोपाल डॉ पी सी पन्त प्रा भा इति स एव पुरातत्त्व विभाग का हि वि वि वाराणसी डॉ महेन्द्रप्रताप सिंह विभागाध्यक्ष इतिहास काशी विद्यापीठ वाराणसी का म विशेष आभारी हूँ।

इसी सन्दर्भ में उत्साहवर्धन करनेवाले प्रेरणा के स्रोत डॉ जयराम सिंह इतिहास विभाग राजकीय महाविद्यालय चन्दौली वाराणसी डॉ डी एस रावत भूगोल विभाग उदयप्रताप कॉलिज वाराणसी डा झिनक यादव एव श्री बच्चन सिंह के प्रति आभार निवेदन करता हूँ।

मं उन सभी विद्वानो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी कृतियाँ ग्रन्थ के प्रणयन मे सहायक रही हैं। ग्रन्थ के मूल भाग या पाद टिप्पणियो म इनके यथास्थान ससम्मान उल्लेख हैं तथा सहायक ग्रन्थ सूची में तत्सम्बन्धी पर्ण प्रविष्टियाँ हैं। परन्तु प्राक्कथन के इस धन्यवाद ज्ञापन के प्रसग म भी मैं कुछ विद्वानो का विशेष उल्लेख करना चाहता हूँ जिनकी कृतियो से मुझ ग्रन्थ की रचना में स्थान-स्थान पर सहायता मिली है यथा—डा सागरमल जैन जैन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ एव २ डा सुदर्शनलाल जैन उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन डॉ गोविन्दचन्द्र पाण्डेय बौद्धधर्म के विकास का इतिहास डॉ भरतसिंह उपाध्याय बौद्ध-दर्शन और अन्य भारतीय दर्शन भाग १ एव भाग २ प बलदेव उपाध्याय बौद्ध दर्शन मीमासा और भारतीय दर्शन।

पुस्तकीय सहायता के लिए केन्द्रीय ग्रन्थालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी विश्वनाथ पुस्तकालय गोयनका महाविद्यालय वाराणसी पार्श्वनाथ शोध सस्थान ग्रन्थालय वाराणसी महाबोधि ग्रन्थालय सारनाथ वाराणसी तथा प्राचीन भारतीय इतिहास सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग के विभागीय ग्रन्थालय से प्राप्त सहयोग के लिए मैं इन सस्थाओ का आभारी हूँ।

ग्रन्थ के प्रकाशन के निमित्त भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् नई दिल्ली ने अनुदान हेतु स्वीकृति प्रदान की इसके लिए मैं सस्था के प्रति विशेष आभारी हूँ।

अपने मित्र श्री धनजय सिंह शोध-छात्र भूगोल-विभाग का हि वि वि वाराणसी से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप म जो सहयोग प्राप्त हुआ है उसके लिए आभार प्रदर्शित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

पूजनीय माता पिता तथा सभी अग्रजों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूँ जिनके आशीर्वाद और कृपा के कारण ही यह ग्रन्थ पूर्ण हो सका।

अन्त में विश्वविद्यालय प्रकाशन के प्रकाशक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ क्योंकि इनकी तत्परता तथा लगन के कारण ही यह कार्य समय से पूर्ण हो सका है। इसी सन्दर्भ में मैं शीला प्रिण्टर्स के प्रबन्धक के प्रति भी आभार निवेदन करता हूँ।

१९८९ –महेन्द्रनाथ सिंह

## अनुक्रमणिका





बौद्ध तथा जैनधर्म

धम्मपद और उत्तराध्ययन के
परिप्रेक्ष्य में
तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय १

# भूमिका

## बौद्धधर्म का सामान्य परिचय

भारतीय धर्मों के इतिहास में बौद्धधम का स्थान अद्वितीय है। इसका ज्ञान बौद्धधम की उत्पत्ति और विकास के सामान्य अध्ययन से होता है। छठी शताब्दी ई पू न केवल भारतवष अपितु विश्व के अन्य अनेक देशों के लिए धार्मिक आन्दोलन का युग था। यह न केवल धार्मिक एव आध्यात्मिक चिन्तन की दृष्टि से अपितु सामाजिक एव सांस्कृतिक दृष्टियों से भी क्रान्तिकारी युग था। इस अवधि म विश्व के अनेक देशों में महान् समाज-सुधारकों का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान् बुद्ध उनमें एक थे। इनका जन्म छठी शताब्दी ई पू के मध्य में सामान्य धारणा के अनुसार हुआ था। उनके बचपन का नाम सिद्धार्थ तथा गोत्र-नाम गौतम था। बुद्ध के पिता का नाम शुद्धोदन तथा माता का नाम माया या महामाया था जो कोलियवश की राज कुमारी थी। महाप्रजापति गौतमी को बुद्ध की मौसी के रूप में स्वीकार किया गया है। गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन की अनेक विविध घटनाओं से हमारा प्रयोजन नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि प्राचीन स्रोतों में उनके प्रारम्भिक जीवन के विषय म प्रामाणिक सूचनायें अत्यल्प हैं। १६ वर्ष की अवस्था में गौतम का विवाह यशोधरा

---

१ पाण्डेय गोविन्दचन्द्र स्टडीज इन दी ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म पृ ३१ नारायण ए के दी बैकग्राउण्ड ट दी राइज ऑफ बुद्धिज्म पृ १४ और आगे वार्डर ए के इण्डियन बुद्धि¯म प २८।

२ वही बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ १९ में गौतम बुद्ध के जन्म निर्वाण आदि की निश्चित तिथियों के सम्बन्ध में किंचित विवाद है।

३ सुत्तनिपात ३।७ ३।१।१८ १९।

४ महावग्ग विनयसुत्त ३।१।१८–२ पृ ८६।

५ दीघनिकाय हिन्दी अनुवाद सुत्त स २।१ पृ १ ९।

६ विनयपिटक चुल्लवग्ग पृ ३७४।

( गोपा ) से हुआ जिनसे राहुल नाम का पुत्र भी पैदा हुआ। निकायों में इस नाम के भिक्षु का उल्लेख प्राप्त होता ह।

२९ वर्ष की अवस्था में गौतम ने गृहत्याग किया जिसे महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है। इस घटना का वर्णन मज्झिमनिकाय के अरियपरियेसनसुत्त महासच्चक-सुत्त और बोधिराजकुमारसुत्तो म तथा ललितविस्तर बुद्धचरित आदि में मिलता है। गृहत्याग के बाद उनके द्वारा पहले कुछ आचार्यों के पास जाने और वहाँ से निराश होकर मगध म उरुवेला सेनानी निगम पहुचने का उल्लेख है। इसके पश्चात् कठोर तपस्या करन और उसे निस्सार जान ध्यान के अभ्यास से ज्ञान प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। प्राचीन स्रोतों में केवल आलारकालाम एव उद्दकरामपुत्त का उल्लेख मिलता है जिनसे बुद्ध ने आकिंचन्यायतन और नवसज्ञायतन की शिक्षा प्राप्त की। लेकिन इससे बोधिसत्त्व को सन्तोष नही हुआ। इन्ही दिनो पचवर्गीय ब्राह्मण भिक्षु उनके साथ हो लिए। यह दूसरी बात है कि गौतम द्वारा काय-क्लेश का मार्ग छोडकर भोजन ग्रहण करने की अवस्था में उन्होन इन्हें ढोगी समझकर इनका साथ छोड दिया। इसके पश्चात बुद्ध के द्वारा यान के अभ्यास करने उत्तरोत्तर ध्यान की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करने और अन्तत एक रात्रि को ज्ञान की प्राप्ति का विवरण है। बोधिसत्त्व को रात के प्रथम याम में पूवजन्मो का ज्ञान मध्यमयाम में दिव्य चक्षु की प्राप्ति और परम्परा के अनुसार गौतम बुद्ध ने उस समय यह उदान कहा अनेक जन्मों तक म ससार में लगातार दौडता रहा किसलिए? गृहकारक को ढूँढते हुए। जन्म मरण के कारण का ज्ञान हो गया अब फिर जन्म नही होगा। हे गृहकारक तेरी सब कडियाँ टूट गयी हैं शिखर ढ० गया है चित्त सस्काररहित हो गया है तथा तृष्णा का नाश हो गया है।

तदुपरान्त भगवान बुद्ध को अपने तत्त्वज्ञान को ससार म फैलाने का विचार उत्पन्न हुआ। बुद्ध ने उपदेशना के पात्र आलारकालाम और उद्रकराम पुत्र को माना।

---

१ नलिनाक्षदत्त एव वाजपेयी कृष्णदत्त उत्तर प्रदेश में बौद्धधम का विकास पृ ३९।

२ मज्झिमनिकाय २।२।१ २।२।२ ३।५।५ सयुत्तनिकाय का राहुल सयुत्त १७ हिन्दी अनुवाद भाग १ पृ २९४–२९८ और भाग २ ३४।३।२।८ पृ ४९६।

३ दीघनिकाय महापरिनिब्बानसुत्त।

४ मज्झिमनिकाय २।४।५।

५ पाण्डेय गोविन्दचन्द्र बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ ४६ ४७।

६ धम्मपद गाथा स १५३ १५४।

लेकिन तब तक उनकी मृत्यु हो चुकी थी। उनके बाद पूर्वपरिचित पञ्चवर्गीय भिक्षु सब प्रथम उनके ध्यान में आये। महावग्ग और पास-रासि-सुत्त में ऐसा उल्लेख है कि किस प्रकार दूर से ही गौतम बुद्ध को देखकर इन ब्राह्मणों ने पहले उनकी अगवानी न करने का निश्चय किया। परन्तु जब बुद्ध उनके निकट आये तो उनकी धीर गम्भीर मुद्रा से प्रभावित होकर उनका यथायोग्य आदर-सत्कार किया। तब उन्होंने उन भिक्षुओं को अपना धर्मोपदेश सुनाकर प्रथम बार धमचक्रप्रवतन किया जिसका विवरण धम्मचक्कपवतन-सुत्त के रूप म सयुत्तनिकाय और महावग्ग में सुरक्षित है। इस सुत्त में सुखभोग और काय-क्लेश से बचते हुए मध्यममाग के अनुसरण का उपदेश दिया गया है और उसीके विस्तारस्वरूप चार आयसत्यों का भी उल्लेख है।

धमचक्रप्रवर्तन के बाद अपने जीवन के शेष वर्ष गौतम बुद्ध ने स्थान-स्थान पर धर्मोपदेश देने और लोगो को सद्धम में भिक्षु भिक्षणी या उपासक-उपासिका के रूप मे दीक्षित करने में बिताया। महावग्ग म ऐसा उल्लेख है कि भगवान् बुद्ध न वाराणसी के श्रेष्ठि परिवार के अनेक लोगों को बौद्धधर्म में दीक्षित किया पुन उरुवेला की यात्रा की माग म तीस भद्रवर्गीय युवको को बौद्ध बनाया उरुवेला में तीन जटिल काश्यपो और उनके एक हजार अनुयायियो को उपदेश देकर अपने धम म प्रवेश कराया और बाद म राजगृह में बिम्बिसार से भट करने के उपरान्त सारिपुत्र और महामोद ग्ल्यायन को बौद्धधम में दीक्षित किया। पालि-स्रोतों से ज्ञात होता है कि बुद्ध ने सबसे अधिक उपदेश श्रावस्ती इसके बाद राजगृह वैशाली और कपिलवस्तु में दिये। कभी-कभी उनके द्वारा ग्राम-क्षेत्रों में भी जाने का उल्लेख है। सूत्रों से ज्ञात होता है कि प्राय सभी जगह बुद्ध को आदर मिला और समाज के सभी वर्गों के लोग उनसे प्रभावित हुए। इनमें राजपरिवार के भी लोग थे जैसे—मगधराज बिम्बिसार और

---

१ विनयपिटक महावग्ग १।९।

२ मज्झिमनिकाय १।३।६ हिन्दी अनुवाद पृ १ ९।

३ सयुत्तनिकाय ५४।२।१ हिन्दी अनुवाद भाग २ पृ ८ ७ विनयपिटक महावग्ग हिन्दी अनुवाद पृ ७९ ८।

४ पाण्डय गोविन्दचन्द्र बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ ५४।

५ विनयपिटक महावग्ग १।७।१ १।८ तथा आगे राकहिल लाइफ ऑफ बुद्ध प १४९।

६ वही १।२३ १।२४।

७ बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ ५५ ५६।

अजातशत्रु कोसलराज प्रसेनजित और उनके परिवार के सदस्य अनेक शाक्य और अन्य गणराज्यों के सदस्य अनाथपिण्डिक के समान कई महत्त्वपूर्ण सेठ महाशाल विद्वान् ब्राह्मण समाज के अन्य वर्गों के व्यक्ति जैसे वैशाली की गणिका अम्बपाली राजगृह का प्रसिद्ध वैद्य जीवक और कभी-कभी समाज के अत्यन्त निम्न स्तरों के व्यक्ति भी थे। इस प्रकार बुद्ध को अपने जीवनकाल में ही अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई थी।

तथागत ने ४५ वर्षों तक अपन धम का प्रचार कर वशाली में अन्तिम वर्षा वास किया। वैशाली म वर्षावास के समय ही भगवान अ यधिक रुग्ण हो गये थ। बीच में पावा म चुन्दकम्मारपुत्त के यहाँ उ होने सूकरमद्दव का भोजन किया जिससे उन्हें अतिसार हो गया। उसी अवस्था म भगवान वहाँ से चलकर वैशाखी पूर्णिमा के दिन कुशीनारा पहुचे और मल्लों के शालवन म दो शालवृक्षो के नीचे अन्तिम शय्या पर लेटे तथा अन्तिम उपदेश दिया— सभी सस्कार अनित्य ह अत क्षणमात्र प्रमाद न कर जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो।

परमकारुणिक उपशास्ता का जिन्होंने कि स्वय ज्ञान प्राप्त करन के पश्चात् भी ४५ वर्षों तक बहुजन हिताय बहुजन सुखाय विचरण कर अमृत-दु दुभि बजायी ई पू ५४३ की वैशाखी पूर्णिमा की रात्रि के अन्तिम प्रहर म परिनिर्वाण हो गया।

## बौद्धधर्म के मल सिद्धान्त

बौद्धधर्म एक महान धम है और इसके दाशनिक सिद्धान्त भी गम्भीर हैं। फिर भी इसके उपदेश जनसाधारण तथा विद्वान सबके लिये सहज-बोध्य हैं। इसकी सार्वभौमिकता का मूल कारण मानव-हृदय पर पडनवाला इसका गम्भीर प्रभाव है। देखने में बहुत सरल एव सुबोध्य होते हुए भी यह अत्यन्त गम्भीर ह। एक समय आयुष्मान आनन्द ने तथागत के पास जाकर कहा कि भन्त मझ यह धम गम्भीर होते हुए भी सरल-सा दीखता ह। तब भगवान ने उन्ह कहा था कि ऐसा मत कहो वास्तव म यह गम्भीर ह और बुद्धिमान एव ज्ञानी ही इसे समझ सकते हैं। बौद्धधम के मूल सिद्धान्तो का हम यहाँ सक्षेप में परिचय दे रहे हैं।

---

१ दीघनिकाय प्रथम भाग प ४१।
२ वही द्वितीय भाग प ७६।
३ वही महापरिनिब्बानसुत्त पृ २ ९।
४ वही प ११९।
५ वहा प १७४।
६ वही २/२ हिन्दी अनुवाद प ११ ।

बौद्धधर्म के मूल उपादान चार आर्यसत्य हैं। वास्तव में सारा बौद्धधर्म उन्हीं में अन्तर्भूत है। इसे बुद्धों का स्वयं उत्पादित एवं उत्कर्ष की ओर ले जानेवाला धर्मोपदेश कहते हैं। जब तक इसका ज्ञान नहीं होता तब तक कोई भी व्यक्ति बुद्ध नहीं हो सकता और न तो बिना इसके ज्ञान के मुक्ति ही प्राप्त हो सकती है। ऋषिपत्तन में इन्हीं सत्यों का उपदेश देकर तथागत ने धर्मचक्रप्रवर्तन किया था। भगवान् बुद्ध ने आर्यसत्यों की संख्या चार बतायी है। इनके द्वारा कुशल और अकुशल सभी कार्य-कारण धर्मों का कथन परिपूर्ण हो जाता है। ये निम्न हैं—

दु:ख सत्य, दु:खसमुदय सत्य, दु:खनिरोध सत्य और दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा सत्य। इन आर्यसत्यों का ज्ञान किन्हीं किन्हींको स्रोतापन्न अवस्था में, किन्हीं किन्हींको सकृदागामी और अनागामी अवस्था में आंशिक रूप में होता है। किन्तु अर्हत-अवस्था में पूर्णरूप से इनका ज्ञान होता है। जन्म, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, अप्रिय से संयोग, प्रिय से वियोग, इच्छित वस्तु की अप्राप्ति सभी दु:ख हैं, संक्षेप में आसक्ति के पाँचों स्कन्ध दु:ख हैं। द्वितीय सत्य में तृष्णा से दु:ख की उत्पत्ति कही गयी है और तृष्णा की काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा के रूप में संक्षिप्त परिभाषा की गयी है। तृतीय सत्य के अन्तर्गत तृष्णा की समूल समाप्ति से दु:ख से विमुक्ति का उपदेश है और चौथा सत्य अष्टांगिक मार्ग के रूप में आध्यात्मिक साधना का विधान प्रस्तुत करता है, जिसके अभ्यास से दु:खनिरोध की प्राप्ति होती है।

प्रतीत्यसमुत्पाद बौद्ध दर्शन का आधार है। इसे बिना जाने बौद्धधर्म को समझ सकना सम्भव नहीं है। भगवान बुद्ध ने सम्बोधि की रात्रि के तृतीय याम में प्रतीत्यसमुत्पाद का ज्ञान प्राप्त किया था। प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ, कारण के सद्भाव में उत्पत्ति और कारण के असद्भाव में उत्पत्ति का अभाव। भगवान ने स्वयं कहा है, जो प्रतीत्यसमुत्पाद को देखता है, वह धर्म को देखता है, जो धर्म को देखता है

---

१ मज्झिमनिकाय १।३।८ और आगे, थामस, ई. जे., हिस्ट्री ऑफ बुद्धिस्ट थाट, पृ. ४२।

२ दीघनिकाय, महापरिनिब्बानसुत्त, पृ. ४४-४५।

३ विभंगाट्ठकथा, पृ. ८७।

४ भिक्षु धर्मरक्षित, बौद्ध योगी के पत्र, पृ. ११-१११।

५ राहुल सांकृत्यायन, दर्शन दिग्दर्शन, पृ. ५१।

६ दीघनिकाय, द्वितीय भाग, ब्रह्मजालसुत्त, पृ. १२ और आगे, बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ. ५।

७ मज्झिमनिकाय ३।२।५, शान्तिदेव, बोधिचर्यावतार पञ्जिका, पृ. ४७४।

वह प्रतीत्यसमुत्पाद को देखता है। प्रतीत्यसमुत्पाद के विषय में तथागत ने कहा है भिक्षुओ प्रतीत्यसमुत्पाद कौनसा है? भिक्षुओ अविद्या के प्रत्यय से संस्कार संस्कारों के प्रत्यय से विज्ञान विज्ञान के प्रत्यय से नामरूप नामरूप के प्रत्यय से छ आयतन छ आयतनो के प्रत्यय से स्पर्श स्पर्श के प्रत्यय से वेदना वेदना के प्रत्यय से तृष्णा तृष्णा के प्रत्यय से उपादान उपादान के प्रत्यय से भव भव के प्रत्यय से जाति (जन्म) जाति के प्रत्यय से जरा मरण शोक परिदेव दु खदौमनस्य उपायास उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार इस सारे दु ख-समूह का समुदय होता है। भिक्षुओ यही प्रतीत्यसमुत्पाद कहा जाता है।

बौद्धधर्म म कर्म का अर्थ वैदिक कर्मकाण्ड न होकर मनुष्य की समस्त कायिक *वाचिक और मानसिक चेष्टाओं से है। कर्म दु ख की उत्पत्ति का प्रधान कारण माना* गया है। कर्म मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं—चित्तकर्म (मानसिक कर्म) और चेतसिक कर्म (काय और वचन से उत्पन्न कर्म)। इनमें चित्तकर्म प्रधान हैं। तथागत ने अन्त शुद्धि और सम्यक कर्म के ऊपर जोर देकर समाज म नैतिक आदर्शवाद की स्थापना की थी। एक स्थान पर महात्मा बुद्ध ने कहा था कि हर मनुष्य चाहे वह ब्राह्मण हो क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र हो जो सम्यक कर्म करेगा वह मोक्ष का अधिकारी होगा। यह ध्यान म रखने के योग्य है कि बुद्ध जैनियो की तरह कर्म को भौतिक तत्त्व नही मानते थे बल्कि उसे मूलत मानसिक संकल्प के रूप म ग्रहण करते थे। दूसरी ओर ब्राह्मण चिन्तन से उनका यह भेद था कि वे कर्म को किसी अजर अमर आत्मा का व्यापार नही समझते थे। संयुत्तनिकाय म इस प्रकार का साफ वक्तव्य है कि कर्म किसी आत्मा द्वारा किया हुआ नही अथवा यह शरीर न तो तुम्हारा है न दूसरे का यह केवल पुराना कर्म है इत्यादि।

---

१ मज्झिमनिकाय १।३।८।

२ पाण्डेय गोविन्दचन्द्र बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ ८३।

३ संयुत्तनिकाय १२।१।१ हिन्दी अनुवाद पहला भाग पृ १९२।

४ पाण्डेय गोविन्दचन्द्र स्टडीज इन दी ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म पृ ४३४ ४३५।

५ अंगुत्तरनिकाय जिल्द २ पृ १५७-५८ संयुत्तनिकाय जिल्द २ पृ ३९४।

६ धम्मपद गाथा-सं १।

७ दीघनिकाय ३।४ (अग्गञ्ञसुत्त)।

८ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ ८४ संयुत्तनिकाय भाग २ पृ ६४ ६५ तथा भाग ३ पृ १ ३ १ ४।

निर्वाण बौद्धधर्म का परम लक्ष्य है जहाँ समस्त कर्मक्लेशों का क्षय हो जाता है। वह स्थिति अतीन्द्रिय एवं परम सुखकारी है।[1] भगवान् बुद्ध ने अभिसम्बोधि-काल में उसका साक्षात्कार किया था। धम्मपद में अनेक स्थलों पर निर्वाण का उल्लेख आया है जहाँ पर निर्वाण को सबसे बड़ा सुख कहा गया है। निर्वाण को प्राय नित्य सत्य ध्रुव शान्त सुख अमृतपद परमार्थ इत्यादि कहा गया है।[2] तृष्णा के क्षय को ही निर्वाण कहा जाता है। निर्वाण इसी जन्म में प्राप्त होता है। इसीको सोपाधिशेष निर्वाण कहते हैं। इसको प्राप्त करने के लिए साधक को लोभ ईर्ष्या मोह मान दृष्टि विचिकित्सा सत्यान औद्धत्य अह्री तथा अनुताप इन दस क्लेशों का नाश करना पड़ता है। इसकी प्राप्ति के चार सोपान हैं—स्रोतापत्ति सकृदागामि अनागामि और अर्हत्। निर्वाण की प्राप्ति संस्कारों के पूर्ण शमन से होती है। वह एक ऐसा आयतन है जहाँ पृथ्वी जल तेज वायु आकाश अकिञ्चन्य लोक परलोक चन्द्र सूर्य च्युति स्थिति आधार आदि नहीं है। अकलङ्क ने भी बौद्धों के निर्वाण की परिभाषा का उल्लेख किया है। उन्होंने एक स्थान पर रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान इन पाँच स्कन्धों के निरोध को मोक्ष कहा है।

चतुर्थ सत्य मार्ग सत्य था। अपनी रूढ़ परिभाषा में यह अष्टांगिक मार्ग के रूप में वर्णित है। भगवान द्वारा उपदिष्ट मध्यम मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है। इसमें आठ अंग हैं यथा—सम्यक दृष्टि सम्यक संकल्प सम्यक वाक सम्यक कर्म सम्यक आजीव सम्यक व्यायाम (चेष्टा या प्रयत्न) सम्यक स्मृति एवं सम्यक समाधि। इसमें सम्यक दृष्टि प्रथम ही नहीं अपितु प्रमुख भी है। इसे प्रज्ञा भी कहते हैं। सम्यक का तात्पर्य सन्तुलित से है। सन्तुलित दृष्टि ही सम्यक दृष्टि है। सन्तुलित से तात्पर्य है दोनों अन्तों की ओर न जाकर बीच में रहना अर्थात् आचार की दृष्टि से और दार्शनिक दृष्टि से भी पूर्ण सन्तुलित रहना। इसी आर्य अष्टांगिक मार्ग में

---

१ मज्झिमनिकाय २।३।५।

२ धम्मपद गाथा स २ ३ २ ४।

३ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ ९३।

४ सुत्तनिपात पारायणवग्ग।

५ दीघनिकाय तृतीय भाग पृ १८२।

६ उदान पाटलिग्रामवग्ग।

७ न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार तत्त्वार्थ वार्तिक (अकलंक) १।१।८ तथा डॉ राधाकृष्णन इण्डियन फिलासफी जिल्द १ पृ ४१८।

८ धम्मपद गाथा स २७३।

शील समाधि और प्रज्ञा जो बौद्धधर्म के तीन स्तम्भ हैं अन्तर्भत हो जाते हैं। प्रारम्भ के दो अंग प्रज्ञा उसके बाद के तीन अंग शील तथा अन्तिम तीन समाधि हैं। दीघनिकाय के सूत्रों में शीलों की लम्बी सूचियाँ प्राप्त होती हैं। विशिष्ट प्रयोजन से शीलों की छोटी-बड़ी सूचियाँ भी बनायी गयी थी जैसे उपासको के पाँच या आठ शील संघ में नये प्रविष्ट हुए व्यक्ति के दस शील या दस शिक्षापद इत्यादि। शील प्राय वे ही हैं जो अष्टांगिक मार्ग में सम्यक वाक से लेकर सम्यक आजीव तक उल्लिखित हैं। प्रज्ञा से प्रभावित शील ही वास्तविक शील है। शील से समाधि और समाधि से प्रज्ञा का उत्पाद होता ह। इस तरह एक चक्र बन जाता है जो जीवन को परिशुद्ध सार्थक एव पूण बनाता है।

सक्षप म बद्ध के माग म बाह्य आचरण की शुद्धि और मानसिक अभ्यास दोनों पर बल था। आचरण-शुद्धि को अत्यन्त आवश्यक माना गया है परन्तु मानसिक अभ्यास या ध्यान को किंचित ऊँची कोटि म रखा गया है क्योकि इसीसे ज्ञान की प्राप्ति सम्भव होती है। इसी प्रकार बार-बार आत्मनिर्भरता और सत्य के स्वय साक्षात्कार पर बल दिया गया है।

## जैनधर्म का सामान्य परिचय

जैनधम की उत्पत्ति एव विकास का इतिहास इस धम के प्रचारको के इतिहास के साथ सम्बद्ध है। इस धर्म के प्रचारको को तीथकर कहा गया ह। यहाँ तीथकर का सामान्य अथ ससार-सागर को पार करनवाले माग की शिक्षा देनवाला है। इसी प्रकार जैन शब्द की उत्पत्ति जिन अर्थात जेता या विजय करनवाले से हुई है अर्थात् वह व्यक्ति जिसने अपनी इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर ली हो। जैन धर्म के प्रचारको ने स्वय सम्यक ज्ञान सम्यक दर्शन एव सम्यक चरित्र द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हुए तपस्या का आचरण कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। इसी कारण उन्हें जिन और सवज्ञ कहा गया। उन्होंने प्रथम इन्द्रियो पर विजय प्राप्त की तत्पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त किया और जिन द्वारा प्रशिक्षित धम को जैनधम कहा गया है।

---

१ पाण्डय गोविन्दचन्द्र स्टडीज इन दि ओरिजिन्स आफ बद्धिज्म पृ ५१४ दीघनिकाय सामञ्ञफलसुत्त तथा थामस इ जे हिस्ट्री ऑफ बद्धिस्ट थाट पृ ४४।

२ दीघनिकाय ब्रह्मजालसुत्त।

३ सुत्तनिपात धम्मिकसुत्त।

४ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ १४२।

५ शास्त्री कैलाशचन्द्र जैनधर्म पृ ६५।

जैन-अनुश्रुति के अनुसार इस भरत-क्षेत्र में अब कर्मयुग है उसके पूर्व भोगयुग था। भोगयुग की अवस्था में मानव स्वर्णिम आनन्द प्राप्त करता था। मनुष्य की सारी आवश्यकताएं कल्पवृक्ष से पूरी हुआ करती थीं। परन्तु यह नैसर्गिक सुख अधिक दिनों तक न रह सका जनसंख्या बढ़ी तथा मनुष्य की आवश्यकताएं नित्य नया रूप धारण करने लगीं। फलतः भोगयुग कर्मयुग में बदल गया। इसी समय चौदह कुलकर या मनु उत्पन्न हुए। ये कुलकर इसलिए कहलाते थे कि इन्होंने कुल की प्रथा चलायी तथा कुल के उपयोगी आचार रीति रिवाज सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया। चौदह कुलकरों में श्री नाभिराय अन्तिम कुलकर हुए। इनके पुत्र ऋषभदेव थे जो जैनधर्म के आदि प्रवर्तक हुए। इन्हींसे जैनधर्म की परम्परा का प्रारम्भ है। भगवान् ऋषभदेव को जैन-ग्रन्थों के अनुसार जिन या तीर्थंकर माना जाता है। सम्पूर्ण जैनधर्म तथा दर्शन ऐसे ही चौबीस तीर्थंकरों की वाणी या उपदेश का संकलन है। इन चौबीस तीर्थंकरों में भगवान ऋषभदेव आद्य तथा भगवान महावीर अन्तिम तीर्थंकर माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त और भी २२ तीर्थंकर हुए—अजितनाथ सम्भवनाथ अभिनन्दननाथ सुमतिनाथ पद्मप्रभ सुपार्श्वनाथ चन्द्रप्रभ सुविधिनाथ शीतलनाथ श्रेयांसनाथ वासुपूज्य विमलनाथ अनन्तनाथ धर्मनाथ शान्तिनाथ कुंथुनाथ अरनाथ मल्लिनाथ मुनि सुव्रत नमिनाथ अरिष्टनेमि और पार्श्वनाथ। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म ५९९ ई० पू० के आसपास विदेह की राजधानी वैशाली के कुण्डनपुर ग्राम में हुआ था जो आधुनिक मुजफ्फरपुर जिले का वसुकुण्ड है। उनके पिता सिद्धार्थ एक क्षत्रिय-कुल के प्रमुख थे और माता त्रिशला विदेह के राजा की बहन थीं। जैनागम एवं पुराण ग्रन्थों के उल्लेखों से पता चलता है कि वर्धमान का प्रारम्भिक जीवन वैभव से परिपूर्ण था। उन्हें राजकुमारोचित सभी विद्याओं की शिक्षा दी गयी। शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात दिगम्बर-परम्परानुसार वे तीस वर्ष की अवस्था तक अविवाहित ही रहे और तत्पश्चात् प्रव्रज्या ग्रहण की। लेकिन इसके विपरीत श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् युवा होने पर वर्धमान का विवाह यशोदा नामक एक राजकुमारी से हुआ जिससे एक पुत्री भी उत्पन्न हुई थी। उस पुत्री का विवाह जामालि नामक एक क्षत्रिय युवक से हुआ था जो कालान्तर में महावीर का शिष्य भी बन गया था। बुद्ध के विपरीत महावीर अपने

---

१ जैन हीरालाल भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान पृ० १।

२ जैन जगदीशचन्द्र जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज पृ० १।

३ हरिवंशपुराण ६६।८।

४ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान पृ० २४।

माता-पिता की मृत्यु तक उन्हींके घर में रहे और बाद में जब वह तीस वर्ष के हो गये तब उन्होंने आध्यात्मिक जीवन म प्रवेश किया।

भिक्षु बन जाने के पश्चात ज्ञानपिपासु वर्धमान तपस्या मे लीन हो गये। विभिन्न विघ्न-बाधाओं को सहन करते हुए भगवान महावीर लगभग बारह वष तक कठिन तपस्या करते रहे। तरहव वष वैशाख शुक्ल दशमी के दिन जम्भिक ग्राम के बाहर ऋजुकला नदी के उत्तर तट पर एक शालवृक्ष के नीचे उन्हें पूण ज्ञान प्राप्त हो गया अर्थात जैसा कि कहा जाता है वह केवली हो गये। इस साधना के फल स्वरूप वह तीथकर बने और अपने जीवन का शेषांश उन्होंने धम के प्रचार और अपने मुनिसघ को सगठित करन में बिताया। जैनधम के दोनो सम्प्रदायो ( श्वेताम्बर एव दिगम्बर ) की परम्परा से ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर का निर्वाण ५२७ ई पू के आसपास लगभग ७२ वष की आयु म पावापुरी म हुआ था जो पटना जिले में बिहारशरीफ के समीप लगभग सात मील की दूरी पर स्थित है।

बौद्धधर्म के विपरीत जैनधर्म का प्रभाव भारत के अन्दर ही सीमित रहा और भारत के अन्दर भी इसका प्रभाव अपने ज म के प्रदेश के अ दर अपेक्षाकृत कम तथा उसके बाहर विशषत पश्चिम और दक्षिण म अधिक रहा। महा मा बद्ध की भाँति भगवान् महावीर को भी अपने धर्म के प्रचार प्रसार के लिए अनक राजवशो का सहयोग मिला। लिच्छवि-नरेश चेटक स्वय महावीर का शि य था। ज्ञाताधमकथा तथा अनुत्तरोपपातिक दशाग आदि आगम ग्रन्थो से भी ज्ञात होता ह कि बिम्बिसार का पुत्र अजातशत्रु चम्पानरेश दधिवाहन तथा उसकी पत्री च दना आदि सभी महावीर के माग के अनुयायी बने। महावीर ने अपने अनुयायियो को चार भागों म विभाजित किया था—मुनि आर्यिका श्रावक और श्राविका। मुनि और आर्यिका घर-गृहस्थी का त्यागकर सबसे दूर रहनेवाले श्रमण एव श्रमणी के रूप में विभाजित थ तथा अन्तिम दो वग श्रावक और श्राविका के नाम से जाने जाते थे जो घर-गृहस्थी में रहकर जैनधम का आचरण करते थे। यही उनका चतुर्विध जैन सघ था।

---

१ हिरियन्ना एम भारतीय दशन की रूपरेखा प १५७।

२ पाण्डेय राजबली प्राचीन भारतीय कालगणना एव पारम्परिक सवत्सर प २१ २२।

३ ज्ञाताधमकथा अध्याय १ ।

४ अनुत्तरोपपातिकदशा तृतीय वर्ग सूत्र ४।

## जैनधर्म के सिद्धान्त

जनधम का सिद्धान्त भी बौद्धधर्म की तरह एक प्राकृत भाषा अधमागधी में लिखित है और परम्परा के अनुसार इसका सम्पादन पाँचवीं शताब्दी ईसवी के अन्त या छठी शताब्दी के आरम्भ के आसपास बलभी में देवर्षि की अध्यक्षता में हुआ। इस अपेक्षाकृत बाद की तिथि को देखते हुए कुछ लोग इस जैन-सिद्धान्त के मूल उपदेश के अनुसार होने में सन्देह करते हैं। लेकिन सचाई यह प्रतीत होती है कि देवर्षि ने उन ग्रन्थों को व्यवस्थित मात्र किया जो पहले से अस्तित्व में थे और तीसरी शताब्दी ई प से चले आ रहे थे। इस तिथि से पहले भी कुछ जैन-ग्रन्थ थे जिन्हें पर्व कहा जाता है लेकिन बाद में वे लुप्त हो गये तथा इनका स्थान नये ग्रन्थ अगों ने ले लिया। इस प्रकार जैन-सिद्धान्त के वर्तमान रूप की प्रामाणिकता में सन्देह करने का कोई कारण नही है हालाँकि इसका यह मतलब नहीं है कि इसमें यदा-कदा कोई परिवर्तन-परिवधन नही हुए।

जैनधम ईश्वर की सृष्टि म विश्वास नही करता। इस धम के अनुसार मनुष्य स्वय अपने भाग्य का विधाता होता है। सासारिक एव आध्यात्मिक जीवन में मनुष्य अपने प्रत्येक कम के लिए उत्तरदायी है। उसके सारे सुख-दु ख कम के ही कारण हैं। ससार में जीव जिन कर्मों से बधकर घूमता रहता है उत्तराध्ययनसूत्र म उनकी सख्या आठ बतलायी गयी है। इस ससार में जितने भी जीव हैं सभी अपने अपन कर्मों के द्वारा ससार भ्रमण करते हुए विभिन्न योनियों में जाते हैं। किए हुए कर्मों का फल भोगे बिना जीव को मुक्ति नही मिलती। अत मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने पूवजन्म के कम-फल का नाश करे और इस जन्म म किसी प्रकार के कमभाव से गृहीत न हो।

स्याद्वाद जैनधर्म-दशन का प्रधान सिद्धान्त है। स्यात् शब्द अस धातु के विधिलिङ के रूप का तिङन्त पद जैसा प्रतीत होता है। लेकिन यह शब्द अव्यय है जो कथंचित् अथवा अमुक दृष्टि का प्रतीक है। इस प्रकार स्याद्वाद का अर्थ सापेक्षवाद अपेक्षावाद और कथंचित्वाद ह जो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से वस्तु के तत्त्व का निरीक्षण करता है। जैन-दशन में स्याद्वाद को अनेकान्तवाद भी कहते हैं क्योंकि स्याद्वाद से

---

१ समवायागसुत्त सूत्र ६ ।

२ स्टीवेन्सन एस हर्ट ऑफ जैनिज्म पृ १६।

३ उत्तराध्ययनसूत्र ३३।२ ३।

४ जैनी जे आउट लाइन्स ऑफ जैनिज्म पृ १३१ १४ ।

५ मेहता मोहनलाल जैनधर्म-दशन पृ ३५८।

जिस पदाथ का कथन होता है वह अनेकान्तात्मक है। अनेका तात्मक अर्थ का कथन ही अनेकान्तवाद है। अत अव्यय स्यात अनेका त का द्योतक है। इसलिए स्याद्वाद को अनेकान्तवाद कहा गया है। देवे द्र मनि शास्त्री आदि जैन विद्वानो के अनुसार वास्तविक सत्य की खोज करन म अनकान्तवाद सहायक होता है। अनेकान्त दृष्टि से प्रत्येक वस्तु नित्य एव अनित्य दोनों है। तत्त्वाथसूत्र के अनुसार प्रत्येक सत् पदाथ उत्पाद व्यय एव ध्रौव्यात्मक है। स्याद्वाद के अनुसार सत कभी नाश और असत की कभी उत्पत्ति नही होती। सूत्रकृताग के अनुसार वस्तुतत्त्व को जीव एव शरीर के रूप म माना गया ह। प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक ह। उन अनन्त धर्मों की यथाक्रम सगति बैठाने के लिए विधि एव निषध आदि की भावना से सात प्रकार की भावनाओं का विचार किया गया है। इसे ही सप्तभगीनय कहत हैं। ये सात प्रकार के हैं—

स्यात अस्ति स्यात नास्ति स्यात अस्ति नास्ति स्यात अवक्तव्य स्यात अस्ति अवक्तव्य स्यात् नास्ति-अवक्तव्य स्यात् अस्ति-नास्ति च अवक्तव्य। यहाँ जैनो के अनुसार इन सात प्रकार की अवस्थाओ म द्रव्य क्षत्र काल तथा भाव आदि चार स्वरूपो को लेकर विभिन्न अवस्थाओ की सम्भावना की गयी है जिसके द्वारा वस्तु तत्त्व की सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

जनो न विश्व के प्राकृतिक तथा अप्राकृतिक स्वरूपो का विचार कर सात प्रकार के मल तत्त्वो का पता लगाया। ये तत्त्व जीव अजीव आस्रव ब ध सवर निजरा और मोक्ष हैं पुण्य पाप को भी इनम जोडकर उत्तराध्ययनसूत्र म इनकी सख्या ९ बतलायी गयी है। भगवान महावीर ने तत्त्व-ज्ञान की शिक्षा म बताया है कि जीव और अजीव अर्थात चेतन और जड ये दो मल तत्त्व है जो परस्पर सम्बद्ध हैं। चेतन की मन वचन काया से सम्ब धित क्रियाओ द्वारा इस जड एव चेतन

---

१ म ल्लिषण स्याद्वाद मजरी पृ ६।
२ शास्त्री देवेन्द्रमनि धर्म और दशन प १ ४।
३ तत्त्वाथसूत्र ५।
४ भारतीय दशन की रूपरेखा पृ १६४–१६६।
५ सूत्रकृताग १।१।१७।
६ स्याद्वाद मजरी २३।
७ मिश्र उमेश भारतीय दशन प १३१।
८ तत्त्वाथसूत्र १।४।
९ उत्तराध्ययनसूत्र २८।१४।

सम्बन्ध की परम्परा प्रचलित है। इसे ही कर्मबन्ध कहा गया है। नियम एवं व्रताचरण के पालन द्वारा इस कर्मबन्ध की परम्परा को तथा संयम एवं तप द्वारा पुराने कर्मबन्ध को रोका जा सकता है और जड तत्त्व से सर्वथा मुक्त जीव अपने अनन्त ज्ञान एवं दर्शनात्मक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार की क्रिया द्वारा जन्म मरण की परम्परा का विच्छेद करके मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। जैनधर्म में मानव-जीवन का यही परमलक्ष्य बताया गया है।

भगवान् महावीर ने अपने धर्म का मूलाधार अहिंसा माना है और अहिंसा के ही विस्तार म उन्होंने पचमहाव्रतो को स्थापित किया। ये पाँच व्रत हैं—अहिंसा अमृषा (सत्य) अचौर्य अमैथन (ब्रह्मचर्य) एव अपरिग्रह। इन पाँच व्रतो को मुनियो द्वारा पूर्णत पालन किये जाने पर महाव्रत और गृहस्थों द्वारा स्थल रूप से पालन किये जाने पर महाव्रत और गृहस्थो द्वारा स्थल रूप से पालन किये जाने पर अणव्रत नाम दिया गया। जैन-ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि पार्श्वनाथ ने चातुर्यामधर्म और महावीर न पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया। पार्श्वनाथ आदि मध्य के २२ तीर्थंकर भिक्षुओ के लिए चार ही व्रतो को आवश्यक मानते थे परन्तु महावीर ने पाँचवें ब्रह्मचर्यव्रत को भी आवश्यक बतलाया। दूसरा मतभेद भिक्षुओं के लिए वस्त्र धारण करने पर था। भगवान महावीर ने अचेलत्व पर बल दिया।

भगवान महावीर समता के पक्षपाती थे। अत उन्होंने जाति एव वर्ण में विश्वास नही किया। उन्होन स्पष्ट रूप से ब्राह्मणों के यज्ञ-याणादि का विरोध करते हुए कहा है कि हे ब्राह्मणो! अग्नि का प्रारम्भ कर और जल मजन कर बाह्यशुद्धि के द्वारा अन्तःशुद्धि क्यों करते हो? जो मार्ग केवल बाह्यशुद्धि का है उसे कुशल पुरुषों ने इष्ट नही बतलाया ह। कुशा यूप तृण काष्ठ और अग्नि तथा प्रातः और सायंकाल जल का स्पर्श कर प्राणी और भूतो का विनाश कर हे मन्दबुद्धि पुरुष तुम केवल पाप का ही उपार्जन करते हो। इस प्रकार बाह्यशुद्धि एव कर्मकाण्ड को निरर्थक बतलाकर उन्होने शुद्ध आचरण की प्रतिष्ठा पर बल दिया। उत्तराध्ययन में कहा गया है कि धर्म मेरा जलाशय है ब्रह्मचर्य मेरा शान्ति-तीर्थ है आत्मा की प्रसन्नलेश्या मेरा निर्मल घाट है जहाँ स्नान कर आत्मा विशुद्ध होता है। अत जो

१ उत्तराध्ययनसूत्र २१।१२।
२ वही २३।२३।
३ वही २३।१३।
४ वही १२।३८ ३९।
५ वही १२।४६।

चरित्राचार के गुणों से सयुक्त है जो सर्वोत्तम सयम का पालन करता है जिसने समस्त आस्रवो को रोक दिया है जिसने कर्मों का नाश कर दिया है वह विपुल उत्तम और ध्रुवगति मोक्ष को पाता है।[1] ब्राह्मणों की जन्मजात वर्णव्यवस्था को अस्वीकार करते हुए उन्होंने कर्म के आधार पर उसकी व्याख्या की। उनका स्पष्ट विचार था कि कर्म से ही कोई ब्राह्मण होता है कर्म से ही क्षत्रिय होता है कर्म से ही वैश्य होता है और कर्म से ही मनुष्य शूद्र भी होता है।[2] निर्वाण-प्राप्ति के लिए यह जरूरी है कि मनुष्य अपनी निम्न प्रवृत्तियों का दमन करे। उन्होने सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र एव सम्यक दर्शन को ही मोक्ष का कारण माना है।[3]

बौद्ध एव जैन-ग्रन्थो में उल्लिखित साक्ष्यो से पता चलता है कि लगभग ६ ई पू में पार्श्वनाथ द्वारा जिस धर्म का प्रचार-कार्य प्रारम्भ किया गया था उसे महावीर स्वामी ने पूरे बिहार प्रदेश में प्रचार-कार्य द्वारा एक लोकप्रिय धर्म बना दिया। धीरे धीरे समस्त उत्तर भारत एव बगाल में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ गयी और महावीर के पश्चात् तो समस्त देश में यह धर्म अत्यन्त लोकप्रिय हो गया।

## जैनधर्म और बौद्धधर्म मे समानता और विभिन्नता

भारतीय सस्कृति अनेक प्रकार के विचारो का विकसित रूप है। ये विचार अनादिकाल से अनेक धाराओ में बहते चले आ रहे हैं। इन्हें मुख्य रूप से दो भागो में विभक्त किया जा सकता है—एक वैदिक-परम्परा तथा दूसरी श्रमण-परम्परा। श्रमण-परम्परा की अनेक शाखाए रही हैं किन्तु वर्तमान में केवल दो शाखाए ही दृष्टिगोचर होती हैं जैन परम्परा तथा बौद्ध-परम्परा। ये दोनो ही परम्पराएँ अन्य परम्पराओ की भाँति धर्म एव दर्शन के रूप में विकसित हुई हैं।

इस प्रकार बौद्ध-दर्शन एव जैन-दर्शन दोनो श्रमण-परम्पराओ की दो पृथक्-पृथक् विचारधाराए हैं। स्वाभाविक रूप से इनमे कुछ दृष्टियों से साम्य और कुछ दृष्टियो से वैषम्य है। साम्य इस रूप में है कि ये दोनों दर्शन न तो वेद को प्रमाण मानते हैं और न ही ईश्वर को जगत का कर्ता। ये कर्म सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। ससार में सत्त्व (जीव) अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण ही एक गति से दूसरी गति में जन्म एव मरण को प्राप्त करता हुआ नाना दुखों को भोगता रहता है। ससार में जो भी विचित्रता है वह प्राणियो के कर्मों के फलस्वरूप ही है। सत्त्व इन कर्मों से मुक्त हो जाता है तो

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २।५२।

२ वही २५।३३।

३ तत्त्वार्थसूत्र १।१।

उसका जन्म और मरण के द्वारा संसार में भटकना समाप्त हो जाता है। थोड़े-से भेद के साथ इस कर्म-सिद्धान्त को दोनों ही परम्पराएँ स्वीकार करती हैं।

किन्तु इन समानताओं के होते हुए भी दोनों धर्मों में जो मौलिक अन्तर है जिनके कारण ये दोनों धर्म भिन्न हैं। इनमें सबसे प्रमुख बात पदार्थविषयक मान्यता है। बौद्ध-दर्शन के अनुसार पदार्थ उत्पाद एवं व्यय से युक्त है जब कि जैन-दर्शन में पदार्थ उत्पाद व्यय एवं ध्रौव्य से युक्त है। फलतः वह नित्यानित्यात्मक सामान्य विशेषात्मक एवं भेदाभेदात्मक है। बौद्ध-दर्शन में आत्मा को नित्य एवं स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में न मानकर पंचस्कन्धात्मक माना गया है जब कि जैन-दर्शन में आत्मा को परिणामी नित्य स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। जैनधर्म आत्मवादी और बौद्धधर्म अनात्मवादी है।

बौद्ध और जैनधर्म का साम्य और वैषम्य स्पष्ट है। अतः यह एक विचारणीय विषय है कि इन दो विचारधाराओं में उक्त साम्य एवं वैषम्य किस सीमा तक है और उसका आधार क्या है? उक्त प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए धम्मपद एवं उत्तराध्ययनसूत्र का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि जहाँ एक ओर धम्मपद में जो खुद्दकनिकाय का एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है बौद्धधर्म के समस्त तत्त्व संक्षेप में वर्णित हैं तो दूसरी ओर उत्तराध्ययन में जैन-दर्शन के सभी मूल सिद्धान्तों का कथन है। बुद्ध ने धम्मपद में बौद्धधर्म के तत्त्वों का वर्णन कर तथा महावीर ने उत्तराध्ययन में सभी जैन सिद्धान्तों का वर्णन कर गागर में सागर भरने की कहावत चरितार्थ की है। अतः इन दोनों ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन जो कि आज तक नहीं हुआ है बौद्ध एवं जैन दर्शन के सम्बन्धों को अधिक अच्छी तरह से समझने में सहायक हो सकता है।

## बौद्ध-साहित्य में धम्मपद का स्थान

धम्मपद पालि बौद्ध-साहित्य का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। ब्राह्मण या श्रौतस्मार्त-परम्परा में जो महत्त्व श्रीमद्भगवद्गीता को प्राप्त है वही स्थान बौद्ध परम्परा में धम्मपद को है। दोनों में मौलिक अन्तर भी है। गीता का एक ही कथानक है और श्रोता भी एक ही है लेकिन धम्मपद के विभिन्न कथानक और विभिन्न श्रोता हैं। गीता का उपदेश एक निश्चित समय में समाप्त किया गया था लेकिन धम्मपद में तथागत के पैंतालीस वर्षों के उपदेश संगृहीत हैं। भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति से लेकर परिनिर्वाणपर्यन्त समय-समय पर जो उपदेश दिये उनका महत्त्वपूर्ण अंश धम्मपद में संकलित है। बौद्धधर्म-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त इसमें संक्षेप में समाहित हैं।

धम्मपद शीर्षक की व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से की गयी है। यह एक अनेकार्थक शब्द है जिसे स्वतः बौद्धों ने भी स्वीकार किया है।

धम्मपद में दो शब्द हैं—धम्म और पद । धम्म शब्द संस्कृत के धर्म शब्द का पालि रूपान्तर है । बौद्ध-साहित्य म धम शब्द व्यापक अर्थों में प्रयुक्त है और इसकी एक निश्चित परिभाषा देना कठिन ह । धम्म के अनक अथ किये गये हैं यथा—अनुशासन कानून या धम । इसका अथ प्रसग के अनुसार ही लगाया जा सकता है । प्राय इसका प्रयोग विशेष रूप से बुद्ध के द्वारा उपदेशित धर्म या कानून से है जो प्रत्येक बौद्ध को स्वीकार करना चाहिए तथा उस पर आचरण करना चाहिए । धम्मपद म भी धम्म शब्द सदाचार के लिए प्रयुक्त हुआ ह क्योंकि इस रचना का मुख्य प्रतिपाद्य—अप्रमाद अक्रोध अहिंसा अस्तय अपरिग्रह और अवैर आदि सदाचार के नियम हैं । बौद्धधम के पचशील दशशील आर्यसत्य अष्टागिक माग आदि नियमों और सिद्धान्तो का इसम विवचन ह । पद के भी कई अर्थ हैं—स्थान सुरक्षा निर्वाण कारण शब्द वस्तु अश पदचिह्न आदि । अत धम्मपद का अथ धम का पदचिह्न हो सकता है । इसके अतिरिक्त पद शब्द का अथ वाक्य या गाथा की पक्ति भी होता है । अत धम्मपद का अथ धम-सम्ब धी वाक्य या गाथा भी ह । बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धम-सम्बन्धी शब्दो वाक्यो या गाथाओं को भिक्ष उनके जीवन-काल म ही कण्ठस्थ करने लग थे । सुत्तनिपात के अटठकवग्ग को बद्ध के एक शिष्य ने उनके सामने सस्वर सुनाया था । इसी प्रकार दूसरे बद्ध-वचन भी भिक्षओ के द्वारा कण्ठस्थ किये जाते थे और उनका किसी न किसी रूप म सकलन भी उस समय विद्यमान था । धम्मपद ऐसा ही एक सकलन ह । स्वय धम्मपद की दो गाथाओ म धम्मपद शब्द का प्रयोग मिलता ह । यह उसकी प्राचीनता का सूचक ह । य दोनो गाथायें इस प्रकार हैं —

कौन इस पृथ्वी तथा दवताओ के सहित इस यमलोक को जीतेगा ? कौन कुशल पुरुष के समान इस सुन्दर रूप से उपदिष्ट धम्मपद को चनेगा ?

शैक्ष्य पुरुष इस पथ्वी तथा दवताओ के सहित यमलोक को जीतेगा । शैक्ष्य पुरुष पुष्प के समान इस सुन्दर रूप से उपदिष्ट धम्मपद को चुनेगा ।

सयुत्तनिकाय म भी धम्मपद शब्द का प्रयोग धमपदो के रूप म हुआ है । इस निकाय के पियकर-सुत्त म कहा गया है कि एक बार भिक्षु अनिरुद्ध श्रावस्ती के जेतवना राम में प्रात काल कुछ धमपदो का पाठ कर रहे थे और उन्हें सुनने की

१ नारदथेर धम्मपद की भमिका मक्सम्यलर एफ जिल्द १ धम्मपद की भूमिका और आगे राधाकष्णन् एस धम्मपद की भमिका ।
२ उपाध्याय भरतसिंह पालि साहित्य का इतिहास पृ २३८ ।
३ धम्मपद गाथा-सख्या ४४ ४५ ।

आतुरता में एक स्त्री अपने शोर करते हुए पुत्र को चुप करती हुई कहती है— 'मेरे प्रियंकर ! चुप हो जा । शोर मत कर । देख यह भिक्षु धम्मपदों को पढ़ रहा है । यदि हम धम्मपदों को जानेंगे तो हमारा कल्याण होगा । इस प्रकार बुद्ध-वचन के रूप में धम्मपद की प्रतिष्ठा अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है ।

धम्मपद सुत्तपिटक में खुद्दक के अन्तगत एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है । इसमें कुल २६ वर्ग और ४२३ गाथाय हैं । धम्मपदट्ठकथा के अनुसार इसकी सख्या ४२४ है क्योंकि गाथा-सख्या ४१६ से सम्बन्धित दो कथायें हैं । दोनों ही राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में कही गयी थी जिनमें एक जटिल स्थविर के और दूसरी जोतिय स्थविर के सम्बन्ध की है । बौद्ध-परम्परा इन्हें भिन्न भिन्न अवसरों पर बुद्ध द्वारा कही हुई स्वीकार करती है । यद्यपि इस मान्यता को एतिहासिक तथ्य के रूप में स्वीकार करना कठिन है परन्तु धम्मपद को प्राय खुद्दकनिकाय के अपेक्षाकृत प्राचीन स्तर का माना जाता है ।

प्रथम यमकवग्ग में अधिकतर ऐसे उपदेशो का संग्रह है जिनमें दो-दो बातें जोड के रूप म आती हैं जिनके द्वारा उनके कृष्ण और शुक्ल पक्ष को बतलाया गया ह । जैसे बुरे मन से किये गये काय का फल बुरा और पवित्र मन से किये गय काय का फल सुखद होता ह । गाली देने से वैर शान्त नही होता अपितु उसे मन में न करने से शान्त होता है । आत्मसयम वास्तविक श्रामण्य और सत्सकल्प के स्वरूप और महत्त्व के वणन इस वग के मुख्य विषय हैं । इस वग में २ गाथाय हैं ।

दूसरे अप्पमादव ग म प्रमाद की निन्दा और अप्रमाद की प्रशसा की गयी है । अप्रमाद के द्वारा ही अनुपम योग-क्षेम निर्वाण को प्राप्त किया जा सकता है । जो प्रमाद नही करता वह निर्वाण के समीप कहा गया है । इस वर्ग में १२ गाथाय हैं ।

तीसरे चित्तवग्ग में चित्त-सयम का वर्णन है । इसम बताया गया है कि दमन किया हुआ चित्त सुखावह होता है । मिथ्या दृष्टि में लगा हुआ चित्त सबसे

---

१ धम्मपद गाथा स १२ ।

२ वही ३४ ।

३ वही स २३ ।

४ वही ३२ ।

५ वही ३५ ।

बुरा होता है। लेकिन इसके विपरीत सम्यक दृष्टि में लगा हुआ चित्त सबसे श्रेष्ठ होता है। इस वग में ११ गाथाय हैं।

चौथे पुष्फवग्ग में पुण्य चनने की भाँति अत्यधिक पुण्यकम करने का सन्देश है। इस वग म पुण्य को आलम्बन मानकर नतिक उपदेश दिया गया है। व्यक्ति को चाहिए कि दूसरों के दोषों को न देखे प्रत्युत अपन ही कृत्याकृत्य का अवलोकन करे। शील की गन्ध सभी ग धों से उत्तम ह। इस वग में १७ गाथाय हैं।

पाँचव बालवग्ग में मूर्खों के लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि उनके लिए ससार (आवागमन) लम्बा ह। इसी वग म सासारिक उन्नति और परमाथ के माग की विभिन्नता बतलाते हुए कहा गया है कि लाभ का रास्ता दूसरा और निर्वाण को ले जानेवाला दूसरा ह। इसे इस प्रकार जानकर बद्ध का अनुयायी भिक्ष सत्कार का अभिन दन नही करता बल्कि एकान्तचर्या को बढाता है। इस वग में १६ गाथाय हैं।

छठे पण्डितवग्ग म वास्तविक पण्डित के लक्षण बतलाये गय ह जो अपने लिए या दूसरो के लिए पुत्र धन और रा य की स्पृहा नही करत जो अधम से उन्नति नही चाहते हैं वही सदाचारी पुरुष प्रज्ञावान और धार्मिक है। इस वग म १४ गाथायें हैं।

सातव अरहन्तवग्ग म का यमय भाषा म अहतो के लक्षण बतलाय गये हैं। अर्हत् पथ्वी के समान क्षब्ध नही होता ब कि इ द्रकील के समान अचल होता ह उसके काय मन और वचन शान्त होते है। इस वग म १ गाथाय हैं।

आठव सहस्सवग्ग में हजार की उपमा से उपदेश दिये गये हैं। लडाई के मैदान म हजारो मनुष्यो को जीतने की अपेक्षा स्वय को जीतना उत्तम विजय है।

---

१ धम्मपद गाथा-स ४२।
२ वही ४३।
३ वही ५ ।
४ वही ५५।
५ वही ६ ।
६ वही ७५।
७ वही ८४।
८ वही ९५।
९ वही ९६।
१ वही १ ३।

सिद्धान्त के मनभर से अभ्यास का कणभर अच्छा है। सहस्रों यज्ञों से सदाचारी जीवन श्रेष्ठ है। इस वर्ग में १७ गाथायें हैं।

नवें पापवग्ग में पाप न करने तथा पुण्य का सचय करने को कहा गया है। यदि व्यक्ति एक बार पाप कर ले तो उसे दुबारा नहीं करना चाहिए।[1] क्योंकि पुण्य का ही दूसरा नाम सुख है।[2] इस वर्ग में १३ गाथायें हैं।

दसवे दण्डवग्ग म कहा गया है कि सभी दण्ड से भय खाते हैं इसलिए सबको अपने समान समझ न तो किसीको मारें और न मारने के लिए किसीको प्रेरित करें।[3] इस वग में १७ गाथायें हैं।

ग्यारहव जरावग्ग म वृद्धावस्था के दु खों का वणन है। इसी वग में भगवान् के व उदगार भी सन्निहित हैं जो उन्होने सम्यक सम्बोधि के अनन्तर व्यक्त किये थ।[4] इस तरह ११ गाथाय इस वग म विद्यमान हैं।

बारहवें अत्तवग्ग म आत्मोन्नति का माग दिखाया गया है। इसम कहा गया है कि पहले अपने को उचित कार्य म लगावे तदनन्तर दूसरे को उपदेश दे।[5] इस वग म १ गाथाय हैं।

तेरहव लोकवग्ग में लोक-सम्बन्धी उपदेश हैं। इसके अ तर्गत नीच कम न करना प्रमाद म न रहना आवागमन के चक्र म न पडना तथा धर्म का आचरण करना बतलाया गया ह।[6] इस वग म १२ गाथाय हैं।

चौदहव बुद्धवग्ग म भगवान बुद्ध के उपदेशों का सर्वोत्तम सार दिया हुआ ह। इस वग म १८ गाथायें हैं।

पन्द्रहव सुखवग्ग म उस सुख की महिमा गायी गयी है जो धन-सम्पत्ति के सयोग से रहित और केवल सदाचारी तथा अकिचनतामय एव मैत्रीपूण जीवन से ही लभ्य है। इस वर्ग में १२ गाथायें हैं।

सोलहव पियवग्ग में यह कहा गया है कि जिसके जितने ही अधिक प्रिय है उसको उतने ही अधिक दु ख हैं। इसलिए प्रिय न बनाए। प्रिय से शोक और

---

१ धम्मपद गाथा स ११७।

२ वही ११८।

३ वही १२९ १३ ।

४ वही १५३ १५४।

५ वही १५८।

६ वही १६७।

भय उत्पन्न होता है। एसे ही प्रेम रति काम और तृष्णा से किन्तु इससे रहित को शोक और भय नहीं होते। इस वग म १२ गाथाय हैं।

सत्रहव कोधवग्ग म क्रोध को त्यागने का उपदेश है। सत्य अक्रोध और दान इन तीन बातो से व्यक्ति स्वग प्राप्त कर लेता है। इस वग म १४ गाथायें हैं।

अठारहवें मल्लवग्ग म अपने चित्तमल को साफ कर अपनी रक्षा के लिए द्वीप बनाने का उपदेश है। इस वग म २१ गाथाय हैं।

उन्नीसव धम्मटठवग्ग म धम म स्थिर रहनेवालों की प्रशसा की गयी है। पण्डित धमधर स्थविर श्रमण भिक्ख मुनि आय कौन होता है का विश्लेषण किया गया है। इस वर्ग म १७ गाथाय ह।

बीसव मग्गव ग म निर्वाणगामी माग का वणन ह। मार्गो म आय अष्टा गिक सत्यो म चार आयसत्य धर्मो म वराग्य और मनुष्यो म बुद्ध श्रेष्ठ है। सभी सस्कारो को अनित्य दु ख और अनात्म समझत हुए मनुष्य को चाहिए कि वाणी की रक्षा करनेवाला और मन से सयमी होकर शरीर से पाप न करे। इस प्रकार तीन कमपथो की शुद्धि करते हुए बुद्ध द्वारा दिये गये उपदेशो का सेवन करना चाहिए। इस वग में १७ गाथाय हैं।

इक्कीसव पकिण्णकवग्ग म कुछ फुटकर उपदेश हैं। यदि थोड से सुख के त्याग से महान सुख देखे तो धीर व्यक्ति को चाहिए कि उस थोड सुख को त्याग दे। श्रद्धावान शीलवान यश और भोग से यक्त व्यक्ति जिस जिस स्थान में जाता है वही सम्मानित होता ह। अहिंसा और शरीर के दु ख दोषानुचिन्तन आदि का वणन भी इस वर्ग म ह। इस वग म १६ गाथाय हैं।

---

१ धम्मपद गाथा स २१२।

२ वही २५८।

३ वही २५९।

४ वही २६ २६१।

५ वही २६४ २६५।

६ वही २६७।

७ वही २६९।

८ वही २७ ।

९ वही २७१।

बाईसवें निरयवग्ग' में नरक में उत्पन्न होनेवालों का वर्णन है। कहा गया है कि असत्यवादी नरक में जाता है और वह भी जो करके नहीं किया कहता है। इस प्रकार दोनों की गति मरने पर एक समान है। इस वग में १४ गाथायें हैं।

तेईसवें नागवग्ग में हाथी के समान अडिग रहने का उपदेश है। भगवान् ने कहा है कि जिस प्रकार नाग ( हाथी ) युद्धभूमि म धनुष से गिरे बाण को सहन करता है वैसे ही मैं कटवाक्यों को सहन करूँगा क्योंकि ससार में दु:शील लोग ही अधिक हैं। इस वर्ग में १४ गाथाय हैं।

चौबीसवें तण्हावग्ग में तृष्णा का वणन है। तृष्णा के ही कारण मनुष्य दु:खो में पडा है। यह सभी पापों की जननी है। लेकिन जो इससे रहित ह उसे शोक नही होता। इस वग में २७ गाथाय हैं।

पचीसवे भिक्खुवग्ग में सच्चे भिक्षु का स्वरूप बताया गया है तथा यह बताया गया ह कि एक सच्चे भिक्षु को क्या करना चाहिए यथा भिक्षु इन्द्रियो मे सयम करे सन्तोषी हो और प्रातिमोक्ष की रक्षा करे शुद्ध जीविकावाला हो निरालस रहे तथा मित्रों का साथ करे। इस वर्ग में २३ गाथायें हैं।

छब्बीसवें तथा अन्तिम ब्राह्मणवग्ग म ब्राह्मणों के लक्षण बतलाये गये हैं तथा वास्तविक ब्राह्मण की परिभाषा की गयी है। ब्राह्मण का अथ है सभी पापों से रहित व्यक्ति ज्ञानी और अहत। इस वर्ग म ४१ गाथायें हैं।

ऊपर धम्मपद की विषयवस्तु के स्वरूप का जो परिचय दिया गया है उससे ज्ञात होता है कि उसमें नीति-सम्बन्धी सभी आदश निहित हैं जो भारतीय संस्कृति और समाज की सामान्य सम्पत्ति हैं। इसकी गाथाओ में शील समाधि प्रज्ञा निर्वाण आदि का बडी सुन्दरता के साथ वणन है जिसको पढ़ते हुए एक अद्भुत वेग धर्मरस शान्ति ज्ञान और ससार निवद का अनुभव होता है। इस सम्बन्ध में भरतसिंह उपाध्याय के शब्दों में धम्मपद को इस प्रकार बौद्धो की गीता ही कहना चाहिए। सिंहल में बिना धम्मपद का पारायण किय किसी भिक्षु को उपसम्पदा नही होती। बर्मा स्याम कम्बोडिया और लाओस में भी धम्मपद का कण्ठस्थ होना प्राय प्रत्येक भिक्षु के लिए आवश्यक माना जाता है। बुद्ध-उपदेशों का धम्मपद से अच्छा

---

१ धम्मपद गाथा-स ३ ६।

२ वही ३२ ।

३ वही ३२ ।

४ लाहा विमलाचरण हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर जिल्द १ पृ २० –२१४।

संग्रह पालि-साहित्य में नहीं है। इसकी नैतिक दृष्टि जितनी गम्भीर है उतनी ही यह प्रसादगुणपूर्ण भी है।

श्री अ बट ज एडम ड ने धम्मपद के अपन अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखा है— यदि एशिया-खण्ड में कभी किसी अविनाशी ग्रन्थ की रचना हुई तो वह यह है। इन पदों ने अनेक विचारकों के हृदय में चिन्तन की आग जलायी है। इन्हीसे अनुप्राणित होकर अनेक चीनी यात्री मगोलिया के भयानक कान्तार और हिमालय की अलघ्य चोटियाँ लाघकर भगवान् बुद्ध के चरणो से पूत भारत भमि के दर्शनार्थ आए। बुद्ध के धमपदो की प्ररणा से ही महाराज अशोक ने अपने राज्य म प्राणदण्ड का निषध किया था और मनुष्यो तथा जानवरो तक के लिए अस्पताल खोले थे।

पूज्य भदन्त आनन्द कौसल्यायन का कथन बिल्कुल ठीक है कि यदि केवल एक पुस्तक को जीवनभर साथी बनाने की कभी इच्छा हो तो विश्व के पुस्तकालय म धम्मपद से बढकर दूसरी पुस्तक मिलनी कठिन है।

धम्मपद मलत बुद्ध वचन ह अत इसका रचना काल अज्ञात है। लेकिन बाद के साक्ष्यो के आधार पर यह पता चलता है कि ह्वेनसाग जिसन सातवी शताब्दी में भारत का भ्रमण किया उसका विचार है कि त्रिपिटक काश्यप के द्वारा प्रथम सगीति के अन्त म ताम्रपत्रो पर लिखा गया था जो बाद म राजा वट्टगामिनि के शासन काल म ( ८८ से ७६ ई पूव ) उसे पुस्तको म इसलिए लिपिबद्ध कर दिया गया कि बौद्धधर्म युगों तक जीवित रह सके। अत स्प ट है कि धम्मपद का वतमान रूप इसी समय निश्चित हुआ था।

इस ग्रन्थ की निर्माण तिथि के सम्बन्ध मे प्रधानतया दो प्रकार के मत पाये जाते हैं। प्रथम मत प्रोफसर मक्सम्यलर का ह जिनके अनुसार प्रारम्भ में सभी बौद्ध ग्रन्थ मौखिक परम्परा के रूप में थे जो बाद म सिहलद्वीप के राजा वट्टगामिनि के आदेश से लिखित रूप में आय। महावश नामक बौद्ध साहित्य की रचना में इस तथ्य का उ लेख मिलता है। महावश का निर्माण-काल ४५९–४७७ ई प्रसिद्ध है। दूसरा मत

१ उपाध्याय भरतसिंह पालि-साहित्य का इतिहास पृ २३८।
२ कौसल्यायन भदन्त आनन्द धम्मपद की भूमिका पृ १।
३ मक्सम्यूलर एफ सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट भूमिका पृ १२।
४ वही इण्डियन एण्टीक्वरी नवम्बर १८८ पृ २७।
५ दीपवश अध्याय २ पंक्ति २।
६ सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट जिल्द १ भूमिका।

है कि सभी त्रिपिटक का संकलन भगवान् बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् ४७७ ई प राजगृह मे आयोजित प्रथम महासगीति-सम्मेलन में किया गया था। द्वितीय और तृतीय महासम्मेलनों म तो इन सकलनों को पर्णता प्राप्त हो गयी थी। अत कहा जा सकता है कि धम्मपद और बौद्ध-साहित्य का सकलन ई पू ४७७ तक हो चुका था। इसके लिए कुछ बाह्य प्रमाण दिये जा रहे हैं। मिलिन्दपन्हो एक प्राचीन एव सुविख्यात पालि-ग्रन्थ है। इसकी रचना प्रथम शताब्दी के आरम्भ में हुई है। धम्मपद के बहुत सारे उद्धरणो का उल्लेख इसके अन्तगत आया है। कथावत्थ धम्मपद की बहुत सारी उक्तियो को उद्धत करता है। महानिद्देस और चुल्लनिद्देस भी ई पू द्वितीय शताब्दी के पश्चाद्वर्ती नही हो सकता क्योंकि सम्राट अशोक ने धम्मपद के अप्पमादवग्ग को विद्वान श्रमणो से सुना था जो इस बात का प्रमाण है कि धम्मपद अशोक से पवबर्ती रचना है। अशोक का काल ई प तीसरी शती माना जाता है। अत यह कहा जा सकता है कि धम्मपद का रचना-काल ई प तीसरी शताब्दी से पर्ववर्ती है।

धम्मपद के अनेक सस्करण और अनुवाद प्राप्त हैं। विशेष उल्लेखनीय अग्रेजी अनुवाद मक्सम्यलर (एस बी ई) राधाकृष्णन् नारदथेर एफ एल वुडवड ए एल एडमण्ड इरविंग बैबिट और यू धम्मज्योति के तथा हिन्दी अनुवाद महापण्डित राहुल साकत्यायन और भदन्त आनन्द कौसल्यायन के हैं। भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित धम्मपद का देवनागरी सस्करण भी खुद्दकनिकाय-पालि की प्रथम जिल्द म विद्यमान है। विभिन्न विद्वानो ने अपने सस्करणो में धम्मपद और इसमें प्राप्त उपदेशो के विषय मे न्यनाधिक विस्तृत विद्वत्तापर्ण भूमिकायें भी लिखी हैं। धम्मपद को समझने म अटठकथा भी अत्यन्त सहायक है जिसका बर्लिगेम ने अग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया है और जिससे यह सूचना प्राप्त होती है कि बौद्ध-परम्परा के अनुसार किन अवसरों पर बुद्ध ने विभिन्न गाथाय कही थीं। धम्मपदट्ठकथा आचार्य बुद्धघोष की रचना है या नहीं इसके विषय म सन्देह प्रकट किया गया है। जर्मन विद्वान् डॉ विल्हेल्म गायगर ने इसे आचाय बुद्धघोष की रचना नहीं माना है। उन्होने धम्मपदटठकथा को जातकटठवण्णना से भी बाद की रचना माना है क्योंकि

---

१ ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म अध्याय १।

२ भिक्षु धमरक्षित धम्मपद की भूमिका पृ ४।

३ राधाकृष्णन् एस धम्मपद की भूमिका।

४ गायगर विल्हेल्म पालि लिट्रेचर एण्ड लैंग्वेज पृ० ३२।

दोनो में अनेक कहानियाँ समान हैं। आश्चय की बात है कि जो कहानियाँ यहाँ दी गयी हैं और जिनके आधार पर धम्मपद की प्रत्यक गाथा को समझाया गया है उन्हें भी साक्षात बुद्धोपदेश ही यहाँ बतलाया गया ह जो ऐतिहासिक रूप से ठीक नही हो सकता। फिर भी धम्मपदटठकथा की कहानियो म जातक के समान ही प्राचीन भारतीय जीवन विशेषत सामा य जनता के जीवन की पूरी झलक मिलती है और भारतीय कथा-साहित्य म उसका भी एक स्थान ह।

## जैन-साहित्य मे उत्तराध्ययनसत्र

उत्तराध्ययन शब्द दो शब्दो के योग से बना है—उत्तर + अध्ययन अर्थात् प्रधान और पश्चाद्भावी अध्ययन। ता पय यह ह कि भगवान महावीर ने अपने जीवन के उत्तरकाल म निर्वाण के पूव जो उपदेश दिया था उन्ही उपदेशो का सकलन इस ग्रन्थ म हुआ ह। यह सूत्र अधमागधी प्राकृत भाषा म निबद्ध एक जन आगम ग्रन्थ है। यह एक धार्मिक काव्य ग्रन्थ ह। इसम नवदीक्षित साधुओ के सामान्य आचार विचार आदि का वणन किया गया है। कुछ स्थानो पर सामान्य मूलभत सिद्धान्तों की चर्चा की गयी ह। इसका स्थान मूल सूत्रो म प्रथम और महत्त्वपण है। अत मूलसूत्रो की सख्या और नामो म पर्याप्त अन्तर पाया जाता है फिर भी उत्तराध्ययन के मूलसूत्र होन म किसीको स देह नही है तथा क्रम म अन्तर होने पर भी प्राय सभी उत्तराध्ययन को प्रथम मूलसूत्र मानत हैं। जाल शार्पेन्टियर ने महावीर के शब्द होने से इन्ह मूलसूत्र कहा है। परन्तु यह कथन ठीक नही ह क्योकि सभी ग्रन्थो का सम्ब ध महावीर के वचनो से ह। प्रो गरीनो न इन पर कई टीकाओं के लिखे जाने से मल ग्र थ कहा ह। परन्तु यह युक्तिसगत नही है क्योकि प्राय सभी ग्रन्थों पर टीकाय लिखी गयी हैं। डा शब्रिग न साध-जीवन के मूलभत नियमों के प्रतिपादक होन के कारण मूलसूत्र कहा ह। प्रो एच आर कापडिया नमीचन्द्रजी शास्त्री आदि विद्वान् कुछ सशोधन के साथ इस सिद्धा त के पक्ष में हैं।

---

१ डा जगदीशचन्द्र जैन-साहित्य का बृहद् इतिहास भाग २ पृ १४४।

२ शार्पन्टियर उ भमिका पृ ३२ तथा कापडिया एच आर हिस्ट्री ऑफ दी कैनोनिकल लिटरेचर ऑफ जैन्स पृ ४२।

३ वही प ४२।

४ आत्माराम दशवैकालिकसूत्र भमिका प ३ तथा हिस्ट्री ऑफ दी कैनोनिकल लिटरचर ऑफ जैन्स पृ ४२।

५ शास्त्री नेमीचन्द्र प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ १९२ हिस्ट्री ऑफ दी कैनोनिकल लिट्रेचर ऑफ जैन्स पृ ४३।

विभिन्न विषयो का प्रतिपादन करते हुए इस ग्रन्थ में ३६ अध्ययन है। इनमें आचार-सम्बन्धी और तत्वज्ञान-सम्बन्धी विवेचन है। आचार से सम्बन्ध रखनेवाले विषय हैं—२रा परीषह ३रा चतुरङ्गीया ४था असस्कृत ५वाँ अकाममरण ६ठा क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय ७वाँ एलक ८वाँ कापिलीय ९वाँ नमिप्रव्रज्या १ वाँ द्रुमपत्रक ११वाँ बहुश्रुत पजा १२वाँ हरिकेशीय १३वाँ चित्तसम्भतीय १४वाँ इषुकारीय १५वाँ सभिक्ष १६वाँ ब्रह्मचय समाधि स्थान १७वाँ पाप श्रमणीय १८वाँ सयतीय १९वाँ मृगापुत्र २ वाँ महानिग्रन्थीय २१वाँ समुद्रपालीन २२वाँ रथनेमी २३वाँ केशी गौतमीय २४वाँ समितीय २५वाँ यज्ञीय २६वाँ समाचारी २७वाँ खलङ्कीय २८वाँ मोक्षमाग गति २९वाँ सम्यक्त्व-पराक्रम ३ वाँ तपोमाग ३१वाँ चरणविधि ३२वाँ प्रमाद स्थानीय ३४वाँ लेश्या और ३५वाँ अनगार। तत्वज्ञान-सम्बन्धी अध्ययनो में ३३वाँ कमप्रकृति और ३६वाँ जीवाजीव विभक्ति हैं। लेकिन इन अध्ययनों म एक दूसर से काफी निरूपता है।

इन ३६ अध्ययनो के वणन नीच प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

४८ गाथाओ से युक्त प्रथम अध्ययन म विनयधम का वणन किया गया है। इसम भिक्ष को भिक्षचर्या विनीत एव अविनीत शिष्यों के गुण-दोषादि के साथ ही साथ गुरु के कतव्यों का भी वणन है।

दूसरे अ ययन म साधु के लिए २२ परीषह बताये गये हैं। प्रारम्भ के तीन सूत्र गद्य खण्ड मे और अ त के ४६ श्लोक पद्य रूप म निबद्ध हैं।

तीसरे अध्ययन म मोक्ष प्राप्ति के साधन मनुष्यत्व श्रुति श्रद्धा और सयम धारण करने की शक्ति इन चार वस्तुओं को दुलभ कहा गया है। इस अध्ययन में २ गाथायें हैं।

चौथे अध्ययन की तेरह गाथाओ म ससा की क्षणभगुरता का प्रतिपादन किया गया है तथा भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त रहने का उपदेश दिया गया है।

पाँचव अकाम-मरण नामक अध्ययन में भिक्ष और गृहस्थ के सयमी जीवन की तुलना है और सुकृत गृहस्थ की सुगति-देवगति तथा बाल व्यक्तियों के अकाम मरणादि के बारे में कहा गया है।

---

१ प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ १९३।

२ उत्तराध्ययनसूत्र २।२-४५।

३ वही ३।१।

४ वही ४।६।

५ वही ५।२ ।

छठे अध्ययन में १७ गाथाओं के अन्तगत जैन साघ के आचार विचार का वणन है और इसलिए इसका नाम क्षुल्लक निग्र थीय ( जैन-साधु ) रखा गया है।

सातव अध्ययन म तीस गाथाओ के अ तगत इद्रियाँ क्षणिक हैं इनके विषय क्षणिक हैं। फलत इनसे मिलनेवाला सुख भी क्षणिक है। इन क्षणिक सुखों के प्रलो भनों म आकर भविष्य म होनवाले इनके दु खद परिणामों को साधक न भूले। साधक भ्रान्तिवश थोड से सुख के लिए अपनी कोई बडी हानि न करे। इस विषय को इस अध्ययन म बहुत सरल सु दर एव व्यावहारिक उदाहरणो से स्पष्ट किया गया है।

क्योकि आठवें अध्ययन के प्ररूपक कपिलऋषि है इसलिए इस अध्ययन का नाम कापिलीय रखा गया है। इसम कपिलमनि द्वारा चोरो को दिये गय सगीता त्मक उपदेशों का सग्रह ह। इस अध्ययन म लक्षणविद्या स्वप्नविद्या और अगविद्या का उपयोग साधु के लि वर्जित बताया गया ह। लोभ किस प्रकार बढ़ता ह इसका अनुभव चित्र इसम खीचा गया है। इसम २ गाथाय हैं।

नौव अध्ययन म नमिप्रव्र या का वर्णन है जिसम राजर्षि नमि का ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र के साथ आध्यात्मिक सवाद वर्णित ह। इस अध्ययन म ६२ गाथाय हैं।

आद्यपद्य के आधार पर दसव अ ययन का नाम द्रुमपत्रक रखा गया है जिसका अथ है वृक्ष का पका हुआ पत्ता। इस अध्ययन म भगवान महावीर द्वारा गौतम के बहान सभी साधको को आत्मसाधना म क्षणमात्र प्रमाद न करन का सन्देश दिया गया है। इसम अन्तमन के जागरण का उदघाष है जा प्रत्यक साधक के लिए ज्योतिस्तम्भ के समान है। इसम ३७ गाथाय हं। प्रत्यक गाथा के अन्त म समय गोयम मापमायए तथा अन्तिम गाथा म सिद्धि गइगए गोयमे पद का उल्लेख ह।

ग्यारहव अध्ययन म ३२ गाथाओ के अन्तगत विनीत को बहुश्रुत और अविनीत को अबहुश्रुत कहा गया है।

हरिकेशीय नामक बारहव अध्ययन म ४७ गाथाओ के अन्तगत हरिकेशिबल और ब्राह्मणो के मध्य हुए वार्तालाप में कमणा जातिवाद की स्थापना तप का प्रकष तथा अहिंसा यज्ञ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया ह।

तेरहव अध्ययन में चित्त और सम्भूति नाम के चाण्डाल-पुत्रो की कथा है। इसमें ३५ गाथायें हैं। चित्त और सम्भूति के नाम के कारण इस अध्ययन का नाम चित्तसंभूतीय रखा गया ह।

इषुकारीय नामक चौदहव अध्ययन म ५३ गाथाय हैं जिनमें इषुकार

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र ७।१२।

नगर के राजा और रानी पुरोहित और उसकी पत्नी पुरोहित के दोनो पुत्रों के दीक्षा लेने का उल्लेख है।

पन्द्रहवें अध्ययन की १६ गाथाओं में सदभिक्षु के लक्षण बताये गये हैं। इस अध्ययन म अनेक दार्शनिक और सामाजिक तथ्यो का सकलन ह।

ब्रह्मचर्य-समाधि स्थान नामक सोलहव अध्ययन में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए दस बातों का त्याग[1] आवश्यक बतलाया गया है। इसमें १७ गाथाय पद्य रूप म निबद्ध तथा १२ सूत्र गद्य रूप में हैं।

सत्रहव अध्ययन में पाप श्रमण के लक्षण बतलाये गये हैं। इसम २१ गाथाय हैं। तीसरी से लेकर उन्नीसवी गाथापयन्त प्रत्येक गाथा के अन्त में पावसमणित्ति वुच्चई पद आया है।

सजय नामक अठारहवें अध्ययन में सजय राजा का वणन है जिसने मुनि का उपदेश श्रवण कर श्रमण-धम में दीक्षा ग्रहण की। इसमें ५४ गाथाय हैं।

उन्नीसवें अध्ययन में ९९ गाथाओ के अन्तगत मृगापुत्र की दीक्षा का वर्णन ह जिनमें मृगापुत्र और उसके माता पिता के बीच होनवाला सवाद बहुत ही सुन्दर ह। मृगापुत्र को प्रधानता के कारण ही इस अध्ययन का नाम मृगापुत्रीय है।

बीसव अध्ययन का नाम महानिग्र न्थीय है। इसम अनाथीमुनि और राजा श्रेणिक के बीच हुए रोचक सवाद का वणन है। इसमें ६ गाथायें हैं।

समुद्रपालीय नामक इक्कीसव अध्ययन में वणिक पुत्र समुद्रपाल का प्रव्रज्या ग्रहण और सयमपूर्ण श्रमण जीवन वर्णित ह। इसम साधओं के आन्तरिक आचार के सम्ब ध में वर्णन करते हुए शास्त्रकार ने कहा है कि साध को प्रिय और अप्रिय दोनों बातो में सम रहना चाहिए। इसमें २४ गाथाय हैं।

बाईसव अध्ययन में अरिष्टनेमि और राजीमती की कथा है। राजीमती का रथनमि को उपदेश म आचार विचार का दिग्दर्शन होता है। विचलित रथनेमि को राजीमती ने इस प्रकार धिक्कारा है—हे कामभोग के अभिलाषी तेरे यश को धिक्कार है त वमन की हुई वस्तु को पुन उपभोग करना चाहता है इससे तो मर जाना अच्छा है।

तेईसवें अध्ययन में ८९ गाथाओं के अन्तर्गत पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार

---

१ उत्तराध्ययन १४।५३।

२ वही १६।१–१ ।

३ वही २२।४३ तुलनीय विसवन्त जातक ६९।

और महावीर वर्धमान के शिष्य गौतम के ऐतिहासिक संवाद का उल्लेख है। पार्श्वनाथ ने चातुर्याम का उपदेश दिया है और महावीर ने पाँच महाव्रतों का। पार्श्वनाथ ने सचेल धर्म का प्ररूपण किया है और महावीर ने अचेल धर्म का।

अष्टप्रवचनमाता नामक चौबीसवें अध्ययन में पाँच समितियों और तीन गुप्तियों का वर्णन है। वर्णित है कि जो पण्डित साधु हैं वे उक्त आठ प्रवचनमाता या पाँच समिति तथा तीन गुप्तियों के कथन के अनुसार सम्यक् प्रकार आचरण करके शीघ्रता से संसार बन्धन से छूट जाते हैं और मोक्ष के अधिकारी होते हैं।

यज्ञीय नामक पचीसवें अध्ययन में सच्चा यज्ञ, श्रमण, ब्राह्मण, मुनि और कर्मानुसारी जातिवाद की परिभाषा करते हुए साधु के आचार का वर्णन किया गया है। इस अध्ययन में ४५ गाथायें हैं। इसकी १९ से २९ गाथाओं के अन्त में तं वयं बूम माहणं पद आया है।

छब्बीसवें अध्ययन में समाचारी के दस भेद बताये गये हैं। समाचारी का अर्थ है सम्यक् व्यवस्था। इसमें साधक के परस्पर के व्यवहारों और कर्तव्यों का संकेत है। इसमें ५३ गाथायें हैं।

खलुंकीय नामक सत्ताईसवें अध्ययन में दुष्ट बैल के दृष्टान्त द्वारा अविनीत शिष्यों की क्रियाओं का वर्णन है। इसमें १७ गाथायें हैं।

मोक्षमार्ग नामक अट्ठाईसवें अध्ययन में ३६ गाथायें हैं जिनमें रत्नत्रय मार्ग का वर्णन होने से इसका नाम मोक्षमार्ग-गति है।

सम्यक्त्व-पराक्रम नामक उनतीसवें अध्ययन में ७३ स्थानों एवं उनके फलों की विस्तृत विवेचना की गयी है जो सम्यक्त्व को पुष्ट करनेवाले हैं। इसी प्रकार काल, प्रतिलेखन, प्रत्याख्यान, वाचना, अनुप्रेक्षा आदि विषयों का वर्णन है।

तपोमार्गगति नामक तीसवें अध्ययन में बताया गया है कि प्राणवध, मृषावाद, अदत्त, मैथुन, परिग्रह एवं रात्रि भोजन से विरक्त होने से जीव आस्रवरहित होता है।

चरणविधि का अर्थ है—विवेकमूलक प्रवृत्ति। इसमें २१ गाथायें हैं जिसके अन्तर्गत साधु के चारित्र और ज्ञान से सम्बन्धित कुछ सिद्धान्तों के वर्णन के साथ ही आहार, भय, मैथुन, परिग्रह आदि से साधु को मुक्त रहने का उपदेश दिया गया है।

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २४।२७।

२ वही २६।२–४।

३ वही ३०।२-३।

इन्द्रियों की रागद्वेषरूप प्रवृत्ति को प्रमादस्थानीय मानकर इस अध्ययन का नाम प्रमादस्थानीय रखा गया है। अशुभ प्रवृत्तियाँ प्रमादस्थान हैं। प्रमादस्थान का अर्थ है—वे कार्य जिन कार्यों से साधना में विघ्न उपस्थित होता है और साधक की प्रगति रुक जाती है।

कर्मप्रकृति नामक तैंतीसवें अध्ययन में २५ गाथाओं के अन्तर्गत कर्मों के आठ भेदों तथा प्रभेदों को बतलाया गया है।

चौंतीसवें लेश्या अध्ययन में ६१ गाथाओं के अन्तर्गत लेश्याओं के प्रकार तथा उनके लक्षणों को बतलाया गया है।

पतीसवें अध्ययन का नाम अनगार है। इसमें २१ गाथायें हैं जिनके अन्तर्गत साधु के निवासस्थान भोजन-ग्रहण विधि साधना विधि आदि बातों का वर्णन है।

छत्तीसवें अध्ययन में जीव और अजीव का सविस्तार वर्णन होने से इसका नाम जीवाजीव विभक्ति रखा गया है। इसमें २६९ गाथायें हैं।

इस तरह इन अध्ययनों में मुख्य रूप से संसार की असारता तथा साधु के आचार का वर्णन किया गया है। इससे इसके महत्त्व और प्राचीनता दोनों का बोध होता है। इस महत्त्व के कारण ही इसे मूलसूत्रों ग्रन्थों में गिना जाता है। इस महत्त्व के कारण ही कालान्तर में इस पर अनेक टीकायें आदि लिखी गयीं। जैकोबी शार्पेन्टियर विण्टरनित्स आदि विद्वानों ने इसकी तुलना बौद्धों के सुत्तनिपात जातक और धम्मपद आदि प्राचीन ग्रन्थों से की है। उदाहरणस्वरूप राजा नमि को बौद्ध-ग्रन्थों में प्रत्येक बुद्ध मानकर उसकी कठोर तपस्या का वर्णन किया गया है। हरिकेशिमुनि

१ शार्पेन्टियर उ भूमिका पृ ४ तथा देखें उ आत्माराम टीका भूमिका पृ २२–२५ जैन-साहित्य का बृहद इतिहास भाग २ पृ १४७ १५२ १५६ १५७ १५९ १६३ १६५ तथा १६७।

| धम्मपद | उत्तराध्ययन |
|---|---|
| १२।४ | १।१५ |
| ८।४ | ९।३४ |
| ८।७ | ९।४ |
| ५।११ | ९।४४ |
| २६।१९ | २५।२७ |
| २६।२५ | २५।२९ |
| २६।४ | २५।३४ |

की कथा मातगजातक म कही गयी है। चित्तसम्भत की तुलना चित्तसम्भत जातक की कथा से और इषकार की कथा की तुलना हत्थिपालजातक मे वर्णित कथा से की जा सकती है। उत्तराध्ययनसूत्र म वर्णित चार प्रत्येक बद्धो की कथा कुम्भकारजातक में कही गयी है। मृगापुत्र की कथा भी बौद्ध-साहित्य म आती है।

उत्तराध्ययनसूत्र किसी एक व्यक्ति के द्वारा किसी एक काल म लिखी गयी रचना नही है अपितु एक सकलन-ग्रन्थ है। उत्तराध्ययन पर सर्वप्रथम भद्रबाहु द्वितीय ने निर्युक्ति लिखी। इस निर्युक्ति का रचना-काल वि स ५ ६ के बीच है। इससे पता चलता है कि इसके पूव ही उत्तराध्ययन अपनी पूववत स्थिति मे आ चका था। दशवैकालिक की रचना म उत्तरा ययन के अशो का उल्लेख होन से तथा दश वैकालिक की रचना हो जाने पर उत्तराध्ययन का उसके पश्चात पढे जान का उ लेख होने से दशवैकालिक की रचना के पूव इसकी रचन। मानी जानी चाहिए। उत्तरा ध्ययन के १८व अध्याय की अ तिम गाथा एव ३६व अध्याय की अन्तिम गाथा तथा अ यत्र भी एसे प्रमाण मिलत ह कि इसके उपदेष्टा महावीर को माना जा सकता है जिन्होन निर्वाण प्राप्ति के अन्तिम समय म बिना पूछ प्रश्नों के उत्तर के रूप में उपदेश दिया था। शापन्टियर उत्तराध्ययन की भमिका म इसे महावीर के वचन स्वीकार करते हैं।

इस तरह उत्तराध्ययन को प्राचीनता महावीर के निर्वाण काल तक पहुच जाती है। परन्तु इसके विपरीत भी उ लेख मिलत ह। जैसे—समवायागसूत्र के ५५व समवाय में बतलाया गया ह कि ५५ पुण्यफल विपाक और ५५ पापफल विपाक के अध्ययनो का कथन करने के बाद महावीर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। परन्तु ३६व समवाय मे जहाँ पर उत्तराध्ययन के अध्ययनो के नाम गिनाये हैं एसा कोई उ लेख नही है। कल्पसूत्र में उ लिखित पाठ से स्पष्ट है कि भगवान ने अपने परिनिर्वाण के समय ५५ पुण्यफल विपाक और ५५ पापफल विपाक का कथन करने के उपरान्त बिना पूछे ३६ अध्ययनो का भी कथन किया था।

---

१ विण्टरनित्स एम हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरचर जि द २ प ४६७ ६८।
२ श्रमण सितम्बर १९५४ पृ १५ मुनिनागराजजी आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन खण्ड २ प ४६७।
३ मुनिमाणक यवहारभाष्य उद्देशक ३ गाथा १७६।
४ उत्तराध्ययनसूत्र ३६।२६९।
५ मुनि घासीलाल समवायाङ्गसूत्र ३६वाँ समवाय।
६ हेमचन्द्र सूरिकृत त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र १ ।१३।२२४।

उत्तराध्ययन में भी एक स्थान पर ऋषि सञ्जयमुनि से कहते हैं कि विद्या और चारित्र से युक्त सत्यवादी सत्यपराक्रमी ज्ञात पुत्र भगवान महावीर इस तत्त्व को प्रकट करके परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। अत यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्तराध्ययन में महावीर का अन्तिम उपदेश है। बृहद्वृत्तिकार शान्त्याचार्य उत्तराध्ययन को भगवान महावीर के परिनिर्वाण के समय का अन्तिम उपदेश नही मानते हैं। इसीलिए उन्होने परिनिव्वुए शब्द का अर्थ स्वस्थीभूत किया है। उत्तराध्ययन के अगबाह्य ग्रन्थ होने से भी स्पष्ट है कि इसकी रचना न तो भगवान महावीर ने की और न उनके प्रधान शिष्यो ( गणधरो ) ने अपितु बाद के श्रुतज्ञो ने की है। इसीलिए बृहद् वृत्तिकार जिन शब्द का अर्थ श्रुतजिन या श्रुतकेवली करते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण उत्तराध्ययन न तो भगवान महावीर प्रणीत है न उनके प्रधान शिष्यगणधरो द्वारा ही। यद्यपि इसका तात्पर्य यह नही ह कि इसम महावीर कथित कुछ भी नही है। निश्चित ही समय गोयम मापमायए सुय मे आ उस तेण भगवया एवमक्खाय जसे अध्ययन महावीर उपदिष्ट लगते हैं। उत्तराध्ययन को अन्तिम स्वरूप देवर्धिगणि की वाचना के समय ईसा की पाँचवी शताब्दी तथा इसके भी कुछ समय बाद तक कुछ परिवर्तन हुए हो किन्तु सम्पूर्ण उत्तराध्ययन इतना परवर्ती नही है। प्रारम्भ के अध्याय तथा उनके सवाद कथा एव उपदेश सैद्धान्तिक अध्ययनो की तुलना म प्राचीन प्रतीत होते हैं। शापन्टियर महोदय ने उत्तराध्ययन की भूमिका में यह सम्भावना व्यक्त की थी कि प्रथम २३ अध्ययन अधिक प्राचीन लगते हैं।

उत्तराध्ययन की रचना और रचनाकाल के सम्बन्ध में डॉ सागरमल जैन की मान्यता है कि उत्तराध्ययन के सभी अध्ययन एक ही काल की रचना नहीं है। मुख्य रूप से वे अध्ययन जो कि जैन तत्त्वमीमासा की चर्चा करते हैं काफी परवर्ती काल के हैं। उनके अनुसार उत्तराध्ययन के प्रथम अठारह अध्याय बाद के अठारह अध्यायो की अपेक्षा प्राचीन हैं। वे अपनी इस मान्यता का आधार यह देते हैं कि प्रथम

---

१ इह पाउकरे बुद्ध नायए परिनिव्वुए।
विज्जाचरणसंपन्ने सच्चे सच्चपरक्कमे।—उत्तराध्ययनसूत्र १८।२४।

२ उ बृहद्वृत्ति पत्र ७१२ तथा पत्र ४४४।

३ वही पत्र ७१३।

४ उ १ वाँ अध्ययन २९।१ प्रारम्भिक गद्य १६।१ गद्य २।१ ( गद्य ) ४६।

५ मलधारी टीका विशेषावश्यकभाष्य गाथा २२९४ पृ ९३१।

६ डॉ सागरमल जैन प्रश्नव्याकरण ऋषिभाषित और उत्तराध्ययन नामक अप्रकाशित लेख एव व्यक्तिगत चर्चा के आधार पर।

अठारह अध्ययनों म अन्तिम अठारहव अध्ययन की २४वी गाथा म यह कहा गया है कि विद्या और चरित्र से युक्त सत्यवादी भगवान वीर इस तत्त्व को प्रकट करके निर्वाण को प्राप्त हुए। इससे ऐसा लगता ह कि पहले उत्तराध्ययन १८व अध्याय तक था। आश्चय यह है कि १८व अध्याय की २४वी गाथा और ३६व अध्याय की अन्तिम गाथा की प्रथम पक्ति पहले से ही थी। डॉ जन की यह भी मान्यता है कि पहले उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित दोनो ही प्रश्नव्याकरण दशा के ही विभाग थे। समवायाग म प्रश्नव्याकरण-दशा के जो तीन मख्य विभाग किय हैं उनमे ऋषिभाषित आचायभाषित और महावीर भाषित हैं। एसा लगता है कि प्रश्नव्याकरण के ऋषिभाषित वाले भाग को उससे अलग करके ऋषिभाषित के रूप म और आचार्यभाषित और महावीरभाषित को वहाँ से अलग करके उत्तराध्ययन के रूप म सुरक्षित रखा गया। उत्तराध्ययन के अधिकाश अध्ययन आचायभाषित और कुछ महावीरभाषित हैं। दशवैकालिक में उत्तराध्ययन का जो अश आया ह वह सम्भवत उसकी इसी पव अवस्था से ही आया है जब कि वह प्रश्न्याकरण का भाग था। भाषा आदि की दष्टि से निश्चित ही उत्तराध्ययन के कुछ अध्याय दशवैकालिक की अपेक्षा प्राचीन हैं एव ऋषिभाषित के समकालीन माने जा सकत है और उन्ह किसी सीमा तक ईसा पर्व की तीसरी शती तक ले जाया जा सकता ह किन्तु दूसर विद्वानो के साथ सहमत होत हुए वे यह भी मानते हैं कि उत्तराध्ययन अपने वतमान रूप म लगभग ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी में ही आया है। इस आधार पर हम यह कह सकत हैं कि उत्तराध्ययन का वर्तमान स्वरूप ईसा प्रथम द्वितीय शताब्दी नही ह किन्तु उसका बहुत कुछ अश अतिप्राचीन ह और वह विषयवस्तु की दष्टि से लगभग बौद्ध त्रिपिटक के प्राचीनतम ग्रन्थ सुत्तनिपात के रचनाकाल के निकट तक जाता ह। उत्तराध्ययन दशवकालिक सुत्तनिपात तथा धम्मपद की गाथाओ म जो विचार और भाषा-साम्य ह उससे हम इस निष्कष पर अवश्य ही पहुच सकत हैं कि य सभी समकालीन एव ईसा पर्व की रचना हैं। चाहे बाद म उसम कुछ अध्याय जोड गये हो और मुखाग्र रहने के कारण उनका भाषायी स्वरूप भी यह व्यक्त करता है। उत्तराध्ययन की पववर्ती सीमा ईसा पव पाँचवी शताब्दी और परवर्ती सीमा ईसा की पाँचवी शताब्दी है क्योकि ईसा की पाँचवी शताब्दी म उस पर निर्युक्ति लिखी जा चकी थी। समवायाग म यह भी निश्चित हो गया था कि उसके ३६ अध्याय हैं। समवायाग का वतमान स्वरूप भी व लभी वाचना (पाँचवी शती का) है। डॉ सागरमल जैन का उत्तराध्ययन की प्राचीनता के सम्ब ध में एक तक यह भी है कि उसम गुणस्थान सिद्धान्त स्याद्वाद और सप्तभगी आदि का सवथा अभाव है। उसमें वे सभी तात्त्विक विषय अनुपस्थित है जो तत्त्वाथसूत्र म अनुपस्थित हैं और वे सभी उपस्थित हैं जो तत्त्वाथ म है। अत वह निश्चित तत्त्वाथसूत्र का पर्ववर्ती है।

तात्त्विक भागवाले अन्तिम अध्याय भी ईसा की तीसरी शती के पव के ही हैं अत कुछ अपवादों को छोडकर उसे ईसा-पूर्व की रचना माना जा सकता है ।

उत्तराध्ययनसूत्र पर व्याख्यात्मक साहित्य विपुल परिमाण में विद्यमान है। सरस कथानक सरस सवाद और सरस रचना-शैली के कारण अंग और अंग-बाह्य ग्रन्थों में इसकी लोकप्रियता सर्वाधिक रही है। इसके परिणामस्वरूप कालान्तर में उत्तराध्ययन पर सर्वाधिक टीका-ग्रन्थ लिखे गये। इनमें से कुछ का विशेष उल्लेख किया जा सकता है—आचार्य भद्रबाहु द्वितीय ( वि की छठी शताब्दी ) ने इस पर निर्युक्ति लिखी। जिनदास गणि महत्तर ( ई सन् छठी शताब्दी ) ने चूर्णि की रचना की। वादिवेताल विरुदालकृत शान्ति सूरि ( मृत्यु सन १ ४ ) ने पाइयटीकाशिष्यहिता नामक टीका की रचना की जो उत्तराध्ययन बृहद् वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है। इस टीका के आधार पर देवेन्द्रगणि ने जो आगे चलकर नेमिचन्द्र सूरि ( वि सं ११२९ ) के नाम से विख्यात हुए सुखबोधा नामक टीका लिखी। इनके अतिरिक्त ज्ञानसागर सूरि ( वि सं १४४१ ) की अवचूरि विनयहस ( वि स १५६७–८१ ) की वृत्ति कीर्तिवल्लभगणि ( वि स १५५२ ) की टीका कमलसयम उपाध्याय ( वि स १५५४ ) की वृत्ति तपोरत्नवाचक ( वि स १५५ ) की लघुवृत्ति अजित देव सूरि ( वि स १६२९ ) की टीका लक्ष्मीवल्लभ ( वि १८वीं शताब्दी ) की दीपिका भावविजयगणि ( वि स १६८९ ) की वृत्ति हर्षनन्दन गणि ( वि स १७११ ) की टीका धर्ममन्दिर उपाध्याय ( वि सं १७५ ) की मकरन्दटीका उदयसागर ( वि स १५४६ ) की दीपिका टीका कुलक ( वि स १६ ) की दीपिका आदि। इन टीकाओ में अधिकाश अप्रकाशित हैं। पाश्चात्य तथा आधुनिक विद्वानों ने भी इस पर काम किया है। उदाहरणार्थ प्रो शार्पेन्टियर ने मूलपाठ अंग्रेजी प्रस्तावनासहित प्रस्तुत किया ह। डॉ जैकोबी ने इसका अंग्रेजी अनुवाद किया जो प्रो मैक्सम्यूलर के सम्पादकत्व में सेक्रेड बक्स ऑफ द ईस्ट के ४५वें भाग में आक्सफोड से सन १८९५ में प्रकाशित हुआ है। आर डी वाडेकर तथा एन व्ही वैद्य का सशोधित मूलपाठ आत्मारामजी का मूल के साथ हिन्दी अनुवाद आचाय तुलसी कृत उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन डॉ सुदर्शनलाल जैन का उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन आदि महत्त्वपूण सस्करण एव अध्ययन हैं। ●

अध्याय २

# धम्मपद में प्रतिपादित तत्त्वमीमासा का उत्तराध्ययन में प्रतिपादित तत्त्वमीमासा से साम्य-वैषम्य

**धम्मपद मे प्रतिपादित बौद्धतत्त्व-मीमांसा**

बौद्धधम के मूल उपादान चार आयसत्य हैं। वास्तव में सारा बौद्धधम उन्ही में अन्तर्भूत है। इसे बुद्धो का स्वय उत्पादित एव उत्कष की ओर ले जानवाला धर्मोपदेश कहा गया है। जब तक इसका ज्ञान नही होता तब तक कोई भी व्यक्ति बुद्ध नही हो सकता और न तो बिना इसके ज्ञान के मुक्ति ही प्राप्त हो सकती और भगवान बुद्ध ने कहा ह— भिक्षुओ चार आयस-यो को न जानन के कारण मेरा तथा तुम्हारा चिरकाल तक ससार में घमना लगा रहा। हम लोग चार आयसत्यो को ठीक से न देखने के ही कारण आज तक चक्कर काटते फिरे किन्तु अब उसे हम लोगो ने देख लिया अब तृष्णा नष्ट हो गयी। दु ख का मूल कट गया। फिर ज म लेना नही है।

चार आयसत्यो को समस्त कुशल धर्मों का मूल कहा गया ह। य आयसत्य क्यो कहे जाते है और आय कौन ह? अर्हत् ही आय ह। आय की व्याख्या धम्मपद म इस प्रकार मिलती है प्राणियो की हिंसा करने से कोई आय नहीं होता सभी प्राणियो की हिंसा न करने से आय कहा जाता है। जिसके समस्त अकुशल पाप धर्म दूर हो चुके हैं वह उत्तम श्रेष्ठ अहत् आय कहलाता है। जैन-ग्रन्थों में भी आय शब्द पर विशदतया चिन्तन किया गया है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया

---

१ मज्झिमनिकाय १।३।८।

२ महापरिनिब्बानसुत्त पृ ४४ ४५।

३ मज्झिमनिकाय १।३।८।

४ न तेन अरियोहोति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा स-ब पाणान अरियो ति पवुच्चति॥

धम्मपद गाथा-सख्या २७ ।

५ मज्झिमनिकाय १।२८ प ३४३।

६ तसपाण वियाणेन्ता सगहेण थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेण तं वय बूम माहण॥ उत्तराध्ययनसूत्र २५।२३।

है कि त्रस अथवा स्थावर किसी भी जीव को मन वचन और शरीर के द्वारा जो स्वय कष्ट नही पहुँचाता और कष्ट देने के लिए किसीको प्रेरित नहीं करता और यदि कोई कष्ट देव तो उसको भला नही समझता अर्थात् जो तीन योग और तीन कारणो से अहिंसा धम का पालन करता है उसको आर्य ( ब्राह्मण ) कहा जाता है।

धम्मपद म कहा गया है कि सत्यों में चार आर्यसत्य श्रेष्ठ है। क्योंकि इन्हें आय ही जानते हैं वे ही उनका सम्यक ज्ञान करते हैं अत ये आर्यसत्य कहलाते है। य आर्यसत्य यथाथ हैं मिथ्या नही हैं क्योंकि दूसरों ( जो आय नहीं हैं ) से वे वैसे नही देखे जात हैं जैसे कि य आर्यों के द्वारा देखे जाते हैं। धम्मपद में जो बौद्ध ग्रन्थो का सार ह चार आयसत्यों की व्याख्या बहुत ही सुन्दर ढग से की गयी है जो बुद्ध धम और सघ की शरण में गया है वह मनुष्य दु ख दु ख की उत्पत्ति दु ख का विनाश अर्थात् निर्वाण और निर्वाण की ओर ले जानवाले श्रेष्ठ अष्टाङ्गिक मार्ग इन चार आयसत्यो को अपनी बुद्धि से देख लेता है। चार आयसत्य ये हैं—१ दु ख आयसत्य २ दु खसमुदय आर्यसत्य ३ दुःखनिरोध आर्यसत्य और ( ४ ) दु ख निरोधगामिनी प्रतिपद आयसत्य। इन आयसत्यो का ज्ञान किन्ही किन्हींको स्रोतापन्न अवस्था म आशिक रूप में होता है और किन्ही किन्हीको सकृदागामी और अनागामी अवस्था म। किन्तु अहत-अवस्था में पूर्णरूप से इनका ज्ञान होता है। जिस सत्य की पहले जानकारी होती ह उसीका पूवनिर्देश किया गया है। अब प्रश्न उठता है कि तृष्णा जो दु ख का हेतु ह उसका पूवनिर्देश क्यो नही है और दु ख जो तृष्णा के कारण उत्पन्न होता ह तथा जो फलरूप है उसका बाद में निर्देश क्यों नही है ? इसका उत्तर यह है कि जिस बात में प्राणी फँसा है जिससे पीडित होता है जिससे मुक्ति चाहता है और जिसकी वह परीक्षा करता है वह और क्या है दु ख ही तो है और इसीलिए इसे ही पहला सत्य बतलाया गया है। मुमक्षु इसके बाद उसके हेतुरूप समदय सत्य ( तृष्णा ) और इसके बाद निरोध सत्य ( निर्वाण ) तथा उसके बाद माग ( अष्टाङ्गिक माग ) को खोजता है।

---

१ मच्चान चतुरो पदा—धम्मपद २७३।

२ धम्मपद गाथा-सख्या १९ ।

३ दुक्ख-दुक्ख समप्पाद दुक्खस्स च अतिक्कम।
अरियञ्चटठङ्गिकं मग्ग दुक्ख पसमगामिम॥
वही १९१।

४ बौद्ध योगी के पत्र पृ ११ १११।

## १ दु ख

पालि बौद्ध-साहित्य में दु ख की व्याख्या सामान्यत इस प्रकार से की गयी है यथा—जीवन दु खदायी है पैदा होना दु ख है बूढ़ा होना रोगी होना क्षीण होना मरना शोक करना रोना पीटना चिन्तित होना परेशान होना दु ख है अप्रिय के साथ सयोग प्रिय से वियोग इच्छा की पूर्ति न होना भी दु ख है सक्षेप में पाँचों उपादान स्कन्ध दु ख हैं। धम्मपद में कहा गया है प्रियों ( पञ्चकाम गुणों ) का सग न करे और न कभी अप्रियों का प्रियो का। न देखना और अप्रियो का दर्शन दु खद होता है। अत दु ख है दु ख सत्य है तथ्यरूप है अवितथ रूप है और अन्यथा नही है। धम्मपद में भी कहा गया है सभी सस्कार ( पदार्थ ) दु खरूप हैं इस प्रकार जब प्रज्ञा से मनुष्य देखता है तब वह दु खो से मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। यही निर्वाण का मार्ग है।

यह सब दु ख है ( सर्वमिद दु खम ) पुरुषार्थ में दु ख है उसके रक्षण और विनाश में भी दु ख है। यह सारा ससार ही दु ख से व्याप्त है। दु ख से जल रहा है। इसलिए हँसी-खुशी और सुख इस ससार में कहाँ है ? धम्मपद में कहा गया है जब नित्य जल रहा है तो हँसी कैसी और आनन्द कैसा। अन्धकार से घिरे प्रदीप की खोज क्यो नही करते ? ससार अनादि और अनन्त है और वह अविद्या ( अज्ञान ) तथा तृष्णा से सचालित है। इस ससार में न तो ऐसा कोई श्रमण ब्राह्मण देवता मार या अनन्यतम सत्त्व ही अवशिष्ट है जो ससार में विद्यमान निम्न पाँच वस्तुओ से अछूता रहा हो अर्थात जो रोग के अधीन होते हुए भी रुग्ण न हुआ हो जो मृत्यु के आश्रित है वह न मरा हो जो क्षय के वशीभूत होते हुए भी क्षीण न हुआ हो और वह भी जो विनाश के मूल में बैठे होने पर भी नष्ट न हुआ हो।

बुद्ध के अनुसार प्राणियो की ससार यात्रा अनादिकाल से चली आ रही है। उनके उद्गम-स्थान का पता नही है जहाँ से चलकर अविद्या में फँसकर मनुष्य अपने को तृष्णा के बन्धन में बाँधकर इधर-उधर भटकते फिरते हैं। उनका कहना है कि न

---

१ दीघनिकाय २।१ ५ पृ २२७ तथा बुद्धचर्या १५।४७।

२ मा पियेहि समा गं छ अप्पि यहि कुदाचन।
पियान अदस्सन दुक्ख अप्पियान च दस्सन ॥

धम्मपद गाथा-सख्या २१ ।

३ वही २७८।

४ को नु हासो किमानन्दो निच्च पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धापदीपं न गवेस्सथ ॥ वही १४६।

आकाश में न समुद्र के मध्य में न पर्वतो की गुफा में जगत् में कोई ऐसा प्रदेश विद्यमान नहीं है जहाँ प्रवेश करके स्थित हुआ मनुष्य पापकर्म से मुक्त हो सके। इस तरह दु ख की स्थिति का कथमपि अपलाप नही किया जा सकता। दु ख सर्वत्र व्याप्त है। लोग अविद्या में फँसे हैं दु ख को देखते हुए भी उसे नहीं समझते। उसे दूर करने का भी प्रयास नहीं करते। भगवान् कहते हैं कि दु ख हेय है। अत सत्त्वों को दु ख का अन्त करना चाहिए। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि पच उपादानस्कन्ध रूप सज्ञा संस्कार विज्ञान और वेदना दु ख है। पंचोपादान स्कन्धों को हेतु तथा प्रत्ययसहित अनित्य अनात्म और दु खरूप ही कहा गया है।

इस प्रकार उपयुक्त तथ्यो को देखने से पता चलता है कि जन्म दु ख है। रुग्णावस्था दु ख है। मृत्यु दु ख है ऐसी चीजो से मिलन जिनसे हम घृणा करते हैं तथा एसी वस्तुओं से वियोग जिन्हें हम बहुत चाहते हैं दु ख है। एक व्यक्ति किसी चीज को चाहता है तो उस वस्तु का न पाना भी दु ख है। जन्म मृत्यु दु ख और प्रेम सार्वकालिक तथ्य हैं। ये सामजस्य के अभाव और असामजस्य की अवस्था के सूचक हैं। मनुष्य के द ख उसके आध्यात्मिक रोग की जड ही द्वन्द्व है। यह सार्वभौमिक है और हमारे अस्तित्व का अभिन्न अग है जो क्षणभगुर तथा नश्वर है। परन्तु इससे मुक्ति पायी जा सकती है तथा अवश्य पायी जानी चाहिए।

## २ दु खसमुदय

द्वितीय आर्यसत्य है—द खसमुदय। समुदय का अर्थ है कारण। यदि दु ख के कारण की हम पहचान कर लेते हैं और इसे दूर कर देते हैं तो द ख स्वत ही लुप्त हो जायेगा। इसका कारण जीने की इच्छा या तन्हा है। मनुष्य को जहाँ सुख एव आनन्द मिलता है वहाँ उसकी प्रवृत्ति होती है। उसकी यह अधिक प्रवृत्ति या चाह ही तृष्णा कहलाती है। यह तृष्णा ही द ख का कारण है। तृष्णा ही सत्त्वों को पुन

---

१ न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतान विवर पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठितो मुञ्चेय पापकम्मा॥
न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे न पब्बतान विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो यत्थट्ठित नप्पसहेय्यमच्चू॥

धम्मपद गाथा-सख्या १२७ १२८।

२ ओल्डेनबर्ग बुद्ध पृ २१६ २१७ डॉ राधाकृष्णन् एस भारतीय दर्शन पृ ३३३ फुटनोट ३ तथा डॉ राधाकृष्णन् एस धम्मपद की भूमिका पृ १६।

३ देखिए डॉ राधाकृष्णन् एस धम्मपद की भूमिका पृ १६।

४ वही।

पुन उत्पन्न कराती ह अर्थात पौनभविकी ह नन्दी राग से सहगत है तृष्णा जहाँ-जहाँ सत्व उत्पन्न होते ह वहाँ-वहाँ अभिनन्दन ( आसक्ति ) करती-कराती है। धम्मपद में कहा गया है कि तृष्णा से शोक उत्पन्न होता ह तृष्णा से भय उत्पन्न होता ह तृष्णा से मक्त को शोक नही फिर भय कहाँ से ? इस प्रकार अपन को अच्छा लगनेवाले रूपादि विषयों में अभिनन्दन करनेवाली तृष्णा तत्र तत्राभिनन्दिनी कहलाती है।

अविद्या और कम द ख के हतु होने से समदय सत्य कहे गय है किन्तु गौण रूप से ही सही दु ख का तात्कालिक कारण तृष्णा है। धम्मपद में कहा गया है कि अविद्या परम मल है भिक्षओ इस मल को छोडकर निमल बनो। क्योकि तृष्णा के अभाव से वे पुनभव उत्पन्न करन म समथ नही होते अतएव तृष्णा ही समदय सत्य कही गई है अविद्या और कर्म नही। अविद्या तो अनागत सस्कारों का कारण ह। इससे इन्हें को भी समदय कहा गया है। धम्मपद म कहा गया है कि रति ( राग ) के कारण शोक उत्पन्न होता है रति के कारण भय उत्पन्न होता है। रति से जो सर्वथा मक्त है उसे शोक नही होता फिर भय कहाँ से हो ? अतएव काम राग आदि होनेवाले कर्म को दु ख का कारण कहा गया ह। इस तरह से द ख की उत्पत्ति का कारण है तृष्णा प्यास विषयो की प्यास। यदि विषयो की प्यास हमारे हृदय म न हो तो हम इस ससार म न पड और न द ख भोग। तृष्णा सबसे बडा बन्धन ह जो हमें ससार तथा ससार के जीवो से बाँधे हुए ह। धम्मपद की यह उक्ति कि धीर विद्वान् पुरुष लोहे लकडी तथा रस्सी के बन्धन को दढ नही मानत वस्तुत दढ बन्धन है सारवान् पदार्थों में रक्त होना या मणि कुण्डल पुत्र तथा स्त्री म इच्छा का होना बिल्कुल ठीक है। मकडी जिस प्रकार अपने ही जाल बुनती ह और अपने ही उसीम बधी रहती है ससार के जीवों

१ दीघनिकाय २।३ ८ प २३ विसुद्धिमग्ग १६।३१ पृ ३४८ मज्झिम निकाय १।४८ प ६५।

२ तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भय।
तण्हाय विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय ॥

धम्मपद गाथा-सख्या २१६।

३ अविज्जा परम मल। एत मल पहत्वान निम्मला होथ भिक्खवो ॥

वही २४३।

४ रतिया जायते सोको रतिया जायते भय।
रतिया विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय ॥ वही २१४।

५ नत दल्ह बन्धनमाहु धीरा यदायस दारुज बब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥ वही ३४५।

की दशा भी वैसी ही है। वे लोग तृष्णा से नाना प्रकार के विषयों में राग उत्पन्न करते हैं और इसी राग के बन्धन में अपने को बाँधकर दिन रात कष्ट उठाते हैं। तृष्णा तीन प्रकार की बतलायी गयी है

१ कामतृष्णा

यह नाना प्रकार के विषयों की कामना करती है।

२ भवतृष्णा

भव = ससार या जन्म अर्थात् इस ससार की सत्ता बनाये रखनेवाली तृष्णा। इस ससार की स्थिति के कारण हमीं हैं। हमारी तृष्णा ही इस ससार को उत्पन्न किए हुए है। ससार के रहने पर ही हमारी सुखवासना चरितार्थ होती है। अत इस ससार की तृष्णा भी तृष्णा का ही एक प्रकार है जो दु ख का कारण है।

३ विभवतृष्णा

उच्छेद-दृष्टि का नाम विभवतृष्णा है। विभव का अर्थ है उच्छेद ससार का नाश। उच्छेद-दृष्टि से युक्त राग ही विभवतृष्णा है। पूर्व-पूर्व भव की तृष्णा पश्चिम पश्चिम भव में उत्पन्न होनेवाले दु खों का समुदय होती है। अत तृष्णा समुदय सत्य कहलाती है। अविद्या कर्म व तृष्णा ससार के कारणरूप हैं अत तीनों पृथक-पृथक रूप से दु ख के कारण कहे गये हैं।

३ दु खनिरोध

तृतीय आर्यसत्य का नाम दु खनिरोध है। निरोध शब्द का अर्थ नाश या त्याग है। जब दु ख और उसका कारण है तब उसके कारण का निरोध कर दु ख का भी निरोध किया जा सकता है। दु ख के कारण तृष्णा का निरोध ही 'दु ख-निरोध' है। पाँच काम गुणों में नहीं लगना उसमें आनन्द नहीं लेना उसमें नहीं डूबे रहने से तृष्णा का क्षय निरोध होता है। इससे ही सम्पूर्ण दु ख का निरोध होता है। यही दु खनिरोध है।

धम्मपद में दु खनिरोध को बतलाते हुए निरोध शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से की गयी है कि किस मूल के निरोध से दु ख निरुद्ध हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो जैसे सुदृढ़ जड़ के सर्वथा नष्ट न होनेवाले तने से कटा वृक्ष फिर बढ़ जाता है वैसे ही

---

१ ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं सयं कतं मक्कटो'व जालं। धम्मपद ३४७।
२ दीघनिकाय २।३ ८ पृ २३ मज्झिमनिकाय १।४८ ४९ पृ० ६९ आदि।
३ पाण्डेय गोविन्दचन्द्र ओरिजिन्स ऑव् बुद्धिज्म पृ ४३४ ३५।
४ देखिए संयुत्तनिकाय २।७ ८ पृष्ठ ८९।

तृष्णा और अनुशय के समूल नष्ट न होने से यह दु ख बार बार उत्पन्न होता रहेगा। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कहा है कि समुदय के निरोध से ही दु ख का निरोध होता है। परमार्थ से दु खनिरोध निर्वाण ही है क्योंकि निर्वाण को पाकर यह तृष्णा निरुद्ध हो जाती है पृथक हो जाती है और रागरहित ही निरोध या निर्वाण कहलाता है। भगवान ने इसे एक दीपक की उपमा द्वारा इस तरह समझाया ह कि जैसे तेल और बत्ती के होने से प्रदीप जलता रहता है और उस प्रदीप में कोई समय-समय पर तेल न डाले और बत्ती को न उकसावे ठीक नही कर तो वह प्रदीप पहले के सभी आहार समाप्त हो जाने पर और नये न पाने से बुझ जायगा वैसे ही बन्धन म डालनेवाले धर्मो म बुराई ही बुराई मात्र देखते रहने से तृष्णा नही बढती प्रत्युत धीरे-धीरे यह समस्त दु खस्कन्ध ही निरुद्ध हो जायगे। तृष्णा के नाश से अविद्या का पूर्णतया प्रहाण हो जाता है। अविद्या के प्रहाण से सस्कार एव विज्ञान आदि समस्त प्रत्ययों का भी प्रहाण हो जाता है। इन समस्त दु खो का विप्रणाश होना ही निरोध कहलाता है।

## ४ दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद्

प्रतिपद् का अर्थ ह—मार्ग। यही चतुर्थ आर्यसत्य है जो दु खनिरोध तक पहुँचानेवाला मार्ग है। दु खनिरोध की ओर ले जानेवाला मार्ग ही दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद् है। मध्यम मार्ग ( मज्झिम पटिपदा ) भी इसीका नाम है। दु ख की शान्ति अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति इसी मार्ग के द्वारा सम्भव ह। लोक में जिससे जाया जाता है उसे मार्ग कहते हैं। आचार्य बुद्धघोष कहते हैं कि यह आलम्बन से तथा निर्वाण के अभिमुख होने से दु खनिरोध को प्राप्त कराता है अतएव इसे दु ख निरोध की ओर जानेवाला दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद कहा गया है। यह आर्य मार्ग है।

अब प्रश्न उठता है कि दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद आर्य सत्य क्या है ? जो कामोपभोग का हीन ग्राम्य अशिष्ट अनार्य अनर्थकर जीवन है और जो अपने शरीर

---

१ समुदय निरोधेन हि दुक्खं निरुज्झति।
न अञ्ञथा तेनाह यथापि मूले अनुपद्दवे ॥
दळ्हे छिन्नो पि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहत निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुन ॥ धम्मपद ३३८।
२ सयुत्तनिकाय २।८६ पृ ७४।
३ वही प ७४।
४ उपाध्याय बलदेव बौद्धदर्शन-मीमांसा पृ ५१।
५ अभिधर्मकोश पृ १ १३।

को व्यर्थ क्लेश देने का दु खमय अनार्य अनर्थकर जीवन है इन दोनों अन्तों से बचकर तथागत ने मध्यम मार्ग का उपदेश दिया है जो आँख खोल देनेवाला है ज्ञान करा देनेवाला है। आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग ही दु खनिरोधगामिनी प्रतिपद् है सम्यक दृष्टि सम्यक संकल्प सम्यक वाणी सम्यक कर्मान्त सम्यक आजीविका सम्यक व्यायाम सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि निमल ज्ञान की प्राप्ति के लिए यह अद्वितीय माग है। इस माग पर चलने से दु खों का नाश हो जाता है। कल्याणकारी माग होने से इसे कल्याणवत्म भी कहा गया है। भगवान् स्वय कहते हैं कि हे भिक्षुओ यह कल्याण माग एकान्त निर्वेद विराग सम्बोधि और निर्वाण की प्राप्ति के लिए है। धम्मपद में कहा गया है कि दर्शन की विशुद्धि अर्थात् सम्यक दृष्टि के लिए यही एक मार्ग है दूसरा नही है। मार के बन्धनो को दूर करने के लिए उनका नाश करने के लिए हे भिक्षओ तुम्हें इस माग को अपनाकर दु ख का अन्त करना चाहिए। दु खों को दूर करनेवाला ऐसा जानकर यह माग मैंने कहा है।

यदि हम चार आयसत्यों पर सम्मिलित रूप से विचार करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि बौद्धदशन के मूल आधार य चार आयसत्य ही हैं। ये आयसत्य ही बौद्ध धर्म के मूल उपादान भी हैं। ये ही बौद्धधम देशना के प्रधान अंग हैं। चारों आयसत्य पूणत नैतिक जीवन की प्रक्रिया से सम्बद्ध हं। दु ख चित्त के समस्त विषयो या जागतिक उपादानो की नश्वरता जन्म मरण की भव-परम्परा और चित्त के बन्धन का प्रतीक है। दु ख का हेतु जन्म-मरण की भव-परम्परा के कारणों का सूचक है। वह अनैतिक जीवन के कारणो एव स्थितियों की व्याख्या करता है। वह बताता है कि दु ख या जन्म-मरण की परम्परा अथवा अनैतिकता के हेतु क्या हैं। इन हेतुओं की व्याख्या के रूप में ही उसे प्रतीत्यसमुत्पाद का नियम भी कहा जाता है। चतुर्थ आयसत्य—दु खनिरोध का माग—यह बताता है कि यदि दु ख सहेतुक है तो हेतु का निराकरण भी सम्भव है। दु ख के हेतुओ का निराकरण कैसे हो सकता है यह बताना चतुर्थ आयसत्य का प्रमुख उद्देश्य है। इस रूप म वह नैतिक जीवन-पद्धति या अष्टाङ्ग माग की व्याख्या करता है। तृतीय आयसत्य दु खनिरोध नैतिक साधना की फलश्रुति के रूप में निर्वाण-अवस्था का सूचक है।

---

१ भिक्षु धर्मरक्षित बौद्धधम-दर्शन तथा साहित्य पृ ४९।

२ एसोव मग्गो नत्थञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेत पमोहनं॥
एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्त करिस्सथ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं॥

धम्मपद २७४ ७५।

## त्रिलक्षण अनित्य दुःख अनात्म

बौद्ध-दर्शन ससार को अनित्य दुःख और अनात्म इन तीन दृष्टियो से देखता ह। बौद्ध सभी पदार्थों को अनित्य मानते हैं। अनित्य का अथ विनाशशील माना जाता ह। लेकिन यदि अनित्य का अथ विनाशी करग तो हम फिर उच्छेदवाद की ओर होंग। वस्तुत अनित्य का अथ है परिवतनशील। परिवतन और विनाश अलग अलग हैं। विनाश में अभाव हो जाता है परिवतन म वह पुन एक नये रूप में उपस्थित हो जाता है। जसे बीज पौध के रूप म परिवर्तित हो जाता ह विनष्ट नही होता। सभी सस्कार क्षणिक हैं यह बौद्धो का प्रसिद्ध सिद्धान्त है। शास्ता ने भिक्षुओं को अन्तिम प्ररणा देत हुए कहा सभी सस्कार अनित्य ( नाशवान ) हैं अत क्षण मात्र भी प्रमाद न कर जीवन के लक्ष्य का सम्पादन करो। यह सिद्धान्त भी प्रतीत्य समुत्पाद से ही निकलता है क्योकि काय कारण या हेतु प्रत्ययवाद का यह नियम सभी पर लागू होता है। जो प्रती यसमत्पन्न होता ह उसीकी सत्ता होती है और वह अवश्य क्षणिक होता ह। जो क्षणिक नही होगा वह नि य हो जायेगा और जो नित्य होगा वह हेतुसमुत्पन्न न होगा। बौद्ध दशन म अनि य और क्षणिक का मतलब है सतत परिवर्तनशील। अर्थक्रियाकारित्व ही वस्तु का लक्षण है जो क्षणिक और प्रतीत्यसमुत्पन्न वस्तुओ मे ही सम्भव ह न कि नि य और निरपेक्ष वस्तुओ म। इस प्रकार प्रतीत्यसमत्पाद से अनित्यतावाद प्रतिफलित होता ह।

ससार के प्रत्येक पदाथ को अनित्य एव नाशवान् मानना अनित्य भावना है। धन सम्पत्ति कुटुम्ब परिवार अधिकार वभव सभी कुछ क्षणभगुर ह। बुद्ध ने अपने उपासकों को अनेक प्रकार से अनि यता का बोध कराया ह। ससार में जो कुछ भी है वह सब अनित्य हे सदा एक समान रहनवाला नही है। सभी उत्पत्ति स्थिति और नाश होने के तीन क्षणो म विभक्त है। रूप वेदना सज्ञा सस्कार और विज्ञान सभी अनित्य हैं। धम्मपद में कहा गया ह कि ससार के सब पदार्थ अनित्य हैं जब बुद्धिमान पुरुष इस तरह जान जाता है तब वह दुःख नहीं पाता। यह माग विशुद्धि का है।

## दुःख

ससार का प्रतिदिन का अनुभव स्पष्ट बतलाता है कि यहाँ सवत्र दुःख का

---

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग प ११९।

२ सयुत्तनिकाय २१ १ २ १ दूसरा भाग पृ ३३ ।

३ सब्बे सङ्खारा अनिच्चा ति यदापञ्ञाय पस्सति।
अथनिब्बिन्दति दुक्खे एसमग्गो विसुद्धिया ॥

धम्मपद २७७।

राज्य है। जिधर दृष्टि डालिये उधर ही दु ख दिखायी पडता है। यह बात मिथ्या कथमपि नहीं हो सकती। पहले आर्यसत्य में यही तथ्य सूत्ररूप में व्यक्त है। दु ख की व्याख्या करते हुए तथागत का कथन है—जन्म वृद्धावस्था मरण शोक परिदेवना दौमनस्य उपायास सब दु ख हैं। अप्रिय वस्तु के साथ समागम प्रिय के साथ वियोग और ईप्सित की अप्राप्ति दु ख है। सक्षेप म राग के द्वारा उत्पन्न पाँचो उपादान स्कन्ध दु ख हैं।

जगत के प्रत्येक काय प्रत्येक घटना म दु ख की सत्ता है। प्रियतमा जिस प्रिय के समागम को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य मानकर नितान्त आनन्दमग्न रहती है उससे भी एक न एक दिन वियोग अवश्यम्भावी है। जिस द्रव्य के लिए मानवमात्र इतना परिश्रम करता है उसको भी प्राप्ति नितान्त कष्टकारक है। जब अथ के उपार्जन रक्षण तथा व्यय सभी म दु ख है तब अर्थ को सुखकारक कैसे कहा जाय। यह ससार तो भव ज्वाला से प्रदीप्त भवन के समान है। मूढ़जन इस स्वरूप को न जानकर तरह-तरह के भोग विलास की सामग्री एकत्र करते हैं परन्तु देखते-देखते बाल की भीत को समान विशाल सौख्य का प्रासाद पृथ्वी पर लोटने लगता है उसके कण-कण छिन्न भि न होकर बिखर जात हैं। इस प्रकार परिश्रम तथा प्रयास से तैयार की गयी भोग सामग्री सुख न पदा कर दु ख ही पैदा करती है। अत दु ख प्रथम आर्यसत्य कहा गया है। साधारणजन प्रतिदिन उसका अनुभव करते हैं परन्तु उससे उद्विग्न नहीं होते। उसे साधारण घटना समझकर उसके आगे अपना शिर झुकाते हैं। परन्तु बुद्ध का अनुभव नितान्त सच्चा है उनका उद्वेग वास्तविक है। इस प्रकार बद्ध की दृष्टि में यह समग्र संसार दु ख ही दु ख है।

धम्मपद में भी कहा गया है कि सभी सस्कार ( पदाथ ) दु खरूप हैं इस प्रकार जब प्रज्ञा से मनुष्य देखता है तब वह दु खों से मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। यही निर्वाण का माग है।

**अनात्म**

अनात्म बौद्धधम का प्रधान मान्य सिद्धान्त है। इसका अर्थ यह है कि जगत् के समस्त पदार्थ स्वरूपशून्य हैं। वे कतिपय धर्मों के समुच्चयमात्र है उनकी स्वय स्वत न्त्र सत्ता नहीं है। अनात्म शब्द यही नहीं द्योतित करता है कि आत्मा का अभाव

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २२७।

२ सब्बे संखारा दुक्खाति यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दती दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया॥
धम्मपद २७८।

है बल्कि यह भी कि आत्मा के अभाव के साथ-साथ अन्य परिवर्तनशील पदार्थों या वस्तुओं की सत्ता है। वस्तु की दूसरी संज्ञा धर्म है। धर्म का अर्थ है अत्यन्त सूक्ष्म प्रकृति और मन के अन्तिम तत्त्व जिनका पुन पृथक्करण नहीं किया जा सकता। यह जगत इन्ही नानाधर्मों के घात प्रतिघात से सम्पन्न हुआ है।

पुद्गल जीव आत्मा ये शब्द एक-दूसरे के समानार्थक हैं। बुद्ध भगवान् के अनुसार इन शब्दों के द्वारा अभिहित पदार्थ की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। आत्मा केवल नाम है परस्पर सम्बद्ध अनेक धर्मों का एक सामान्य नामकरण आत्मा या पुद्गल है। बुद्ध ने व्यावहारिक रूप से आत्मा का निषेध नहीं किया है प्रत्युत पारमार्थिक रूप से ही। अर्थात् लोकव्यवहार के लिए आत्मा की सत्ता है जो रूप वेदना संज्ञा संस्कार तथा विज्ञान इन पंचस्कन्धो का समूहमात्र है परन्तु इनके अतिरिक्त आत्मा कोई स्वतन्त्र परमार्थभूत पदार्थ नही है।

धम्मपद म भी कहा गया है कि समस्त पदार्थ अनित्य हैं दु ख हैं अनात्म हैं। किन्तु समस्त का तात्पर्य क्या है और इसम कितने धर्म संगृहीत होते हैं इसके बारे म धम्मपद म कही उल्लेख नही मिलता। प्राय बौद्ध-साहित्य म समस्त से तात्पर्य हमारे सामान्य अनुभव की प्रत्येक वस्तु अथवा विशिष्ट रूप से पाँच स्कन्ध द्वादश आयतन एव अष्टादश धातु से ही ग्रहण किया गया है।

पाँच स्कन्ध—बुद्ध ने आत्मा की स्वतन्त्र सत्ता का तो निषेध किया परन्तु वे मन और मानसिक वृत्तियो की सत्ता हमेशा स्वीकार करते थे। आत्मा का पता भी मानसिक व्यापारों से ही चलता है। स्कन्ध का अर्थ राशि है। इसलिए रूपराशि रूपस्कन्ध वेदनाराशि वेदनास्कन्ध आदि है। आत्मा इन्ही पाँच घटकों से निर्मित माना गया है। ये पाँच स्कन्ध हैं—रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान। इन्ही के योग से यह व्यक्ति निर्मित है। इनके अतिरिक्त यहाँ अन्य कुछ नहीं है। इसके एकीभाव में ही व्यक्ति का प्रादुर्भाव है अन्यथा व्यक्ति का सर्वथा अभाव। तथागत के वचनानुसार सम्यक दृष्टि से तो यह व्यक्ति दो अवस्थाओं का पुञ्ज-सा दीख पड़ेगा। वे अवस्थाएं हैं शारीरिक तथा मानसिक। इन्हीं दोनों अवस्थाओं को बौद्ध

---

१ उपाध्याय बलदेव बौद्ध-दर्शन मीमांसा पृ ७ ।

२ वही पृ ७१ ।

३ सब्बे धम्मा अन-त्ताति यदा पञ्ञाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥ धम्मपद २७९ ।

४ ओल्डेनबर्ग बुद्ध पृ २२८ की टिप्पणी ।

५ राइज डेविड्स बुद्धिज्म पृ १३३ ।

दर्शन में क्रमश रूप और नाम कहा गया है। यहाँ जो कुछ स्थूल-पुरुष है वह सब रूप है और जो सूक्ष्म है वह सब नाम है। नाम की प्रधानता तथा सहूलियत के लिए नामरूप[1] कहकर पुकार सकते हैं। मानसिक अवस्था अर्थात् नाम चार विभिन्न अवस्थाओं में बँटा है—वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान। हेतु प्रत्ययों से उत्पन्न सभी संस्कृत धर्मों का संग्रह पाँच स्कन्धों में हो जाता है। तात्पर्य यह है कि निर्वाण जो कि असंस्कृत धर्म ( जो किसी कारण से उत्पन्न नहीं होता ) है उसे छोड़कर सभी वस्तुएँ इसमें संगृहीत हो जाती हैं।

### रूपस्कन्ध

शीत उष्ण आदि विरोधी प्रत्ययों के समागम से जिनमें विकार आ जाता है उसे रूप कहते हैं। आदि शब्द के द्वारा बुभुक्षा पिपासा दंश मशक वातातप सरिसृप आदि का भी ग्रहण होता है। यहाँ स्पष्ट या स्थूल विकार अभिप्रेत होने के कारण जिनमें स्थूल विकार होता है उन्हें ही रूप कहा गया है। नाम धर्मों में भी विकार होता है किन्तु उनका विकार अत्यन्त सूक्ष्म है अत उन्हें रूप नहीं कहते।

### वेदनास्कन्ध

वेदना का अर्थ अनुभव है। सुख दुःख सौमनस्य दौर्मनस्य उपेक्षा आदि वेदनायें होती हैं। ये वेदनायें विविध तृष्णाओं की हेतु होती हैं क्योंकि मनुष्य प्राय सुख वेदना के प्रति रागवान् होता है और उसे प्राप्त करने के लिए अनेकविध अच्छे बुरे कर्म करता है।

### संज्ञास्कन्ध

संज्ञा निमित्तों को ग्रहण करती है। भगवान ने कहा कि भिक्षु को चक्षु से रूपमात्र को ग्रहण करना चाहिए निमित्तों का नहीं। स्त्री पुरुष पुत्र दीर्घ ह्रस्व मनोज्ञ अमनोज्ञ इष्ट अनिष्ट आदि निमित्त हैं। विपरीत संज्ञावश व्यक्ति का संसार में संसरण होता रहता है। विपरीत संज्ञा और वेदना ही इस संसार-चक्र के प्राथमिक हेतु हैं। सारे नाम व्यवहार भी संज्ञावश ही प्रवृत्त होते हैं। अत संज्ञा को ही प्रपंच भी कहते हैं।

---

१ ओल्डेनबर्ग बुद्ध पृ ४४६।

२ विभंग पृ १ संयुत्तनिकाय द्वितीय भाग पृ ३१२।

३ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २२४।

४ वही प्रथम भाग पृ २२४ अभिधर्मकोश प्रथम भाग पृ ४८।

### संस्कारस्कन्ध

इस स्कन्ध के अन्तगत प्रधानतया राग द्वेष अनेक मानसिक प्रवृत्तियों का समावेश किया जाता है। वस्तु की सज्ञा से परिचय मिलते ही उसके प्रति हमारी इच्छा या द्वेष का उदय होता है। रागादिक क्लेश मद मानादि उपक्लेश तथा धम अधम ये सब इस स्कन्ध के अन्तगत आत हैं।

### विज्ञानस्कन्ध

प्रत्येक विषयो के प्रति होनेवाला उनको जाननेवाला ज्ञानविज्ञानस्कन्ध है। विज्ञान स्वभावत निमल एव प्रभा स्वर होता ह। अकुशल और कुशल हेतुओ तथा अनशयो के कारण वह कुशल अकुशल हो जाया करता है। साधना के द्वारा उसे निमल बनाया जाता है। निर्मल चित्त ही निर्वाण का साक्षात्कार करने में समथ होता ह।

### द्वादश आयतन एव अष्टादश धातु

आयतन का अथ आयद्वार से है। धातु का अर्थ गोत्र है। धातु १८ होत हैं। ६ इन्द्रिय ६ उनके विषय और उनसे उत्पन्न ६ विज्ञान ये ही अठारह धातुए हैं। ६ इन्द्रियाँ और उनके ६ विषय य १२ धातुए रूपस्कन्ध तथा ६ विज्ञान विज्ञानस्कन्ध के अन्तगत गृहीत होत हैं। आयतन १२ हैं यथा—चक्षुरायतन श्रोत्र घ्राण जिह्वा एव कायायतन—ये पाँच आभ्यन्तर आयतन हैं। ये इन्द्रियाँ हैं। रूप श'' गन्ध रस एव स्पश य पाँच बाह्यायतन हैं। ये विषय हैं। ये दश आयतन रूपस्कन्ध के अन्तर्गत सगृहीत होते है। ११वाँ धर्मायतन तथा १२वाँ मन-आयतन है। मन आयतन में सभी चित्त गृहीत हात हैं और स्कन्ध देशना म इसे ही विज्ञानस्कन्ध कहते हैं। धर्मायतन में सभी चैतासिक एव निर्वाण का ग्रहण होता है। स्कन्धदेशना में यह आयतन वेदना सज्ञा एव सस्कार इन तीन स्कन्धो में विभक्त हो जाता ह।

### दु ख से नि सरण ही बुद्धदेशना का प्रयोजन

बद्ध की स्कन्ध आयतन धातु-सम्बन्धी देशना ससार की अनित्यता दु खता अनात्मता एव अशुभता समझाकर दु खमय ससार से वराग्य उत्पन्न कराने के लिए ही है।

आ मभाव को ही बुद्ध सभी दु खों का मूल मानते थ। अत इसे समूल नष्ट करने के उद्देश्य से उन्होन सांसारिक जीवन का सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया। स्कन्ध

---

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २२४ अभिधमकोश प्रथम भाग प ४८।
२ वही पृ ५ ।
३ वही तृतीय भाग (सगीतसुत्त) प १८८ अभिधम्मत्यसगहो द्वितीय भाग पृ ७९१।

आयतन धातु सिद्धान्त इसी प्रक्रिया के परिणाम हैं। बुद्ध का उपदेश था— भिक्षुओ रूप अनात्म है। यदि रूप आत्मा होता तो वह दु ख का कारण न बनता और सब कोई ऐसा कह सकता— मेरा रूप ऐसा होवे मेरा रूप ऐसा न होवे क्योंकि रूप अनात्मा है इसलिए यह दु ख का कारण होता है और कोई ऐसा नही कह सकता— मेरा रूप एसा होवे मेरा रूप ऐसा न होव। भिक्षओ वेदना सज्ञा सस्कार विज्ञान अनात्म है तो भिक्षओ क्या समझते हो रूप नित्य ह या अनित्य।

अनित्य भन्ते।

जो नित्य ह वह दु ख है या सुख ?

दु ख भन्ते।

जो अनित्य दु ख ओर विपरिणाम धम है। क्या उसे ऐसा समझना ठीक है कि यह मेरा है यह म हूँ यह मेरी आत्मा है ?

नही भन्त

भिक्षओ इसलिए जो भी रूप अतीत अनागत वतमान भीतरी बाहरी स्थूल सूक्ष्म हीन प्रणीत दूर म या निकट में ह सभी को यथायत प्रज्ञापूवक ऐसा समझना चाहिए कि यह मेरा नही है। यह मं नही हूँ। मेरी आत्मा नहीं है।

भगवान् बुद्ध के य दार्शनिक क्रान्तिकारी विचार थे। दु ख कहने और मानने पर भी अनित्य और अनात्म के विचार भारतीय दर्शन में उनसे पूर्व नही प्रवेश पा सके थ। दु ख की व्याख्या भी अन्य दार्शनिकों से भिन्न थी। व्यक्ति की उत्पत्ति से लेकर मृत्युपयन्त चित्त सन्तति के रूप में परिवतनशील जीवन उत्पत्ति स्थिति और लय इन क्षणत्रय के अनुसार क्षणिक है। वह शाश्वत ध्रुव चिरस्थायी सदा एक-सा रहनेवाला नहीं ह। वह विकृत होनेवाला है। इसी प्रकार वह दु खमय है। सुखानुभूति तृणादि से ओस की बूंद चाटने के समान कल्पनामात्र है। किसीको अपने ऊपर वशता प्राप्त नही है। कोई ईश्वर परमात्मा या अलौकिक शक्ति ऐसी नहीं है जो उसे निर्मित करे या अपनी इच्छा के अनुसार उसका सचालन करे। बौद्धधर्म की यह सबसे बडी विशेषता है कि यह अनित्य दु ख और अनात्म को मानते हुए आत्मा परमात्मा को नही मानता फिर भी जीवन को इसी जन्म तक सीमित नही मानता। कम विपाक के अनुसार व्यक्ति का पुनर्जन्म तब तक होता रहता है जब तक कि वह निर्वाण का साक्षात्कार न कर ले।

---

१ संयुत्तनिकाय २१ २ १ ७ ( दूसरा भाग ) पृ ३५१-५२।

२ बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्त भिक्षु धर्मरक्षित भूमिका से।

## प्रतीत्यसमुत्पाद

बुद्ध के आविर्भावकाल में भारतीय दार्शनिक गगन-मण्डल में सर्वत्र आत्मा का शाश्वतवाद एव उच्छेदवादरूपी वायुमण्डल व्याप्त था । बुद्ध ने शाश्वतवाद एव उच्छेद वाद का विध्वस कर अपने स्वय साक्षात्कार किए हुए प्रतीत्यसमुत्पाद अनात्म वाद एव अनीश्वरवाद दर्शन की स्थापना की । उनके उपदेशों की दार्शनिक भित्ति प्रतीत्यसमुत्पाद ही ह । यह प्रतीत्यसमत्पाद ( पालि—पटिच्च समप्पाद ) बौद्ध-दर्शन का आधारपीठ है । इसकी गहनता व्यापकता और सूक्ष्मता समूचे बौद्ध साहित्य म द्रष्टव्य है । प्रतीत्यसमत्पाद का अथ है— अस्मि सति इद भवति अर्थात् किसी वस्तु की ( हेतु की ) प्राप्ति होने पर समत्पाद = अन्य वस्तु की उत्पत्ति । अर्थात जगत की वस्तुओ या घटनाओ म सवत्र यह काय कारण का नियम जागरूक है । एक वस्तु के रहने पर दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है । वस्तु की उत्पत्ति बिना किसी कारण के नही होती । काय कारण का यह महत्त्वपूर्ण नियम बुद्ध की अपनी खोज है ।

दीघनिकाय के महानिदानसुत्त में इसकी गम्भीरता पर जोर देते हुए आनन्द ने भगवान से कहा आश्चय है भन्ते ! अद्भुत है भन्ते ! कितना गम्भीर है और गम्भीर-सा दीखता है यह प्रतीत्यसमत्पाद परन्तु मझे यह साफ-साफ ( उत्तान ) जान पड़ता है । भगवान इसका उत्तर देते हुए कहते है कि आनन्द ! इस धर्म ( प्रतीत्य समत्पाद ) को न जानने से प्रतिवेधन करने से ही यह प्रजा उलझे सूत-सी गाँठें पडी रस्सी-सी मंज बल्वज-सी अपाय-दुगति में पडी हुई ह और ससार-सागर से पार नही हो पा रही है ।

## प्रतीत्यसमुत्पाद और कायकारणभाव

प्रतीत्यसमत्पाद का सन्दभ अत्यन्त व्यापक है । यह बौद्ध-दृष्टि से कार्य-कारण वाद या हेतुप्रत्ययवाद का नियम ह । यह दुनिया की सभी वस्तुओ पर लागू होता है । यहाँ तक कि प्रतीत्यसमत्पन्न होना ही वस्तु का लक्षण स्वीकार किया गया अर्थात्

---

१ दीघनिकाय प्रथम भाग ( ब्रह्मजालसुत्त ) प १२ ।

२ वही पृ १२ ।

३ मज्झिमनिकाय ३।६३ पृ १२६ अभिधर्मकोश भाष्य पृ १३९ ।

४ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ ४४ ।

५ बौद्धदर्शन-मीमांसा पृ ६२ ।

६ अभिधर्मकोश ३।२७ पृ ४४८ ।

उस पदार्थ की वस्तु सत्ता ही नहीं है जो प्रतीत्यसमुत्पन्न नहीं है। इसलिए दार्शनिक-क्षेत्र में यदि कोई बुद्ध की देन को एक शब्द में पूछना चाहे तो निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त ही भगवान् बुद्ध की विशेषता है। कार्य-कारण का सिद्धान्त तो बुद्ध से पूर्व भी अन्य दार्शनिक-सम्प्रदायों में ज्ञात था किन्तु वह सभी वस्तुओं पर लागू नहीं था। ऐसे अनेक तत्त्व अछूते रह जाते थे जिस पर यह नियम लागू न होता था जैसे—आत्मा प्रकृति ईश्वर आकाश काल दिक् आदि। बुद्ध ने सर्वप्रथम इस सिद्धान्त का गौरव प्रदान किया उसे सब पदार्थों पर लागू किया और उसे सत्ता का पर्यायवाची बनाया। यह बहुत बड़ी बात थी। इसने दार्शनिक जगत् में हलचल पैदा की और दार्शनिक-विचारों के विकास की अनन्त सम्भावनाएँ उद्भूत कीं। यही कारण है कि बौद्ध-दर्शन गतिशीलता क्रियाशीलता और प्रगतिशीलता का पर्यायवाची बन सका।

बौद्ध-दर्शन आगे चलकर वैभाषिक सौत्रान्तिक विज्ञानवाद (योगाचार) और शून्यवाद (माध्यमिक) इन चार दार्शनिक-सम्प्रदायों में विकसित हुआ किन्तु सभी का आधारभूत सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद ही था। प्रतीत्यसमुत्पाद की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके ही उन्होंने अपने-अपने दर्शन की नींव रखी। प्रतीत्यसमुत्पाद की देशना भगवान बुद्ध ने की थी अतः सभी बौद्ध-दार्शनिक सम्प्रदाय-प्रवर्तक आचार्यों ने कहा कि जैसी उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या की वही बुद्ध का असली मन्तव्य था और वे ही उनके विचारों के वास्तविक उत्तराधिकारी तथा उनके सच्चे अनुयायी थे। इसी एक प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या के आधार पर एक ओर स्थविरवादी वैभाषिक और सौत्रान्तिक आदि वस्तुवाद की स्थापना करते हैं तो दूसरी ओर विज्ञानवादी-योगाचार विज्ञानवाद की और शून्यवादी-माध्यमिक अपने शून्यवाद की। बौद्धों का सर्वप्रसिद्ध क्षणिकवाद का सिद्धान्त भी इसी प्रतीत्यसमुत्पाद की सूक्ष्म व्याख्या की देन है। कहने का आशय यह है कि प्रतीत्यसमुत्पाद एक ऐसा व्यापक और वैज्ञानिक सिद्धान्त था जिसने ज्ञान के विकास में अपूर्व योगदान किया।

प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ है हेतु-प्रत्ययों से उत्पाद। प्रत्येक वस्तु हेतु-प्रत्ययों से उत्पन्न (प्रतीत्यसमुत्पन्न) है। जो हेतु-प्रत्ययों से उत्पन्न नहीं वह वस्तु ही नहीं अपितु अवस्तु और काल्पनिक है। इसी दृष्टि से आत्मा ईश्वर काल आदि अबौद्धों द्वारा कल्पित नित्य पदार्थ अवस्तु सत् कल्पित एवं भ्रान्त सिद्ध हो जाते हैं। इस तरह इस सिद्धान्त से शाश्वतवाद का निषेध हो जाता है। फिर भी हेतु-फल की शृंखला बराबर जन्म-जन्मान्तरपर्यन्त अविच्छिन्न रूप से चलती रही है और वह तब तक

---

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ ४४।

चलती रहती है जब तक निर्वाण प्राप्त नहीं कर लिया जाता। अतः इस सिद्धान्त से चार्वाकों का वह मत भी निराकृत हो जाता है जिसके अनुसार जीवन केवल वर्तमान ही है। इस तरह उच्छेदवाद का भी प्रतीत्यसमुत्पाद द्वारा निषेध कर दिया जाता है। साथ ही अहेतुकवाद स्वभाववाद अक्रियावाद आदि अनेक मतवादों के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता।

**निर्वचन**

प्रतीत्यसमुत्पाद में प्रति का अर्थ प्राप्ति है। इस उपसर्ग के साथ गत्यर्थक इण धातु का योग है। उपसर्ग की वजह से धातु का अर्थ बदल जाता है। फलतः प्रति-इ का अर्थ प्राप्ति होता है और क्त्वा प्रत्यय के योग से निष्पन्न प्रतीत्य का अर्थ है— प्राप्त करके। पद धातु सत्तार्थक है। सम उत् उपसर्गपूर्वक इसका अर्थ प्रादुर्भाव है। अतः प्रतीत्यसमुत्पाद का अर्थ हेतु प्रत्ययों को प्राप्त कर कार्य का उत्पाद होता है। इससे प्रतीत्यसमुत्पाद की बौद्धधर्म में स्पष्ट महत्ता दृष्टिगोचर होती है।

**द्वादशांग प्रतीत्यसमुत्पाद**

प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त द्वारा ही बुद्ध ने सांसारिक जीवन की सम्यक् व्याख्या की और दुःख का कारण समझाया। दुःख अकारण नहीं सकारण है और कारण दूर करने पर दुःख से मुक्ति पायी जा सकती है। आर्यसत्यों के माध्यम से संक्षेप में बुद्ध ने समझाया कि दुःख का कारण तृष्णा है। परन्तु इसी कारण प्रक्रिया के अन्वेषण का विकसित रूप १२ निदानों की शृंखला में दिखाई पड़ता है। प्रतीत्यसमुत्पाद १२ निदान या अंग यथार्थ में कारणों या प्रत्ययों की ही शृंखला है। इन १२ अंगों का वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में इस प्रकार मिलता है— अविद्या प्रत्यय से संस्कार संस्कार प्रत्यय से विज्ञान विज्ञान प्रत्यय से नामरूप नामरूप-प्रत्यय से षडायतन षडायतन प्रत्यय से स्पर्श स्पर्श प्रत्यय से वेदना वेदना प्रत्यय से तृष्णा तृष्णा-प्रत्यय से उपादान उपादान प्रत्यय से भव भव प्रत्यय से जाति जाति प्रत्यय से जरा मरण शोक परिदेव दुःख दौमनस्य एवं उपायास होते हैं। इस प्रकार समस्त दुःख स्कन्ध का समुदय होता है यही प्रतीत्यसमुत्पाद है।

बुद्ध के उपदेशों में द्वादशाङ्ग कहीं संक्षिप्त और कहीं विस्तृत है कहीं एक से बारह कहीं सात से बारह कहीं बारह से एक कहीं आठ से एक कहीं तीन से बारह

---

१ बौद्ध-संस्कृति का इतिहास भागचन्द्र जैन भास्कर पृ ९४।

२ अभिधर्मकोश भाष्य ३।२८ पृ १३८।

३ विनयपिटक महावग्ग १ पृ १ दीघनिकाय २।५५ पृ ४४ संयुत्तनिकाय २।१ पृ १ विसुद्धिमग्ग १७।२ पृ २६२।

और कहीं पाँच से आठ निदानों का वर्णन है। इन उद्धरणों से ऐसा लगता है कि तथागत ने विभिन्न समयों में दुःखोत्पत्ति के कारणों को विविध रूप में प्रस्तुत किया था और उन सभी उपदेशों में से उक्त बारह निदानों को संकलित कर दिया गया। यह समूचा सकलन महानिदान सुत्तन्त में उपलब्ध होता है। एक अन्य धारणा के अनुसार अविद्या और सस्कार अतीत में जाति और जरा-मरण अनागत भव ( जन्म ) मे तथा शेष आठ अग वर्तमान भव में होते हैं।

**अविद्या**

यह पूर्वजन्म की क्लिष्ट अवस्था है। अविद्या से केवल अविद्या अभिप्रेत नही है अपितु पूर्वजन्म की सन्तति ( अपने पाँचों स्कन्धो के साथ ) अभिप्रेत है जो क्लेशावस्था में होती है।

**सस्कार**

यह पूर्वजन्म की कर्मावस्था है। पूर्वजन्म की सन्तति पुण्य अपुण्य आदि कर्म करती है। यह कर्मावस्था ही सस्कार है।

**विज्ञान**

यह प्रतिसन्धि क्षण के स्कन्धों की अवस्था है। उत्पत्ति के क्षण में कुक्षिगत पाँच स्कन्ध ही विज्ञान हैं।

**नामरूप**

विज्ञान क्षण से लेकर षडायतन की उत्पत्ति तक पाँच स्कन्धों की अवस्था नामरूप ह।

**षडायतन**

स्पर्श से पूर्व के पाँच स्कन्ध स्पर्श हैं। इन्द्रियों के प्रादुर्भाव-काल से इन्द्रिय विषय और विज्ञान के सन्निपात-काल तक षडायतन हैं।

**स्पर्श**

सुख-दुःखादि के कारण-ज्ञान की शक्ति के उत्पाद से पूर्व की अवस्था स्पर्श है। बालक सुख दुःख आदि को परिच्छिन्न करने में समर्थ नहीं होता तब तक की अवस्था स्पर्श है।

---

१ बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन भाग १ पृ ३९ ।

२ दीघनिकाय २।५६ पृ ४४ ४५।

३ बौद्ध-दर्शन-मीमांसा बलदेव उपाध्याय पृ ६२ ६३।

**वेदना**

जब तक मैथुनराग का उत्पाद नही होता तब तक की अवस्था वेदना है क्योकि यहाँ वेदना के कारणों का प्रतिसवेदन होता है।

**तृष्णा**

यह भोग और मथन की कामना करनेवाले पुद्गल की अवस्था है। इस अवस्था म कामभोग और मथुन के प्रति राग का समुदाचार होता है। यह तृष्णा की अवस्था है। इसका अन्त तब होता है जब व्यक्ति राग के प्रभाव से भोगों की पर्येष्टि आरम्भ करता है।

**उपादान**

यह पुद्गल की अवस्था है जो भोगो की पर्येष्टि म दौड धूप करता है।

**भव**

भोगों की पर्येष्टि म दौड धूप करनवाला व्यक्ति कम करता है जिसका फल भविष्य म होता ह। इन कर्मों को भव कहते हैं।

**जाति**

फिर से ज'म लेना जाति ह। मरण के अनन्तर प्रतिसन्धि-काल के पाँच स्कन्ध जाति हैं।

**जरा-मरण**

जाति से वदना तक जरा मरण है। प्रत्युत्पन्न भव के चार अग नामरूप षडायतन स्पश और वेदना अनागत भव के सम्बन्ध में जरा-मरण हैं। यह बारहवाँ अग है।

इस प्रकार हम देखते है कि बुद्ध की दृष्टि म सभी वस्तुए प्रतीत्यसमुत्पन्न हैं। अर्थात् हेतु प्रत्ययों से उत्पन्न हैं। जो प्रतीत्यसमुत्पन्न नही वह वस्तु ही नहीं अपितु अवस्तु है। फलतः आत्मा ईश्वर आदि जो नित्य हैं वे अवस्तु हैं काल्पनिक हैं समारोप मात्र हैं। जो हेतु प्रत्ययो से उत्पन्न होगा वह अवश्य नश्वर होगा क्योंकि उत्पन्न का विनाश होना स्वाभाविक है जो नश्वर है अनित्य है वह अवश्य दु:ख स्वभाव है दु ख है। अत सभी वस्तुए अनित्य अनात्म और दु ख हो जाती हैं। वस्तु का लक्षण है अर्थक्रियाकारी होना। क्षणिक वस्तु ही अर्थक्रियाकारी होना। क्षणिक वस्तु ही अर्थक्रियाकारी हो सकती है। नित्य पदार्थ या तो अर्थक्रिया नहीं करेंगे या एक साथ कर देंगे और दोनों ही प्रकार अयुक्तिसगत एव विरुद्ध हैं। अत जो क्षणिक नही उसकी सत्ता ही बौद्ध-दृष्टि में नही मानी जाती। यह प्रतीत्यसमुत्पाद दृष्टि ही सम्यक दृष्टि है और यही बौद्धमत की विशेषता है।

## उत्तराध्ययन में प्रतिपादित जैनतत्त्व मीमांसा

उत्तराध्ययनसूत्र में तत्त्वों की सख्या ९ बतायी गयी है —(१) जीव (२) अजीव (३) पुण्य (४) पाप (५) आस्रव (६) बन्ध (७) सवर (८) निजरा और (९) मोक्ष।

### नौ तत्त्वों का क्रम

इनमें जीव को ही प्रथम स्थान क्यों दिया गया इस सन्दर्भ में जैनतत्त्वकलिका में कहा गया है कि उक्त तत्त्वों में ज्ञाता पुद्गल का उपभोक्ता शुभ और अशुभ कर्म का कर्ता तथा ससार और मोक्ष के लिए योग्य प्रवृत्ति का विधाता जीव ही है। यदि जीव न हो तो पुद्गल का उपयोग क्या रहेगा ? इसीलिए नव तत्त्वों में जीव तत्त्व की प्रमुखता होने से उसे प्रथम स्थान दिया गया है। जीव की गति में अवस्थिति में अवगाहना में और उपभोग आदि म उपकारक अजीव तत्त्व है अत जीव के पश्चात् अजीव का उल्लेख है। जीव और पुद्गल का सयोग ही संसार है। उस ससार के आस्रव और बन्ध ये दो कारण है अत अजीव के पश्चात् आस्रव और बन्ध को स्थान दिया गया है। ससारी आत्मा को पुण्य से सुख का वेदन और पाप से दु ख का वेदन होता है इस दृष्टि से पुण्य और पाप का स्थान कितने ही ग्रन्थों में आस्रव और बन्ध के पर्व रखा गया ह और कितने ही ग्रन्थों में उसके बाद में रखा गया है। जीव और पुद्गल का वियोग मोक्ष है। सवर और निजरा उस मोक्ष के कारण है। कम की पण निजरा होने पर मोक्ष होता है अत संवर निर्जरा और मोक्ष यह क्रम रखा गया है।

उक्त तत्त्वो का स्वरूप उत्तराध्ययन में निम्न रूप में वर्णित है—

### जीव

नवतत्त्वों में सबसे पहला होने के कारण उत्तराध्ययन में जीव का स्पष्ट लक्षण[3] किया गया है। जीव का लक्षण उपयोग है। यह लक्षण संसारस्थ और सिद्ध दोनों प्रकार के जीवों में घटित होता है जिसमें ज्ञान और दर्शनरूप उपयोग पाया जाता

---

१ जीवाजीवा य बन्धो य पुण्ण पावा सवो तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो सतेए तहियानव॥
उत्तराध्ययनसूत्र २८।१४।

२ जैनतत्त्वकलिका सम्पादक अमरमुनि पृ ७८।

३ जीवो उवओग लक्खणो।
नाणेणं दसणेणं च सुहेण य दुहेण य॥
उत्तराध्ययनसूत्र २८।१०।

है वह जीव है। जीव के इसी स्वरूप का कथन करते हुए ग्रन्थ में अन्य प्रकार से भी लिखा है कि ज्ञान दर्शन सुख दुःख चारित्र तप वीर्य और उपयोग ये सब जीव के लक्षण हैं।

उत्तराध्ययनसूत्र म जीव के सामान्य चेतन गुण के अतिरिक्त कुछ अन्य गुण भी बतलाय गये हैं जैसे—जीव अमूर्त है अविनाशी है स्वदेह परिमाणवाला है कर्ता भोक्ता तथा पूर्ण स्वतन्त्र है स्वरूपत ऊर्ध्वगतिशील है आदि।

जीव के दो प्रधान भेद हैं—ससारी और सिद्ध।

**सिद्ध जीव**

इसको मुक्त आत्मा भी कहा जाता है। कर्म-बन्धन टूटने से जिनका शुद्ध स्वरूप प्रकट हो जाता है वे मुक्त आत्माएँ हैं। मुक्त जीव की अवस्था जरा-मरण से रहित

---

१ नाण च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
वीरिय उवओगो य एय जीवस्स लक्खण॥
उत्तराध्ययनसूत्र २८।११।

२ नो इन्दियग्गेज्झ अमुत्तभावा
अमुत्तभावा वियहोइ निच्चो।
वही १४।१९।

३ नत्थि जीवस्स नासुत्ति।
वही २।२७।

४ उस्से हो जस्स जो होइ भविम्म चरिमम्मि उ।
तिभागहीणा तत्तो य सिद्धाणो गाहणा भवे॥
वही ३६।६४।

५ अप्पानईवेयरणी अप्पामेकू सामली।
अप्पा कामदुहाधेणु अप्पा मे नन्दण वर्ण॥
अप्पाकत्ता निकत्ता य दुहाणय सुहाणय।
अप्पामित्त भमित्त च दुप्पटिठय-सुपट्ठिओ॥
वही २०।३६ ३७।

६ आलोए पडिहया सिद्धालोयग्गे यपइटिठया।
इह बोन्दि चइत्ताण तत्थगन्तूण सिज्झई॥
वही ३६।५६।

७ संसारत्थाय सिद्धाय दुविहा जीवा वियाहिया।
वही ३६।४८।

व्याधि से रहित शरीर से रहित अत्यन्त दु खाभावरूप निरतिशय सुखरूप शान्त क्षेमकर शिवरूप धनरूप वृद्धि-ह्रास से रहित अविनश्वर ज्ञानरूप दर्शनरूप पुनजन्म रहित और एकान्त अधिष्ठानरूप है।

**संसारी जीव**

ससारी जीव से तात्पय उन जीवों से है जो अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त नहीं हुए हैं कर्मफल भोगने के लिए परतन्त्र हैं तथा शरीर से युक्त हैं। मुक्त आत्माओं से ससारी आत्मा सख्या की दृष्टि से अनन्तानन्त गुनी अधिक है। ग्रन्थ म यद्यपि ससारी जीवो के शरीरो के प्रकारों का वणन नहीं मिलता है तथापि कुछ सकेत अवश्य मिलते हैं।

उत्तराध्ययन म संसारी जीवो के एकाधिक प्रकार से विभाजन मिलते हैं। प्रधान रूप से ससारी जीव दो प्रकार के हैं—त्रस और स्थावर। जिनमें गमन करने की क्षमता का अभाव ह वे स्थावर हैं और जिनमें चलने की क्षमता है वे त्रस हैं।

**स्थावर जीव**

इनके तीन भेद हैं—पथ्वी जल और वनस्पति। कही कहीं पाँच विभाग भी बताये गये हैं—पथ्वी जल तेजस्काय वायुकाय और वनस्पति। अग्नि और वायु इन दो को गतिशील होने से अपेक्षापूवक त्रस भी कहा गया है। उत्तराध्ययन में बहुत स्थलों पर छः काय के जीवों का उल्लेख किया गया है जिसमें पाँच स्थावर और एक

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र ३६।६६।

२ तओ ओरालिय कम्माइ च सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता ।

वही २९।७४।

३ ससारत्था उजे जीवा दुविहाते वियाहिया।

वही ३६।६८।

४ पुढवी आउजीवा य तहेव य वणस्सई।
इच्चेय थावरातिविहातेसिं भेदसुणेहमे॥

वही ३६।६९।

५ वही।

६ पुढवी आउक्काए तेऊवाऊवणस्सइतसाण।

पडिलेहणआउत्तो छण्ह आराहओ होइ॥

वही २६।३ ३१।

त्रस का भेद लिया गया है। इससे स्पष्ट है कि एकेन्द्रिय-सम्बन्धी स्थावर के पाँच भेद ही उपयुक्त हैं जो निम्न हैं—

१ पृथ्वीकायिक जीव

जिनका पृथ्वी ही शरीर है उन्हें पृथ्वीकायिक जीव कहते हैं। इनके दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर (स्थूल)। सूक्ष्म और बादर के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। बादर पर्याप्त के प्रथमतः दो भेद हैं—सुकोमल और कठिन। पुनः सुकोमल पृथ्वी के ७ और कठिन पृथ्वी के ३६ भेद बताये गये हैं। मृदु पृथ्वी के ७ प्रकार हैं। इसी प्रकार कठिन पृथ्वी के ३६ भेद बताये गये हैं।

२ अप्कायिक जीव

ऐसे जीव जिनका शरीर ही जल है अप्कायिक कहे जाते हैं। ग्रन्थ में इनके

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र ३६।३ ३१।

२ दुविहा पुढवी जीवा उ सुहुमा बायरा तहा।
पज्जत्तमपज्जत्ता एवमेए दुहा पुणो॥
वही ३६।७ ।

३ बायरा जे उ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया।
सण्हा खरा य बोद्धव्वा सण्हा सत्त विहा तहिं॥
वही ३६।७१।

४ किण्हा नीला य रुहिरा य हालिद्दा सुक्किला तहा।
पण्डु-पणगमट्टिया खरा छत्तीसई विहा॥
वही ३६।७२।

खरा छत्तीसईविहा॥
पुढवी य सक्करा वालुया य उवले सिला य लोणूसे।
अय-तम्ब-तउय-सीसगरुप्प-सुवण्णे य वइरे य॥

चन्दण-गेरुय-हंसगब्भपुलए सोगन्धिए य बोद्धव्वे।
चन्दप्पह-वेरुलिए जलकन्ते सूरकन्ते य॥

वही ३६।७२–७६।

चार भेद बताये गये हैं यथा—सूक्ष्म बादर पर्याप्त और अपर्याप्त। बादर पर्याप्त जीव के पाँच भेदों का उल्लेख किया गया है।

३ वनस्पतिकायिक जीव

वृक्ष पौधे लतायें आदि ही जिनके शरीर हैं उन्हें वनस्पतिकायिक जीव कहते हैं। पृथिवी के भेदों की तरह इसके भी सूक्ष्म बादर पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार भेद बताये गये है। बादर-पर्याप्त-वनस्पतिकाय के साधारण शरीरवाली वनस्पति और दूसरी प्रत्येक शरीरवाली वनस्पति ऐसे दो भेद किये गये हैं। साधारण और प्रत्येक के भी प्रकारों का उल्लेख है।

४ अग्निकायिक जीव

ऐसे जीव जिनका शरीर ही अग्नि है अग्नि से पृथक नहीं हो सकते। पृथिवी

---

१ दुविहा आउजीवा उसुहुमा बायरा तहा।
पज्जन्तमपज्जन्ता एवमेए दुहा पुणो॥
उत्तराध्ययनसूत्र ३६।८४।

२ बायरा जे उ पज्जन्ता पचहा त पकित्तिया।
सुद्धोदए य उस्से हरतणमहिया हिमे॥
वही ३६।८५।

३ दुविहा वणस्सई जीवा सुहुमा बायरा तहा।
पज्ज-समपज्जन्ता एवमेए दुहा पुणो॥
वही ३६।९२।

४ बायराजे उ पज्जत्ता दुविहा ते वियाहिया।
साहारणसरीराय पत्तेगा य तहे व य॥
वही ३६।९३।

५ साहारणसरीरा उणगहा ते पकित्तिया।
॥
वही ३६।९६–९९।

मुसुण्ढी य हलिद्दाय उणगहा एवमायओ॥
पत्तेग सरीरा उणेगहा ते पकित्तिया।

हरिय काया य बोद्धव्वा पत्तया इति आहिया॥
वही ३६।९४ ९५।

की तरह इसके भी चार भेद हं । उनम से बादर पर्याप्त अग्नि अनेक प्रकार से वणन की गयी है । अग्निकाय के अनेक भेद बताय गये है ।

५ वायुकायिक जीव

ऐसे जीव जिनका शरीर ही वायु ह वायु से पथक नही हो सकते । वायुकाय के भी चार भेद हैं । बादर पर्याप्त वायु के पाँच भद हैं ।

इस तरह सक्षप से बादर ( स्थल ) एकेन्द्रिय स्थावर जीवो का विभाजन ग्रन्थ में किया गया है । इनकी आयु ( भवस्थिति ) कम-से कम अन्तमहूर्त एक समय से लेकर ४८ मिनट तक की समय ह तथा अधिक से अधिक पथिवीकायिक की २२ हजार वर्ष अप्काय की ७ हजार वष वनस्पतिकाय की १ हजार वष अग्निकाय ( तेजर काय ) की तीन दिन रात और वायुकाय की तीन हजार वष की है । इस आयु के पूर्ण होने के बाद ये जीव नियम से एक शरीर छोडकर दूसरा शरीर धारण कर लेते हैं ।

त्रस जीव

दो इन्द्रियो से लेकर पाँच इन्द्रियोवाले जीव त्रस कहलाते हैं । त्रस जीवो के चार भेद हैं ।

---

१ दविहा तेउजीवा उ सुहुमा बायरा तहा ।
पज्ज त्तमपज्जत्ता एवमेए दहा पुणो ॥ उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१ ८ ।

२ बायरा जेउ प ज्जत्ता णगहा ते वियाहिया ।
इगाले मुम्मुर अगी अच्चि जाला तहव य ॥
उक्का वि ज य बोद्धव्वाठोगहा एवमायओ ।
एग विहमणाणत्ता सहुमा ते वियाहिया ॥
वही ३६।१ ९ ११ ।

३ दुविहा वाउजीवा उ सुहुमा बायरा तहा ।
प ज्ज-त्तमपज्जन्ता एवमए दुहा पुणो ॥
वही ३६।११७ ।

४ बायराजे उ पज्जत्ता पचहा त पकित्तिया ।
उक्कलिया-मण्डलिया घण गुजा सुद्धवायाय ॥
सवटठगवाते य डणेगविहा एवमायओ ॥
वही ३६।११८ ११९ ।

५ वही ३६।८ तथा देखिए वही ३६।८८ १ २ ११३ १२२ ।

६ ओराला तसा जे उ चउहा ते पकित्तिया ।
बेइन्दिय-तेइन्दिय-चउरो-पचिन्दिया चेव ॥ वही ३६।१२६ ।

१ द्वीन्द्रिय जीव

जिनमें स्पर्शन और रसना दो ही इन्द्रियाँ हों वे द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं। इनके पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद किये गये हैं। इसके अतिरिक्त भी इनके अनेक भेद ग्रन्थ में दिखाई देते हैं।

२ त्रीन्द्रिय जीव

स्पर्शन रसना और घ्राण इन तीन इन्द्रियों से युक्त जीव त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। इसके भी पर्याप्त और अपर्याप्त दो भेद हैं। त्रीन्द्रिय जीवो के जितने उपभेद हैं उनके बारे में ग्रन्थ में बताया गया है।

३ चतुरिन्द्रिय जीव

स्पर्शन रसना घ्राण और चक्षु इन चार इन्द्रियो से युक्त जीव चतुरिन्द्रिय जीव कहलाते हैं। ये जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। इनके उपभेदो के बारे म भी ग्रन्थ म उल्लेख किया गया है।

---

१ बेइन्दिया उजे जीवा दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता तेसि भेए सुणेह मे॥
उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१२७।

२ किमिणो सोमगला चेव अलसा माइवाहया।

इइ बेइंदिया एए णेगहा एवमायओ॥
वही ३६।१२८–१३ ।

३ तेइन्दिया उजे जीवा दुविहा ते पकित्तिया।
पज्जत्तमपज्जत्ता तेसिं भेए सुणेह मे॥
वही ३६।१३६।

४ कुन्थु पिवीलि-उड्डसा उक्कलुद्देहिया तहा।

इन्द गोवगमाईया णेगहा एवमायओ॥
वही ३६।१३७–१३९।

५ चउरिन्दिया उजे जीवा तेसि भेए सुणे हमे।
वही ३६।१४५।

६ अन्धिया पोत्तिया चेव मच्छियामसगा तहा।

इइ चउरिन्दिया एए णेगहा एवमायओ॥ वही ३६।१४६–१४९।

उपर्युक्त तीना प्रकार के जीव स्थल होने से लोक के एकदेश मे रहते हैं। ये अनादिकाल से चले आ रहे ह और अनन्त काल तक रहगे परन्तु किसी जीवविशेष की स्थिति की अपेक्षा सादि और सान्त हैं। इन सभी की स्थिति कम-से-कम अन्त मुहूर्त है तथा अधिक-से अधिक द्वीन्द्रिय की १२ वष त्रीन्द्रिय की ४९ दिन चतुरिन्द्रिय की ६ मास है। स्पादि के तारतम्य से इनके हजारों भेद हो सकते है। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के सभी जीव तिर्यञ्चों की ही श्रेणी म आते हैं।

**४ पञ्चेन्द्रिय जीव**

स्पशन रसना घ्राण चक्ष और कण इन पाँच इन्द्रियों से युक्त जीव पञ्चेन्द्रिय कहलाते है। इनके मुख्यत चार प्रकार ह जो निम्नलिखित हैं—

---

१ लोगे गदेसे ते सव्वे न सव्वत्थ वियाहिया ॥
उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१३ ।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीव के लिए देखिए।
वही ३६।१३९ १४९।

२ सतइ पप्पडणाइया अप ज्जवसिया विय।
ठिइ पडुच्च साईया सप ज्जवसिया विय ॥
वही ३६।१३१।
इसी प्रकार त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीव के लिए देखिए।
वही ३६।१४ १५ ।

३ वासाइ बारसे व उ उक्कोसेण वियाहिया।
बेइन्दिय आउठिई अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥
वही ३६।१३२।
एगूणपण्ण होरत्ता उक्को सेण वियाहिया।
तेइन्दिय आउठिई अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥
वही ३६।१४१।
छच्चेव य मासा उ उक्कोसेण वियाहिया।
चउरिन्दिय आउठिई अन्तोमुहुत्त जहन्निया ॥
वही ३६।१५१।

४ वही ३६।१३५।

५ पंचिदिया उ जे जीवा चउव्विहा ते वियाहिया।
नेरइया तिरिक्खा य मणया देवा य आहिया ॥
वही ३६।१५५।

१ नारकी जीव

अधोलोक में निवास करनेवाले जीव नारकी कहे जाते हैं। अधोलोक में सात नरक-भूमियाँ हैं जिनका कि ग्रन्थ में निर्देश किया गया है। इनकी अधिकतम आयु ऊपर से नीचे के नरकों में क्रमश १ सागर ३ सागर ७ सागर १ सागर १७ सागर २२ सागर और ३३ सागर है। निम्नतम आयु प्रथम नरक की १ हजार वर्ष तथा अन्य नरकों में पूव २ के नरकों की उत्कृष्ट आयु ही आगे २ के नरकों की निम्नतम आयु है।

२ तिर्यञ्च

एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रियवाले जीव तथा पंच इन्द्रियों में पशु-पक्षी आदि तिर्यञ्च कहलाते हैं। तियञ्च अविसमूर्च्छिम और गर्भज भेद से दो प्रकार के हैं। दोनों के पुन जल स्थल और आकाश में चलने की शक्ति के भेद से तीन भेद किये गये हैं।

( क ) जलचर तिर्यञ्च

जल में चलने फिरने के कारण इन्हें जलचर कहते हैं। ग्रन्थ में इनके पाँच भेद बताये गये हैं।

( ख ) स्थलचर

स्थल ( भूमि ) में चलने के कारण इन्हें स्थलचर कहते हैं। इनकी मुख्य दो

---

१ नेरइया सत्तविहा सत्तहापरिकित्तिया ॥

उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१५६ १५७।

२ वही ३६।१६ –१६६।

३ पंचिन्दिय तिरिक्खाओ दुविहा ते वियाहिया।
सम्मुच्छिमतिरिक्खाओ गब्भवक्कन्तिया तहा ॥

वही ३६।१७ ।

४ दुविहावि ते भवे तिविहा जलयरा थलयरा तहा।
नहयरा य बोद्धव्वा तेसिं भेए सुणेह मे ॥

वही ३६।१७१।

५ मच्छा य कच्छभा य गाहा य मगरा तहा।
सुसुमारा य बोद्धव्वा पंचहा जलयराहिया ॥

वही ३६।१७२।

जातियाँ हैं—चतुष्पद और परिसर्प। चतुष्पद के चार प्रकार बताये गये हैं। इसी प्रकार परिसर्प की मख्य दो जातियाँ हैं।

( ग ) नभचर

आकाश में स्वच्छन्द विहार करने मे समर्थ जीव नभचर कहलाते हैं। ऐसे जीव मख्यतया चार प्रकार के हैं।

इस तरह पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च मख्यत तीन प्रकार के हैं। इनकी आयु निम्नतम अन्तर्मुहूर्त तथा अधिकतम १ करोड पूर्व जलचर की ३ पल्योपम स्थलचर की तथा असख्यय भाग पल्योपम की है। शेष क्षेत्र एव कालकृत वर्णन द्वीन्द्रियादि की तरह है।

---

१ चउप्पया य परिसप्पा दविहा थलयरा भवे॥

उत्तराध्ययनसूत्र ३६।१७९।

२ एगखुरा दखुरा चेव गण्डीपय–सणप्पया।
हयमाइ–गोणमाइ गयमाइ सीहमाइणो॥

वही ३६।१८०।

३ भुओ रगपरिसप्पा य परिसप्पा दुविहा भवे।
गोहाई अहिमाई य एक्केक्का हणे गहा भवे॥

वही ३६।१८१।

४ चम्मे उ लोम पक्खी य तइया समुग्गपक्खिया।
वियपक्खी य बोद्धव्वा पक्खिणो य चउव्विहा॥

वही ३६।१८८।

५ ७ लाख ५६ हजार करोड वर्षों का एक पूर्व होता है।

वही आत्माराम टीका प १७४५।

६ एगा य पुव्व कोडीओ उक्कोसेण वियाहिया।
आउटिठई जलयराणं अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥ वही ३६।१७५
पलिओवमाउ तिण्णि उ उक्कोसेण वियाहिया।
आउटिठई थल यराण अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥ वही ३६।१८४
पलि ओवमस्स भागो असखेज्जइमो भवे।
आउटिठई खहयराण अन्तोमुहुत्त जहन्निया॥

वही ३६।१९१।

१ मनुष्य

संसारी जीवों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है और चार दुर्लभ अंगों की प्राप्ति में एक मनुष्य-जन्म भी है।[1] मनुष्य पर्याय की प्राप्ति पुण्यकर्म-विशेष से होती है। उत्तराध्ययन में उत्पत्ति-स्थान की दृष्टि से सम्मूर्च्छित और गर्भव्युत्क्रान्तिक ( गर्भज ) मनुष्य के ये दो भेद किये गये हैं। गर्भ से उत्पन्न होनेवाले मनुष्य तीन प्रकार के हैं—कर्मभूमिक अकर्मभूमिक और अन्तरद्वीपक। ग्रन्थ में इनके संख्यागत भेदों का १५ ३ और २८ इस प्रकार क्रमपूर्वक वर्णन किया गया है। इनकी कम-से-कम आयु अन्तर्मुहूर्त तथा अधिक-से अधिक तीन पल्योपम बतलायी गयी है। ग्रन्थ में एक जगह इनकी आयु सौ वर्ष से कम मिलती है।

---

१ चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि य वीरियं॥

उत्तराध्ययनसूत्र ३।१।

तथा— दुल्लहे खलु माणसे भवे चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।

वही ४।४१६।

२ कम्माणं तु पहाणाए आणपुव्वी कयाइ उ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं॥

वही ३।७ ६ २ ३।६ २ २।११ २२।३८।

३ मणुया दुविह भेया उ ते मे कित्तयओ सुण।
संमुच्छिमा य मणुया गब्भवक्कन्तिया तहा॥

वही ३६।१९५।

४ गब्भवक्कंतिया जे उ तिविहा ते वियाहिया।
अकम्म-कम्मभूमा य अन्तरद्दीवया तहा॥

वही ३६।१९६।

५ पन्नरस-तीसइ-विहा भेया अट्ठवीसइं।
संखा उ कमसो तेसिं इइ एसा वियाहिया॥

वही ३६।१९७।

६ पलि ओवमाइ तिण्णि उ उक्कोसेण वियाहिया।
आउठिई मणुयाणं अन्तोमुहुत्तं जहन्निया॥

वही ३६।२ ।

७ जाणि जीयन्ति दुम्मेहा ऊणे वाससयाउए॥

वही ७।१३।

४ देव जीव

पुण्य कर्मों का फल भोगने के लिए जीव देव पर्याय को प्राप्त करता है। भौमय व्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक ये चार प्रकार के देव कहे जाते हैं। इनके अन्य अवान्तर प्रमुख २५ भेद हैं। परन्तु इकतीसवें अध्ययन में २४ प्रकार के देवों की सख्या का उल्लेख है।

१ भवनपति या भवनवासी देव

भवनो में उत्पन्न होनवाले देवो को भवनपति या भवनवासी कहते हैं। इनकी दस जातियाँ हैं।

२ व्यन्तरदेव

जिनके उत्कष और अपकषमय रूप विशेष हैं तथा गिरि कन्दरा और वृक्ष के विवरादि में जिनका निवास है उनको व्यन्तरदेव कहत हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में इनकी सख्या आठ बतायी गयी है।

---

१ चीरस्स पस्स चीरस्स सव्वधम्माणवत्तिणो।
चिच्चा अधम्म धम्मिटठे देवेसु उववज्जई॥

वही ७।२९ तथा २१ २६।

२ देवा चउव्विहा वुत्ता ते मे कित्तयओ सुण।
भोमिज्ज-वाणम तर-जोइस वेमाणिया तहा॥

वही ३६।२ ४ तथा ३४।५१।

३ दसहा उभवणवासी अटठहा वण चारिणो।
पचविहा जोइसिया दुविहा वेमाणिया तहा॥

वही ३६।२ ५।

४ स्वाहिएसु सुरेसू अ।

वही ३१।१६।

५ असुरा नागसु वण्णा विज्ज अग्गी य आहिया।
दीवो दहि दिसा वाया थणिया भवणवासिणो॥

वही ३६।२ ५।

६ पिसायभया जक्खा य रक्खसा किन्नराकिंपुरिसा।
महोरगा य गधव्वा अटठविहा वाणमतरा॥

वही ३६।२ ६।

**३ ज्योतिषीदेव**

जो तीनों लोक म प्रकाश करनेवाले विमानों में निवास करते हैं उनको ज्योतिषी कहा गया है। इनके पाँच भेद बताये गये हैं।

**४ वैमानिकदेव**

जो विशेष रूप से माननीय हैं तथा किये हुए शुभकर्म के फल को विमानों में उत्पन्न होकर यथेच्छ भोगते हैं उनका नाम वैमानिक है। दो प्रकार के वैमानिक देव कहे गये हैं —कल्पोत्पन्न और कल्पतीत। कल्पवासी देवों के १२ भेद गिनाये गये हैं। कल्पतीत देव दो प्रकार के हैं —ग्रैवेयक और अनुत्तर। ग्रैवेयक की सख्या ९ है जो तीन त्रिकों म विभक्त हैं जब कि अनुत्तर देव पाँच प्रकार के ह।

---

१ चदासूरा य नक्खत्ता गहा तारागणातहा।
ठियाचि चारिणो चेव पचहा जोइसालया॥

उत्तराध्ययनसूत्र ३६।२ ७।

२ वेमाणिया उज देवा दुविहा ते वियाहिया।
कप्पोवगा य वोधव्वा कप्पाईया तहेव य॥

वही ३६।२ ८।

३ कप्पोवगा बारसहा सोहम्मीसाणगा तहा।
सण कुमार माहिंदा बम्भलोगा य लतगा॥
महासुक्का सहस्सारा आणया पाणया तहा।
आरणा अच्चुया चेव इइ कप्पोवगा सुरा॥

वही ३६।२ –२१ ।

४ कप्पाईया उजे देवा दुविहा ते वियाहिया।
गविज्जा णत्तरा चेव ॥

वही ३६।२११।

५ गेविज्जा नव विहातहिं।
हेटिठमा-हेट्ठिमा चेव हेटिठमा-मज्झिमा तहा।
हेटिठमा-उवरिमा चेव मज्झिमा-हेट्ठिमा तहा॥
मज्झिमा-मज्झिमा चेव मज्झिमा-उवरिमा तहा।
उवरिमा-हेटिठमा चेव उवरिमा-मज्झिमा तहा॥
उवरिमा-उवरिमा चेव इय गेविज्जगा सुरा॥

वही ३६।२१२–२१५।

६ वही ३६।२१५ २१६।

## अजीव ( अचेतन )

जीव के स्वरूप के विपरीत लक्षणवाला यानी जिसमें चेतना नहीं है और जो सुख दुःख की अनुभति नही कर सकता वह अजीव है । अजीव को जड व अचेतन भी कहते हैं । रूपी और अरूपी भेद से अजीव-द्रव्य दो प्रकार का है । इन दोनों प्रकारो में रूपी द्रव्य का एक ही भेद है पद्गल । अरूपी अचेतन द्रव्य के चार भेद है—धर्म अधम आकाश और काल । इस तरह कुल मिलाकर अचेतन द्रव्य के पाँच भेद हैं । इन पाँचो के जो अवान्तर भेद हैं वे सब इनके ही अवान्तर रूप है । रूपादि के अवान्तर भेद निम्नलिखित हैं । इस प्रकार रूपादि के इन पाँचो भदो में परस्पर सम्बन्ध भी है । कोई भी रूपी द्रव्य ऐसा नही जिसम कोई न कोई रस-स्पर्श गन्ध और आकार न हो अर्थात् पाँचो की स्थिति सवत्र रहती ह ।

**१ रूपी अचेतन द्रव्य-पुद्गल**

रूपी अचेतन द्रव्य से तात्पय ह जिसमें रूप रस गन्ध स्पश और आकार पाया जावे । जो सुना जा सके खाया जा सके तोडा जा सके देखा जा सके सब रूपी

---

१ रुविणो चव रुवी य अजीवा दुविहा भवे ।

उत्तराध्ययनसूत्र ३६।४ २४९ ।

२ धम्मो अहम्मो आगास कालो पग्गल जन्तवो ।
एस लोगात्तिपन्नतो जिर्णाहि वरद सिहि ॥

वही २८।७ ।

३ अरुवी दसहा वत्ता रुविणो वि चउव्विहा ॥
धम्मत्थिकाए तद्दसे तप्पएसे य आहिए ।
अहम्मे तस्स देसेय तप्पए से य आहिए ॥
आगासे तस्स देसे य तप्पएसे य आहिए ।
अद्धा समए चेव अरुवी दसहा भवे ॥

वही ३६।४–६ ।

खधा य खन्ध देसा य तप्पएसा तहेव य ।
परमाणणो य बोद्धव्वा रुविणो य च उव्विहा ॥

वही ३६।१ ।

४ वण्णओ परिणयाजे उ पचहा ते पकित्तिया ।

परिमण्डला य वट्ठा तसा चउर समायया ॥

वही ३६।१६–२१ ।

अचेतन द्रव्य हैं। ग्रन्थ में पुद्गल का लक्षण बताते हुए शब्द अन्धकार उद्योत प्रभा छाया आतप वर्ण रस गन्ध और स्पर्श इन दस नामों को बतलाया गया है। जिसका तात्पर्य है जिसमें इनमें से कोई भी एक गुण हो वह सब पुद्गल है। ग्रन्थ में पुद्गल में विभाजित किया गया है। सक्षेप म पुद्गल द्रव्य के स्कन्ध और परमाणु ये दो ही भेद हैं क्योकि देश और प्रदेश इन दोनों का स्कन्ध में ही अन्तर्भाव हो जाता है।

२ अरूपी अचेतन द्रव्य

रूपादि से रहित अचेतन द्रव्य प्रधानत चार प्रकार का ह और अवान्तर भेदो के साथ ग्रन्थ में १ प्रकार का बतलाया गया है। प्रमुख चार भेदों के नाम हैं— धर्म अधर्म आकाश और वकाल। इनमें से काल द्रव्य को छोडकर शेष तीन को पदगल की तरह स्कन्ध देश और प्रदेश के भेद से तीन प्रकार का बतलाया गया ह। परमाण रूप न होने से इसका चौथा भेद नही किया गया है क्योंकि स्कन्ध देश और प्रदेश के तीन भद बहुप्रदेशी स्कन्ध में ही सम्भव है। धर्मादि के परमाणु रूप न होने से ग्रन्थ म धर्मादि को सख्या की अपेक्षा एक एक अखण्ड द्रव्य बतलाया गया है और कालद्रव्य को परमाणुरूप होन से अनक सख्यावाला बतलाया गया है।

ये चारो द्रव्य अरूपी होने से भावात्मक तथा शक्तिरूप हैं। इन्हें हम अपनी आँखो से देख नही सकते मात्र कल्पना कर सकते हैं। इनका न तो कभी विनाश होता है और न उत्पत्ति। इसलिए प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त परन्तु किसी अमुक कार्य की अपेक्षा से वह सादि-सान्त है। इन धर्मादि अरूपी अचेतन द्रव्यो का स्वरूप निम्नलिखित है—

१ धर्मद्रव्य

जीव और पुदगल की गतिरूप क्रिया में सहायता पहुचानेवाला द्रव्य धर्म है।

---

१ सदद न्धयार-उज्जोओ—पुग्गलाण तुलक्खण ॥
उत्तराध्ययनसूत्र २८।१२।

२ वही ३६।१ ।

३ वही ३६।४–६ १ ।

४ वही २८।८।

५ धम्माधम्मा गासा तिन्नि वि एए अणाइया।
अपज्जवसिया चेव सव्वद्ध तु वियाहिया ॥
समए वि सन्तइं पप्प एवमेव वियाहिए।
आएस पप्प साईए सपज्जवसिए–वि य ॥
वही ३६।८ ९।

अत उसको गतिलक्षण कहते हैं।[1] वास्तव म गति चेतन और पुदगल मे ही है। जिस प्रकार मत्स्य के गमनागमन म जल सहायक होता है इसी प्रकार जीव और पुद्गल द्रव्य भी धमद्रव्य के बिना गमन नही कर सकते।

२ अधर्मद्रव्य

जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायता देनेवाला अधमद्रव्य है अत स्थिति को अधर्म का लक्षण बतलाया गया ह।[2] जैसे धूप म चलनेवाले पथिक को विश्राम के लिए वृक्ष की सघन छाया सहायक होती है उसी प्रकार जीव और पुदगल की स्थिति में सहायक होनवाला अधमद्रव्य है। यह धमद्रव्य से ठीक विपरीत गुणवाला है।[3] धमद्रव्य गमन म सहायक ह तो अधमद्रव्य ठहरने में।

३ आकाश

समस्त पदार्थों का आधारभत आकाशद्रव्य है और सबको अवकाश देना उसका लक्षण ह।[4] आकाश सबका आधार और शेष द्रव्य उसके आश्रय हैं। आकाश कोई ठोस द्रव्य नही ह अपितु खाली स्थान ही आकाश ह। यद्यपि बौद्ध-दशन म भी आकाशद्रव्य की कल्पना की गयी ह परन्तु प्रकृत ग्रन्थ में स्वीकृत आकाशद्रव्य से भिन्नता है। बौद्ध-दशन म आकाश का स्वरूप आवरणाभाव किया गया ह तथा उसे असस्कृत धर्मों म गिनाया गया ह[5] परन्तु उत्तराध्ययन में आकाश को अभावात्मक स्वीकार नही किया गया है।

ग्रन्थ में आकाश के यद्यपि धमद्रव्य की ही तरह स्कन्ध देश और प्रदेशरूप तीन भद किये गये हैं परन्तु उसम अन्य प्रकार से भी दो भेद मिलत ह[6] लोकाकाश और अलोकाकाश। जहाँ पुण्य और पाप का फल देखा जाता ह वह लोक है और लोक का जो आकाश ह वह लोकाकाश ह। जिस आकाश म यह नही होता वह अलोकाकाश

---

१ गइलक्खणो उ धम्मा।

उत्तराध्ययनसूत्र २८।९।

२ अहम्मो ठाणलक्खणो।

वही २८।९।

३ जैनधम-दशन मोहनलाल मेहता पृ २ ७।

४ भायण सव्वदव्वाणं नह ओगाह लक्खण।

उत्तराध्ययनसूत्र २८।९।

५ बौद्ध-दशन-मीमासा बलदेव उपाध्याय पृ २३९।

६ उत्तराध्ययनसूत्र ३६।७।

है। वैसे सारा आकाश एक है अखण्ड है सर्वव्यापी है। उसमें कोई भेद नहीं हो सकता। धर्म और अधर्मद्रव्य के प्रतिबन्धक होने से अलोकाकाश में अन्य द्रव्यों की सत्ता नहीं है। आकाश को सीमारहित होने के कारण अनन्त माना गया है। आधुनिक दर्शनशास्त्र के अनुसार धर्म अधर्म और आकाश इन तीन द्रव्यो की शक्तियाँ आकाश में ही मानी गयी है।

४ काल ( समय )

पदार्थ की क्रियाओं के परिवर्तन से समय की जो गणना की जाती है उसे वर्तना कहते हैं और वर्तना काल का लक्षण है। जैन-साहित्य में काल के दो भेद किये गये हैं—( १ ) निश्चय काल और ( २ ) व्यवहार काल। ग्रन्थ में व्यवहार काल की ही दृष्टि से काल को अद्धा समय भी कहा गया है। काल के जितने भी भेद सम्भव हैं वे सब व्यवहार की दृष्टि से ही हैं।

इस तरह इन पाँच प्रकार के अचेतन द्रव्यो में पुद्गल द्रव्य को छोडकर शेष चार भावात्मक निष्क्रिय और अरूपी द्रव्य है। पुद्गल ही एक ऐसा द्रव्य है जिसे हम देख सकते हैं स्पर्श कर सकते हैं। इसका ही जीव के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है और जीवो के विभाजन का आधार है। अत प्रकृत में विशेष उपयोगी पुद्गल द्रव्य ही है।

३ ४ पुण्य-पाप

कर्म दो प्रकार के होते हैं—शुभ और अशुभ। शुभ कर्म का दूसरा नाम पुण्य और अशुभ कर्म का दूसरा नाम पाप है। इस प्रकार पुण्य एव पाप शुभ एव अशुभ कर्मों के अलावा अन्य कुछ नही है। शुभ और अशुभ इन दोनो प्रकार के कर्मों का सम्बन्ध प्राणी के शरीर ( सचेतन ) से है अत पुण्य और पाप इन दोनों का सम्बन्ध भी उसी शरीर से है। जब यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति पुण्यवान् है तो उस

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २८।८।

२ इक्का उ आगाससमा अणन्तिया।

वही ९।४८।

३ भारतीय दर्शन डा राधाकृष्णन् पृ ३१६।

४ वत्तणा लक्खणो कालो।

उत्तराध्ययनसूत्र २८।१०।

५ भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान डॉ हीरालाल जैन पृ २२२।

६ उत्तराध्ययनसूत्र ३६।४–६।

७ देखिए जैनधर्म-दर्शन पृ ४८–८३।

व्यक्ति का शरीर शुभ कर्मोदययुक्त है अर्थात् वह व्यक्ति सब प्रकार से सुखी है। इसी तरह जो व्यक्ति पापी होता ह वह सब प्रकार से दु खी होता है। इस प्रकार पुण्य और पाप का फल सुख और दुःख है। सुख एव दु ख यक्ति के व्यक्तित्व अर्थात् शारीरिक एव मानसिक गठन पर अवलम्बित है जिसका निर्माण पुण्य और पाप अर्थात् शुभ और अशुभ कर्मों के आधार से होता ह।

पण्य और पाप दोनो बन्धनरूप हैं अत मोक्ष-साधना के लिए हेय माने गये हैं। पारमार्थिक दृष्टि से पुण्य और पाप दोनो म भेद नही किया जा सकता क्योंकि दोनो ही अन्ततोगत्वा बन्धन के हेतु है इनका भेद केवल यावहारिक स्तर पर है। दोनो का क्षय करन से ही मुक्ति मिलती है।

पण्य आध्यात्मिक साधना म सहायक तत्त्व ह। शुभ कम पदगल का नाम पण्य है। पण्य के कारण अनेक ह। यथा—दीन दु खी पर करुणा करना उनकी सेवा शुश्रषा करना दान देना आदि अनेक प्रकार से पण्योपाजन किया जाता ह। जैनधम में मुनि सुशीलकुमार ने पण्य की उपमा वायु से की ह। इसी प्रकार जैन आचार्यों के अनसार जिस विचार एव आचार से अपना और दूसरो का अहित हो वह पाप है। विचारको के अनुसार पापकम की उत्पत्ति के स्थान तीन हैं——राग द्वेष और मोह। लेकिन उत्तरा ययन म पापकम की उ पत्ति के स्थान राग और द्वेष ये दो ही मान गय हैं। इस प्रकार पापकर्मों का आचरण करनेवाले सभी जीव इस लोक तथा परलोक म दु ख को प्राप्त होते है। इसलिए पापकर्मों के बदले पण्य (शुभ) कर्मों का ही आचरण करना चाहिए। उत्तरा ययनसूत्र के १९व अध्ययन म मृगापुत्र

१ उत्तराध्ययन २।१४।

२ दुविह खवेऊण य पण्णपाव निरगण सव्वओ विप्पमुक्के।
तरित्ता समदद व महाभवोघ समुदपाले अपणागम गए॥
वही २१।२४।

३ जनधम मुनि सुशीलकुमार प ८४।

४ रागद्दोसे य दो पावे पावकम्म पव-त्तेण।
उत्तराध्ययनसूत्र ३१।३।

५ एव पयापेच्च इह च लोए
कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि॥
वही ४।३।

६ हुयासण जलन्तम्मि चियासुमहिसो विव।
दड्ढो पक्को य अवसो पावकम्मेहि पाविओ॥ वही १९।५७।

अपने उपभोग में आई हुई नरक-सम्बन्धी यातना का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार समुद्रपालीय नामक इक्कीसवें अध्ययन में चोर की अत्यन्त शोचनीय दशा को देखकर वैराग्य उत्पन्न समुद्रपाल कहने लगता है कि अशुभ कर्मों के आचरण का ऐसा ही कटु परिणाम होता है। साराश यह है कि जो अशुभ कर्म हैं उनका अन्तिम फल अशुभ अर्थात् दु खरूप ही होगा।

भारतीय चिन्तकों की दृष्टि से पुण्य और पाप-सम्बन्धी समग्र चिन्तन का सार इस कथन में समाविष्ट है कि दूसरो की भलाई करना पुण्य और कष्ट देना पाप है जिसके कथन से पापो का विच्छेद हो जावे उसे प्रायश्चित्त कहते हैं इसलिए आलोचना आदि प्रायश्चित्त से पापो की विशुद्धि होती है और पापों की विशुद्धि से इस जीव का चारित्र अतिचार से रहित हो जाता है तथा विषयों से विरक्त रहनेवाला जीव नये पापकर्मों का उपार्जन नही करता और पूर्व म सचित किए हुओं का नाश कर देता है। इस प्रकार पूर्वसंचित कर्मों का नाश और नवीन कर्मों के बन्ध का अभाव हो जाने से उस जीव को जन्म मरण की परम्परा म नही आना पडता।

५ आस्रव तत्त्व

पुण्य-पापरूप कर्म आने को आस्रव कहते हैं। परन्तु आस्रव से मुख्यतया पापास्रव को समझा जाता है। इसीलिए उत्तराध्ययन में पापास्रव के पाँच भेदों का सकेत किया गया है यद्यपि उनके नामों का उल्लेख नही है। उपर्युक्त पाँच प्रमुख आस्रव द्वार या बन्ध हेतुओ को पुन अनेक भेद प्रभेदो में वर्गीकृत किया गया है जिनका केवल नामोल्लेख करना पर्याप्त है। आत्मा में कर्म के आने के द्वाररूप आस्रव के मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय और योग ये पाँच भेद बताये गये हैं जो कि बन्ध के कारण हैं। इन्हें आस्रव प्रत्यय भी कहते हैं।

---

१ अहो सुभाण कम्माण निज्जाण पावग इम ॥

उत्तराध्ययनसूत्र २१।९।

२ पायच्छित्त करणेण पावकम्म विसोहिं जणयइ निरइयारे यावि भवइ।

वही २९।१७।

३ विणियटठणयाएण पावकम्माण अकरणयाए अब्भुट्ठेइ।
पुव्व बद्धाण य निज्जरणयाग्त नियत्तेइ तओ पच्छा चाउरन्तं संसार कन्तारं वीइवयइ। वही २९।३३।

४ तत्त्वार्थसूत्र अ ६ सू १५।

५ पचासवप्पवत्तो। उत्तराध्ययनसूत्र ३४।२१।

६ बन्ध तत्त्व

दो पदार्थों के विशिष्ट सम्बन्ध को बन्ध कहते ह। बन्ध के दो प्रकार हैं—द्रव्य-बन्ध और भाव-बन्ध। कम पुदगलो का आ म प्रदेशो से सम्बन्ध होना द्रव्य-बन्ध है तथा जिन राग द्वष और मोह आदि विकारी भावो से कम का बन्धन होता है वे भावबन्ध हैं। जीव और कम के बन्ध मे दोनो की एक सदृश पर्याय नही होती क्योंकि जीव की पर्याय चतनरूप और पुद्गल अचतनरूप है। जीव का परिणमन चैतन्य के विकास के रूप म होता है और पुदगल का रूप रस गध और स्पश आदि के रूप में। इसके समाधान म शास्त्रकार कहते हैं कि आ मा म रहनवाले जो मिथ्यात्व आदि गण हैं वे ही इसके कर्मबन्ध के हेतु हैं। जसे आकाश के नि य होन पर भी घटाकाश और मठाकाश रूप से अ य पदार्थों के साथ उसका सम्बन्ध प्रतीत होता है उसी प्रकार मिथ्यात्वादि क कारण इसका कर्माणुओ के साथ सम्बन्ध हो जाता ह। यदि कहा जाय कि अमत आ मा के साथ मत कर्मों का सम्बन्ध कसे हुआ तो इसका उत्तर यह है कि जैसे आकाश अमत होने पर भी मत पदार्थों का भाजन-सम्बन्धी ह उसी प्रकार यह आत्मा भी कर्मों का भाजन हो सकता ह तथा जो आध्या मिक बन्ध है अर्थात् आत्मा के साथ कर्मों का बन्ध ह इसीको विद्वानो ने परिभ्रमण का हेतु माना है। सारांश यह है कि आत्मा अमूत और नित्य है। मिथ्या व आदि इसके बन्ध के कारण हैं और यह बन्ध ही ससार अर्थात् ज म मरण परम्परा का हेतु है। इससे सिद्ध होता है कि आत्मा एक स्वत त्र पदार्थ है और वह अनादि परम्परा से मिथ्यात्वादि के कारण कम का बन्ध करता है और उस बन्ध के विच्छदाथ इसे धम के आचरण की आवश्यकता ह।

आत्मा के साथ कर्मों का दूध और पानी की तरह एकमक हो जाना बन्ध है। बन्ध के कारण जीव का स्वरूप मलिन हो जाता है जिसके कारण उसे ससार म परि भ्रमण करना पडता ह। शब्द रूप रस गध और स्पश आदि विषयो में जो जीव लगे हुए हैं वे ही आत्मा में कर्मों का उपचय करते हैं। जिन आत्माओ ने इन विषयों का त्याग कर दिया है वे कर्मों से लिप्त नही होते। इस प्रकार जिन जीवों ने कर्मों का उपचय किया और जिन्होन नही किया उनके फल में अन्तर बतलाते हुए ग्रन्थ म कहा

---

१ जैनधम-दशन प १९९।

२ अज्झत्थहेउ नियम स्स बन्धो ससार हेउ च वयन्ति बन्ध॥

उत्तराध्ययनसूत्र १४।१९।

३ उत्तराध्ययनसूत्र—एक परिशीलन डॉ सुदशनलाल जैन प १४६।

गया है कि भोगों म आसक्ति रखनेवाले जीव जन्म मरण की परम्परा में फँसे रहते हैं और विषय भोगों से विरक्त जीव कर्मों के बन्धन को तोडकर मुक्त हो जाते हैं।

७ संवर

सवर शब्द सम उपसर्गपूर्वक वृ धातु से बना है। वृ धातु का अथ ह रोकना या निरोध करना। इस प्रकार सवर शब्द का अथ है आत्मा में प्रवेश करनेवाले कमवगणा के पुद्गलो को रोक देना। सामान्यत शारीरिक वाचिक एव मानसिक क्रियाओं का यथाशक्य निरोध ( रोकना ) सवर है क्योंकि क्रियायें ही आस्रव का कारण हैं। उत्तराध्ययनसूत्र म तो सवर के स्थान पर सयम को ही आस्रव निरोध का कारण कहा गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र म सवर के पाँच अग या द्वार बताय गय हैं। वस्तुत ये पुण्यास्रव हैं परन्तु फल प्राप्ति की आशा न होने पर सवररूप भी हैं। जब जीव अहिंसादि मे प्रवृत्त होकर फल प्राप्ति की कामना करता है तो ये पुण्यास्रव होकर बन्ध के कारण हो जाते हैं। जैसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती पूव भव म अहिंसा आदि पुण्य कर्मों को करके उसके फल की अभिलाषा करता है कि मैं अपन इस पुण्य कम के फल से ऐश्वय सम्पन्न राजा बन। इस प्रकार के निदानपूवक किये गय पुण्य कर्म आस्रव के कारण ह और जो निष्काम पुण्य कर्म हैं वे ही सवररूप ह। अत ग्रन्थ में कहा गया है कि कायगुप्ति से जीव सवर को प्राप्त करता है और उसके द्वारा पाप के प्रवाह को रोक

---

१ उवलेवो होइ भोगेसु अभोगा नोवलिप्पई।
भोगी भमइ ससारे अभोगी विप्पमच्चई॥
उल्लो सुक्को य दो छूढा गोलया मट्टिया मया।
दो वि आवडिया कुड्ड जो उल्लो सो तथ्य लग्गई॥
एव लग्गन्ति दुम्मेहा ज नरा काम लालसा।
विरत्ता उन लग्गन्ति जहा सुक्को उगोलओ॥
उत्तराध्ययनसूत्र २५।४१–४३।

२ सजमेण अणण्हयत्त जणयइ॥ वही २९।२७।

३ सुसंवुडा पचहिं सवरेहिं इह जीविय अणवक रवमाणा॥
वही १२।४२।

४ हत्थिणपुरम्मि चित्तादट्ठूण नरवइ महिड्ढिय।

जाणमाणो विजं धम्म कामभोगेसु मच्छिओ॥ वही १३।२८ २९।

देता है। यदि आस्रवो के निरोध करनेवाले संवरयुक्त भिक्षु के कर्मस्वरूप इष्ट-अनिष्ट आदि समस्त क्षीण हो गये ह तब तो वह सिद्ध ( मोक्ष ) गति को प्राप्त हो जाता है और यदि अभी कुछ बाकी है तो वह महान समृद्धिवाला देव बनता है। इसलिए संयमशील आत्मा को इन दो गतियो म से एक गति की प्राप्ति अवश्य होती है।

उत्तराध्ययनसूत्र म सयम के पालन पर विशेष बल दिया गया है। अत बन्ध के हेतु इन यज्ञ दानादि सकाम कर्मों म प्रवृत्त होन की अपेक्षा सयम का धारण करना ही श्रेयस्कर ह इसीम आत्मा का हित निहित ह तथा प्राणि-समुदाय का उपकार भी इसीसे साध्य ह। इसलिए हिंसादि आस्रव द्वारो का निरोध और अहिंसादि पाँच महाव्रतो का अनुष्ठान करना चाहिए।

८ निर्जरा

निर्जरा शब्द का अर्थ ह जर्जरित कर देना झाड देना अर्थात आत्मतत्त्व से कर्म पुद्गलो का अलग हो जाना निर्जरा ह। निर्जरा द्वारा पहले से आत्मा के साथ बधे हुए कर्मों का क्षय होता है। उत्तराध्ययन म कर्म को क्षय करने के मार्ग को दृष्टान्त द्वारा प्रस्तावित किया गया ह। जैसे किसी बड भारी तालाब का पानी सुखाने के लिए प्रथम उसम जल के आने के मार्गों को रोका जाता ह फिर उसम रहे हुए जल को उलीचकर बाहर फका जाता ह और शेष जल को सूर्य के ताप से सुखाया जाता ह उसी प्रकार सयमी पुरुष के भी नये पापकर्म के आन के मार्गों को व्रत आदि के द्वारा निरोध किया जाता है। फिर उसम अनेक जन्मो के संचित किये हुए पाप

---

१ कायगुत्तयाए ण संवरं जणयइ।
संवरेण कायगुत्त पुणो पावासव निरोहं करेइ॥ उत्तराध्ययनसूत्र २९।५५।

२ अहजे संवुडे भिक्खू दोण्हं अन्नयरे सिया।
सव्व-दुक्खप्पहीणे वा देवे वावि महड्ढिए॥ वही ५।२५ २८।

३ जो सहस्सं सहस्साणं मासे मासे गवं दए।
तस्सावि संजमो सेओ अदितस्स वि किंचण॥ वही ९।४०।

४ असंजमे नियत्तिं च संजमे य पवत्तणं॥ वही ३१।२।

५ जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे।
उस्सिंचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे॥
एवं तु संजयस्सावि पावकम्म निरासवे।
भवकोडी संचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जई॥

वही ३०।५ ६।

कर्मों को तप के द्वारा नष्ट किया जाता है। यहाँ पर तालाब के समान आत्मा तालाब मे भरे हुए जल के समान करोड़ों जन्मों के संचित किए हुए पापकर्म जल आने के मार्ग आस्रव हैं। उस जल के आगमन के द्वारो को निरुद्ध कर देना संवर है और पानी को उलीचना और सुखाना निर्जरा है। यह निर्जरा दो प्रकार की है—सकाम निर्जरा और अकाम निर्जरा। जो व्रत के उपक्रम से होती है वह सकाम निर्जरा है और जो जीवो के कर्मों के स्वत विपाक से होती ह वह अकाम निर्जरा है।

जैन दर्शन म तपस्या को पूर्वसंचित कर्मों के नष्ट करने का साधन माना गया ह। जैन विचारको ने इसे औपक्रमिक अथवा अविपाक निर्जरा के १२ भेद किये हैं जो कि तप के ही बारह भेद हैं।

इस प्रकार इन दोनो तपो का कर्म क्षय और आत्म-शुद्धि की दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व है। जैन दर्शन में तप का मात्र शारीरिक या बाह्य पक्ष ही स्वीकार नही किया गया है वरन् उसका ज्ञानात्मक एव आन्तरिक पक्ष भी स्वीकृत है। यही नही उत्तराध्ययन में अज्ञान तप की तीव्र निन्दा भी की गई है। जैन विचारक यह स्वीकार करते हैं कि निर्जरा ज्ञानात्मक तप से होती ह अज्ञानात्मक तप से नही। वस्तुत निर्जरा के निमित्त तप आवश्यक है। ग्रन्थ मे कहा गया है कि धर्मकथा से कर्मों की निर्जरा और प्रवचन की प्रभावना होती है और प्रवचन प्रभावक जीव आगामि काल म भद्र कर्म का ही बन्ध करता है अभद्र का नही।

९ मोक्ष तत्त्व

नवतत्त्वो में मोक्ष अन्तिम तत्त्व है। अतएव मोक्ष का सीधा अर्थ है—समस्त कर्मों से मुक्ति ग्रन्थ में कहा गया है। बन्ध और मोक्ष के स्वरूप को जान लेना ही

---

१ सो तवो दुविहो वुत्तो बाहिरब्भन्तरो तहा।
बाहिरो छव्विहो वुत्तो एवमब्भन्तरो तवो॥
अणसणमूणो यरिया भिक्खा यरिया य रसपरिच्चाओ।
कायकिलेसो सलीणया य बज्झो तवो होइ॥
उत्तराध्ययनसूत्र ३।७-८ ३

२ वही ९।४४।

३ धम्मकहाएण निज्जरजणयइ। धम्मकहाएणं पवयण पभावेइ।
पवयण पभावेण जीवे आगामिसस्स भद्दत्ताएकम्म निबन्धइ॥
वही २९।२४।

४ बन्ध मोक्खं पइण्णिणो॥ वही ६।१ ।

बन्ध की निवृत्ति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए पर्याप्त है। अत उत्तराध्ययन में मोक्ष के सद्भूत साधन तो सम्यक ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक चारित्र ही हैं। बाह्य वेष तो केवल व्यवहारोपयोगी ह इसलिए वह मोक्ष का मख्य साधन नही अपितु असयम माग का निवतक होने से कथंचित परम्परया गौण साधन माना गया है।

ज्ञान द्वारा जानकर दशन द्वारा श्रद्धान कर और चारित्र के द्वारा निराश्रव होकर तप के द्वारा यह आत्मा शुद्ध होती हुई मोक्ष मन्दिर का पथिक बन जाती है। ये चारो ही बन्ध की निवृत्ति के उपाय हैं। कहन का तात्पय यह ह कि तप और सयम के अनुष्ठान का सारा प्रयोजन मोक्ष गति को प्राप्त करना ह अर्थात इनका अनुष्ठान करने से सवप्रकार के कर्मों का क्षय हो जाता ह।

जन-दशन की यह तात्त्विक यवस्था मोक्ष मागपरक है अर्थात् जीव को कम बन्धन से मुक्त होने का परुषार्थ करन और मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती ह। इस दृष्टि से जीवादि नौ तत्त्वो म से प्रथम जीव और अजीव य दो तत्त्व मल द्रव्य के वाचक है। आस्रव पुण्य पाप और बध य चार तत्त्व ससार व उसके कारणभत राग द्वष आदि का निर्देश कर मुमुक्ष को जागृत करने के लिए हैं तथा सवर और निजरा ये दो तत्त्व ससार मुक्ति की साधना का विवेचन करत हैं। इस विषय म ग्रथ म निम्नलिखित रोचक भौतिक दृष्टान्त दिया गया है—

---

१ मोक्खसब्भय साहण।
नाण च द सण चेव चरित्त चव निच्छए।

उत्तराध्ययनसूत्र २३।३३।

२ नाणणजाणई भावे दसणण य सद्दह।
चरित्तेण निगिण्हाइ तवण परिसुज्झई॥

वही २५।३५।

३ वही २८।३५।

४ जा उ अस्साविणी नावा ना सा पारस्स गामिणी।
जा निरस्साविणी नावा साउ पारस्स गामिणी॥
नावा य इइ कावुत्ता ? के सी गोयममब्बवी।
केसिमेव बुवत तु गोयमो इणमब्बवी॥
सरीरमाहु नावत्ति जीवो वुच्चइ नाविओ।
ससारो अण्णवो वुत्तो जं तरन्ति महेसिणो॥

वही २३।७१–७३।

एक नौका संसाररूपी समुद्र में तैर रही है जिसमें दो छिद्र हैं। उनमें से एक से गन्दा और दूसरे से साफ पानी आ रहा है। पानी के आते रहने से नाव अब डूबने ही वाली है कि नाव का मालिक उन दोनो छिद्रों को बन्द कर देता है जिनसे पानी अन्दर प्रवेश कर रहा था और फिर दोनों हाथों से उस भरे हुए पानी को उलीचकर निकालने लगता है। धीरे धीरे वह नौका पानी से खाली हो जाती ह और पानी की सतह पर आकर अभीष्ट स्थान को प्राप्त करा देती है। इस तरह इस दृष्टान्त म नौका अजीव तत्त्व और नाविक जीव तत्त्व है। गन्दे और साफ पानी पाप और पुण्य के प्रतीक हैं।

जल का नाव में प्रवेश करना आस्रव एकत्रित होना बन्ध पानी आनेवाले छिद्रों को बन्द करना सवर नाव से पानी को उलीचना निजरा तथा जल के निकल जाने पर नाव का सतह पर आ जाना मोक्ष है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त तत्त्व-याजना में जीव और अजीव ज्ञेयतत्त्व माने गय हैं जब कि पाप आस्रव और बन्ध ये तीनों त्याज्य तथा पुण्य सवर निजरा और मोक्ष ये चारो उपादेय मान गय है। पाप आस्रव और बन्ध इन तीन से बचना चाहिए तथा पुण्य सवर और निजरा इन तीन का आचरण करना चाहिए। अन्तिम तत्त्व मोक्ष है जिनकी प्राप्ति के लिए इन सबका आचरण किया जाता है। यद्यपि निर्वाण के साधक के लिए पुण्य का आचरण भी लक्ष्य नही है फिर भी साधना-माग मे सहायक होन के का ण उसकी आवश्यकता स्वीकार की गयी ह। लेकिन शास्त्रकारों ने पुण्य को भी त्याज्य ही माना ह। इस प्रकार जीव और अजीव ये दो ज्ञय तथा आस्रव सवर निजरा और मोक्ष उपादेय माने गये हैं।

## तुलनात्मक अध्ययन

धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र में प्रतिपादित तत्त्व-योजना की तुलना करने पर पता चलता है कि दु खो की अनुभति प्रत्येक प्राणी को कष्ट मालम होती ह। अतः वे दु खों से छुटकारा पाने के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करते देखे जाते हैं। सासारिक जितने भी प्रयत्न हैं वे सब क्षणिक सुख को देने के कारण वास्तव मे दु खरूप ही हैं। सच्चे और अविनश्वर सुख की प्राप्ति के लिए चेतन और अचेतन के सयोग और वियोग की आध्यात्मिक प्रक्रिया को जिन नौ तथ्यो (सत्यो) मे विभाजित किया है उनमें पूण विश्वास उनका पूण ज्ञान और तदनुसार आचरण आवश्यक है। उन नौ तथ्यों के क्रमश नाम हैं—चेतन (जीव) अचेतन (अजीव) चेतन और अचेतन की सम्बन्धावस्था (बन्ध) अहिंसादि शुभ काय (पुण्य) हिंसादि अशुभ काय

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २८।१४।

( पाप ) अचेतन का चेतन के साथ सम्बन्ध करानेवाले कारण का निरोध ( सवर ) चेतन से अचेतन का अशत पृथक्करण ( निर्जरा ) तथा चेतन का पूर्ण स्वातन्त्र्य ( मोक्ष ) । इन चेतन अचेतन और उनके सयोग वियोग की कारण-कार्य-शृङ्खला के त्रिकाल सत्य होने से इन्हे तथ्य या सत्य कहा गया है । इन्हे मुख्यत पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है—

१ चेतन और अचेतन तत्त्व—जीव और अजीव

२ ससार या दु ख की अवस्था—बन्ध

३ ससार या दु ख के कारण—पुण्य पाप और आस्रव

४ ससार या दु ख से निवृत्ति का उपाय—सवर और निर्जरा

५ ससार या दु ख से पूर्ण निवृत्ति—मोक्ष ।

ससार या दु ख का कारण कर्म बन्धन है और उससे छुटकारा पाना मोक्ष है । चेतन ही बन्धन और मोक्ष को प्राप्त करता है तथा अचेतन ( कर्म ) से बन्धन और मोक्ष होता है । बन्धन में कारण है पुण्य और पापरूप प्रवृत्ति जिससे प्रेरित होकर अचेतन ( कर्म ) चेतन के पास आकर बन्ध को प्राप्त होते हैं । इन अचेतन कर्मों के आने को रोकना तथा पहले से आये हुए कर्मों को पृथक करने रूप सवर और निर्जरा मोक्ष के प्रतिकारण हैं । इस तरह बन्ध मोक्ष चेतन अचेतन पुण्य पाप आस्रव सवर और निर्जरा ये नौ सार्वभौम सत्य होने से तथ्य कहे गये हैं ।

इसी तथ्य का साक्षात्कार भगवान बुद्ध ने भी किया और उन्होंने इसका ही एक दूसरे ढग से चतुरार्य सत्यों के रूप में उपदेश दिया । चूँकि धम्मपद में कोई स्थायी चेतन व अचेतन पदार्थ स्वीकार नहीं किया गया है । अत ऊपर पाँच भागों में विभाजित ९ तथ्यों में से प्रथम भाग को छोडकर शेष चार रूपों में वर्णन किया गया है ।[1]—

**१ दु ख सत्य है**

ससार में जन्म जरा मरण इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग आदि दु ख देखे जाते हैं । अतः ये सत्य हैं ।

**२ दु खों के कारण सत्य हैं ( दु खसमुदय सत्य )**

जब दु ख हैं तो दु ख के कारण भी अवश्य हैं । तृष्णा सब प्रकार के दु खों की कारण है ।

**३ दु खनिरोध सत्य**

यदि दु ख और दु ख के कारण है तो कारण के नाश होने पर दुःख का भी विनाश होना चाहिए ।

---

१ धम्मपद २७३ ।

४ दुःखनिरोध मार्ग सत्य

द ःखों को दूर करन का रास्ता भी है। अत यह भी सत्य है।

इस तरह चेतन अचेतन द्रव्य हैं या नही परमाथ म सुख है या नही इसका कोई समुचित उत्तर न देकर भगवान बुद्ध ने यह कहा कि उपरोक्त चार बातें सत्य है। द ख से छटकारा चाहते हो तो इन आय सत्यो पर विश्वास करके द ख-निरोध के मार्ग का अनुसरण करो। दु ख-निरोध के माग में जिन उपायों को धम्मपद में बतलाया गया है वे ही प्राय उत्तराध्ययन में हैं अन्तर इतना ही है कि जहाँ बौद्ध-दशन आत्मा की अभाव ( नरात्म्य ) की भावना पर जोर देता है वहाँ उत्तराध्ययन उपनिषदो की तरह आत्मा के सदभाव की भावना पर जोर देता है।

उपयुक्त चार तत्वों की तुलना उत्तराध्ययनसूत्र के जैन-तत्त्व-योजना से निम्न रूप म की जा सकती है। धम्मपद का द ख उत्तराध्ययनसूत्र के बन्धन के समान है जब कि द ख हेतु की तुलना आस्रव से की जा सकती है क्योंकि जैन परम्परा म आस्रव को ब धन का और बौद्ध-परम्परा मे दु ख हेतु ( प्रतीत्यसमुत्पाद ) को द ख का कारण माना गया है। इसी प्रकार दु ख निरोध का माग ( अष्टांग माग ) उत्तरा ध्ययन के सवर और निजरा से तुलनीय है। द खनिरोधगामिनी प्रतिपद् या निर्वाण की तुलना उत्तराध्ययन के मोक्ष से की जा सकती है।

| धम्मपद | उत्तराध्ययनसत्र |
|---|---|
| १ द ख | १ बन्धन |
| २ दु ख हेतु ( प्रतीत्यसमुत्पाद ) | २ आस्रव |
| ३ दु खनिरोध का माग ( अष्टाङ्ग माग ) | ३ सवर और निर्जरा |
| ४ द खनिरोधगामिनी प्रतिपद् ( निर्वाण ) | ४ मोक्ष ( निर्वाण ) |



अध्याय ३

# धम्मपद के धार्मिक सिद्धान्त और उत्तराध्ययन में प्रतिपादित धार्मिक सिद्धान्तो से तुलना

प्रस्तुत अध्याय म ध मपद के आधार पर बद्ध अर्हत त्रिशरण निर्वाण धम कम अनुप्रेक्षा आदि बौद्ध मा यताओ का विवेचन है और उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर समानान्तर अथवा सदृश जैन-मा यताओ से तुलना मक अध्ययन ह ।

## बुद्ध

जिस समय भगवान् बद्ध का लोक म आविर्भाव हुआ उस समय देश में अनेक मतवाद प्रचलित थे। लोगो की जिज्ञासा जाग उठी थी और विचार-जगत म उथल पुथल हो रही थी। परलोक ह या नही कम है या नही कर्मों का फल ( विपाक ) होता है या नही इस प्रकार के प्रश्नो के प्रति लोगो के हृदय म बडा कौतहल था। एसे ही काल म जब सद्गृहस्थ भी स या वपण म घर बार छोडकर भिक्षु या वनस्थ हो रह थे बद्ध का शाक्य व श मे ज म हुआ। इनका कुल क्षत्रिय गोत्र गौतम और नाम सिद्धाथ था। य राजा शुद्धोदन के पत्र थे और मायादेवी इनकी माता थी। उस समय पूव के प्रदेशो म क्षत्रियो का प्राधा य था। सिद्धाथ ने राजकुमारो की भाँति शिक्षा प्राप्त की परन्तु वे बचपन से ही विचारशील थे और इसीलिए उनकी उत्सुकता जीवन के रहस्यो को जानन के लिए बढने लगी। सासारिक सुखो से ये जल्दी ही विरक्त हो गय और युवावस्था म ही परमाथ सत्य की खोज म एक दिन घर से निष्क्रमण किया तथा काषाय वस्त्र धारण कर भिक्षभाव ग्रहण कर लिया। उस समय तापसो की बडी प्रसिद्धि थी। [1]न्ह मालम हुआ कि आलार कालाम नि श्रेयस का ज्ञान रखत है। सिद्धाथ उनके पास गय और पूछा कि ज म मरण याधि आदि दुखों से जीव कैसे मुक्त होता है ? आलार कालाम ने सक्षप में अपन शास्त्र के निश्चय को समझाया। उन्होंने ससार की उत्पत्ति और प्रलय को समझाया और तत्त्वों की शिक्षा देकर नैष्ठिक पद की प्राप्ति का उपाय बताया। किन्तु सिद्धाथ को सन्तोष न हुआ। विशेष जानने के लिए वे उद्दक राम पुत्त के आश्रम में गये किन्तु जब उनसे भी स तोष नहीं हुआ तो व अनुत्तर शान्ति-पद की गवेषणा में उरुवेला आये और नैरंजना नदी के तट पर आवास किया। उन्होने विचार किया कि मुझमें भी श्रद्धा

---

१ सामञ्ञफलसुत्त दीघनिकाय प्रथम भाग प ४५–५२ ।

है वीर्य है स्मृति समाधि और प्रज्ञा है मैं स्वयं धर्म का साक्षात्कार करूँगा। सिद्धार्थ बोधि के लिए कृतसंकल्प हो अश्वत्थ-मूल में पर्यंकबद्ध हुए और यह प्रतिज्ञा की कि जब तक वे कृतकृत्य नहीं होते इसी आसन में बैठे रहेंगे। इस प्रकार रात्रि के प्रथम याम में उनको पूर्वजन्मों का ज्ञान हुआ दूसरे याम में दिव्य चक्षु की प्राप्ति हुई और अन्तिम याम मे द्वादशाग प्रतीत्यसमुत्पाद का साक्षात्कार कर उन्हें अनभव हुआ कि उनका बार बार जन्म लेना समाप्त हो गया ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया और यह उनका अन्तिम जन्म है। आस्रवों का क्षय हो जाने से अब उन्हें इस लोक में पुन नहीं आना है। यह उनका बद्धत्व है। उस दिन से व बद्ध कहलाने लग। ज्ञान प्राप्ति के अवसर पर भगवान ने जो प्रीतिवचन कहे उनका वणन धम्मपद में इस प्रकार है — बिना रुके अनेक जन्मों तक ससार में दौडता रहा। ( इस कायारूपी ) गृह को बनानेवाले ( =तृष्णा ) को खोजत पुन पुन दु खमय जन्म में पडता रहा। हे गृहकारक ( तृष्ण ) मने तुझे देख लिया अब फिर त घर नही बना सकेगा। तेरी सभी कडियाँ भग्न हो गयी गृह का शिखर गिर गया। चित्त सस्काररहित हो गया। अहत्व ( तृष्णा-क्षय ) प्राप्त हो गया।

उपयक्त त्रैविद्यता ही बद्ध की सम्बोधि थी परन्तु कालान्तर में बुद्धपद के विकास से त्रैविद्यता के आधार पर ही बद्ध के अन्य अनेक विशिष्ट गुणो—बल वैशारद्य आदि और सवज्ञता—की कल्पना की गयी। प्रारम्भ में बद्ध अपने और अन्य अहतों में भेद नही मानते थे। परन्तु बद्ध पद विशिष्ट हो जाने की स्थिति में अत्यन्त विरल माना गया अत बद्ध और सामान्य अहत् की उपलब्धि में भेद किया गया। इसी क्रम म तीन प्रकार के मुक्त पदों की कल्पना की गयी अहत प्रत्येक बद्ध और सम्यक सम्बद्ध। बद्ध के अतिरिक्त और उनसे पूव के आय मानुषी बद्धों की कल्पना भी विकसित हुई। बद्ध शब्द का प्रयोग पालि निकायों में अनेक बार हुआ है। दीघनिकाय के महापदानसुत्त और मज्झिमनिकाय के अच्छरियअब्भुतधम्म-सुत्त ( ३।३।३ ) जैसे अनेक सुत्तों म इस प्रकार के शब्द दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन पालि-साहित्य में सात बद्धों के नाम मिलते हैं यथा—विपस्सी सिखी वेस्सभ ककुसन्ध कोणागमन

---

१ अनेक जाति ससार सन्धाविस्स अनिब्बिस
गहकारकं गवे सन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुन।
गहकारक दिट्ठोसि पुनगेह न काहसि।
सब्बाते फासुकाभग्गा गहकट विसङ्खित।
विसङ्खारगत चित्त तण्हान खयमज्झगा॥

धम्मपद १५३ १५४ तथा दीघनिकाय प्रथम भाग पृ ७३।

कश्यप और गौतम। खुद्दकनिकाय के अन्तगत बुद्ध-वश मे शाक्य मुनि के पर्व चौबीस बद्धों का वणन है। नये नाम इस प्रकार हं—दीपकर को डन्ज मगल सुमन रेवत सोभित अनोमदस्सी पदुमनारद पदुमुत्तर समेघ सुजात पियदस्सी अत्थदस्सी धम्मदस्सी सिद्धत्थ तिस्स और फुस्स। अगुत्तरनिकाय म बद्ध के तथागत बुद्ध और प्रत्यक बद्ध ये दो प्रकार बतलाये गये हैं। दीघनिकाय म तथागत बद्ध को सम्यक सम्बद्ध कहा गया ह। उत्तरकालीन परिभाषाओ के अनुसार सम्यक सम्बद्ध वह व्यक्ति है जिसन करुणा से प्रेरित होकर जगत के सारे प्राणियो को दु ख से मुक्त करन का भार अपने कन्धो पर लिया ह। स्वय बद्ध हुए दूसरे लोगो का जो अनेक प्रकार की रुचि शक्ति और योग्यतावाले लोग है उपकार करना सम्भव नही है अत वह बद्धत्व प्राप्त करने के लिए पुण्य-सम्भार और ज्ञान-सम्भार का अर्जन करता है। इसके लिए वह तीन असख्यय क पपर्यन्त अनक योनियो म ज म लेकर छह पारमिताओ को पूण करता ह यथा—दान पारमिता शील पारमिता क्षान्ति पारमिता वीय पारमिता यान पारमिता एव प्रज्ञा पारमिता। प्रज्ञा पारमिता को छोडकर शेष पाँच पारमिताय पु य सम्भा तथा प्रज्ञा पारमिता ज्ञान-सम्भार कहलाती हैं। जिस दिन उसन द्धत्व प्राप्त करने का सकल्प लिया था और अनन्त ज मो के बाद जिस दिन उसे बोधि प्राप्त होती है इसके बीच उसकी सज्ञा बोधिसत्त्व होती ह। जिस दिन उसे सम्यक सम्बोधि का लाभ होता है उस दिन प्रज्ञा पारमिता भी पण हो जाती है और उस दिन से वह सम्यक सबद्ध कहलान लगता ह। वह करुणा और प्रज्ञा का पज हाता ह। दोनो उसमें समरस होकर स्थित होती ह और वह करुणामय अन त ज्ञानवान सवज्ञ और अन त लाकोत्तर शक्तियो से समन्वित हो जाता ह। वह सभी प्राणियो को दु ख से मुक्त करन के माग को देशना करता ह। भगवान बद्ध इसी तरह के सम्यक सम्बद्ध थे।

प्रत्यक बद्ध वह व्यक्ति है जो अपन को दु ख से मुक्त करन का सकल्प लेकर और इसके लिए प्रव्रजित होकर शील समाधि आर प्रज्ञा भावना के द्वारा अर्थात आय अष्टाङ्गिक माग के अभ्यास द्वारा चार आयसत्यो का साक्षात्कार कर अपने

---

१ दीघनिकाय महापदानसुत्त।

२ बौद्धधम के विकास का इतिहास पृ ३५६।

३ अगुत्तरनिकाय २।६।५ तथा डिक्शनरी आफ पालि प्रापर नेम्स भाग २ प २९४।

४ दीघनिकाय (सामञ्ञफलसुत्त १।५)।

५ वही दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ ११ ।

क्लेशों का प्रहाण करता है। यह पुण्य-सम्भार का अर्जन अधिक नही करता। इसकी विशेषता यह होती है कि जिस जन्म में उसे प्रत्येक बुद्ध बोधि प्राप्त होती है उस जन्म म वह किसीको अपना शास्ता मार्ग प्रदर्शक अथवा गुरु नही बनाता अपितु अपने बल पर निर्वाण प्राप्त करता है।

इसके अतिरिक्त बौद्ध टीकाओं में चार प्रकार के बुद्ध बतलाय गये हैं —

१ सब्बन्न बुद्ध (सर्वज्ञ बुद्ध)
२ पच्चेक बुद्ध (प्रत्येक बुद्ध)
३ चतु सच्च बुद्ध (चतु सत्य बुद्ध) और
४ सुत बुद्ध (श्रुत-बुद्ध)।

धम्मपद के चौदहव बुद्ध वर्ग म बुद्ध के प्रकारों का उल्लेख तो नही मिलता है लेकिन बुद्ध विनायक सम्बुद्ध श्रावक तथा गौतम श्रावक आदि विशेषणों से उसे अलकृत किया गया है जिसके विजय का फिर पराजय नही होता है जिसके विजय का कोई भागीदार इस ससार में नही हो सकता ऐसे अगम्य त्रिकालज्ञ बुद्ध को आप कौनसा पथ दिखला सकते हैं। जो प्रबुद्ध और अप्रमत्त हैं जो ध्यान म मग्न रहनेवाले हैं जो धीमान और एकान्त सुख मे आनन्द मनाते हैं ऐसे सत्पुरुषों के साथ देवता भी स्पर्धा करत ह। क्योकि बुद्ध का जन्म तथा बुद्धत्व प्राप्ति दुलभ ह इसलिए कोई पाप न किया जाव भलाई की जाय और अपने मन की शुद्धि की जाय यह उपदेश सब बुद्धो का ह। निन्दा न करना घात न करना भिक्षु नियमो द्वारा अपने को सुरक्षित रखना परिमाण जानकर भोजन करना एकान्त में सोना-बैठना चित्त को योग म लगाना यही बुद्धो का शासन ह।

उत्तराध्ययनसूत्र में भी चार प्रत्येक बुद्धों का उल्लेख मिलता है यथा—

(१) करकण्डु (कलिंग का राजा)
(२) द्विमुख (पचाल का राजा)

---

१ डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स मलालशेखर भाग २ पृ २९४ तथा उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन आचाय तुलसी पृ ३५ ।
२ धम्मपद १८७ ५८ ५९।
३ वही २९६–३ १ तक।
४ वही १७९ १८ ।
५ वही १८१।
६ वही १८२ १८३।
७ वही १८५।

( ३ ) नमि ( विदेह का राजा ) और
( ४ ) नग्गति ( गधार का राजा )।

इसका विस्तृत वणन टीका म प्राप्त ह । य चारो प्रत्येक बुद्ध एक साथ एक ही समय में देवलोक से च्युत हुए एक साथ प्रव्रजित हुए एक ही समय मे बुद्ध हुए एक ही समय में केवली बने और एक साथ सिद्ध हुए । इनम से करकण्डु बढ़े बल को देखकर प्रतिबुद्ध हुआ । द्विमुख को इन्द्रस्तम्भ क देखने से वरा य हुआ तथा नमि राजा ने चडियो के शब्दो को सुनकर ससार का परित्याग कर दिया और नग्गति राजा मजरीविहीन आम्रवृक्ष को देखकर वैराग्यवश दीक्षित हो गए ।

उत्तराध्ययन की कथाओ के आधार पर करकण्ड और द्विमुख का अस्तित्व भगवान महावीर के शासनकाल म सिद्ध होता ह । उसके दो मुख्य आधार हैं ( १ ) करकण्डु पद्मावती का पुत्र था । वह चटक राजा की पुत्री और दधिवाहन की पत्नी थी । य दोनों भगवान् महावीर के समसामयिक थे । ( २ ) द्विमुख की पुत्री मदन मञ्जरी का विवाह उज्जनी के राजा चण्ड प्रद्योत के साथ हुआ था । यह भी भगवान महावीर के समसामयिक थे । चारो प्र यक बुद्ध एक साथ हुए थ इसलिए उन चारो का अस्तित्व भगवान महावीर के समय मे ही सिद्ध होता है ।

## अर्हत्

अहन शब्द श्रमण-सस्कृति का प्रिय शब्द ह । श्रमण लोग अपने तीर्थङ्करों या वीतराग आत्माओ को अर्हन् कहत थ । बौद्ध और जैन-साहित्य म अहन शब्द का प्रयोग हजारो बार हुआ है । जैन लोग आहत नाम से भी प्रसिद्ध रह हैं । भगवान् महावीर और बुद्ध समकालीन थे और स्वाभाविक रूप से दोनों की वाणी और भाव म बहुत अधिक साम्य है । बहुत से शब्द और भाव तो दोनो धर्मों के ग्रन्थो म समान रूप से देखकर लोग आश्चयचकित हो जाते हैं । भगवान बुद्ध और उनके शिष्यो के लिए भी अरहत विशेषण बौद्ध-ग्रन्थो म पाया जाता ह जो कि एक विशिष्ट अवस्था या उपलब्धि का सूचक है । अहत् अघ का विकृत रूप है । अघ ऋग्वेद म भी आया है । वहाँ

---

१ करकण्ड कलिंगेसु पचाले सुय दुम्मुहो ।
नमी राया विदेहेसुगन्धारेसुयनग्गई ।। उत्तराध्ययनसूत्र १८।४६ ।

२ उत्तराध्ययन निर्युक्ति गाथा २७ ।

३ सुखबोधापत्र १३३ ।

४ वही १३३–१३५ ।

५ वही पत्र १३६ ।

६ ऋग्वेद २।३।१ २।३।३ ।

इसका अर्थ है—योग्य उत्तम श्रद्धास्पद इत्यादि। इस प्रकार ऋग्वेद के समय में भी इस शब्द से एक उच्चादर्श सूचित होता था। बाद में जैनधर्म ने इस वैदिक शब्द को अपना लिया और अपुरुष रत्नों के सम्बन्ध में इसे प्रयुक्त किया क्योंकि इस शब्द से आदर्श में निहित पूरा-पूरा भाव प्रकट होता था। इस प्रकार अर्हत जैन तीर्थङ्करों के लिए प्रयुक्त होने लगा और इसके द्वारा जैनधर्म के सर्वश्रेष्ठ आदर्श पुरुष का बोध होने लगा। बारहवीं शताब्दी के जैन कोषकार हेमचन्द्र ने जैन तीर्थङ्करों के पर्य्यायवाची शब्दों का वर्णन किया है। उन्होंने बुद्ध के भी पर्यायवाची शब्द दिये हैं। यह सूची तीर्थङ्कर के पर्य्यायवाली सूची से बहुत लम्बी है पर इसमें अर्हत् शब्द का पता नहीं है। बौद्ध कोषकार अमरसिंह (छठी शताब्दी) ने भी अपने अमरकोष में बुद्ध के पर्य्यायवाची शब्द देते हुए अर्हत् का कोई उल्लेख नहीं किया है। किन्तु हेमचन्द्र और अमरसिंह दोनों ने ही बुद्ध के नामों में जिन शब्द का उल्लेख किया है। जिन और अर्हत् से श्रेष्ठ तथा आदर्श पुरुष का बोध होता है अतः ये जैनों तथा बौद्धों दोनों के आदर्श पुरुषों के सम्बन्ध में लागू हो सकते हैं। पर यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि जैना और आर्हता से जैनधर्मानुयायियों का बोध होता है और इस प्रकार जिन और अर्हत भी जैन आदर्श पुरुषों के लिए विशेषतः प्रयुक्त हुआ है। जिन शब्द जि धातु से बना है जिसका अर्थ होता है जीतने वाला। किसे जीतनेवाला यह यहाँ गुप्त एवं अध्याहृत है। भगवान महावीर को अन्तिम देशना के रूप में माने जानेवाले प्रसिद्ध शास्त्र उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि जो दुर्जय संग्राम में सहस्र सहस्र योद्धाओं—शत्रुओं को जीत लेता है वह वास्तविक विजेता नहीं माना जाता। वास्तव में एक आत्मा को जीतना ही परम जय है। इसलिए हे पुरुष! तू आत्मा के साथ ही युद्ध कर बाह्य शत्रुओं के साथ युद्ध करने से तुझे क्या लाभ है? जो आत्मा द्वारा आत्मा को जीतता है वही सच्चा सुख प्राप्त करता है।

---

१ अर्हज्जिनः पारगतास्त्रिकालवित्क्षीणा
 ष्टकर्मा परमेष्ठ्यधीश्वरः।
 शुम्भुः स्वयं भूर्भगवाञ्जगत्प्रभुस्तीर्थ
 करस्तीर्थकरो जिनेश्वरः॥
 अभिधान चिन्तामणि १।२४ २५।

२ उत्तराध्ययन ९।३४ ३५ तुलनीय—
 यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने।
 एकं च जेय्यमत्तानं स वे सङ्गामजुत्तमो॥
 धम्मपद १ ४।

इन उदगारो से यह निश्चित हो जाता है कि यहाँ बाह्य शत्रुओं के साथ लडकर उन्हें जीतने की बात नही अपितु आन्तरिक शत्रुओ के साथ जझकर उन्हें जीतने की बात कही गयी है। यह युद्ध कैसे करना चाहिए यह भी यहाँ बता दिया गया है अर्थात् आत्मा के द्वारा आत्मा को जीतना चाहिए। इसका अथ हुआ अपना आत्मबल सकल्पशक्ति और वीर्योल्लास बढाकर अन्त करण म स्थित महान शत्रओ पर नियन्त्रण करना। जैनधम के अनुसार अन्त करण के प्रबल शत्रु हैं—राग द्वेष और मोह। इन्हीके कारण क्रोध मान माया लोभ काम तष्णा आदि दुष्ट वत्तियाँ उत्पन्न होती ह और उन्हीके कारण कमबन्धन होता है जिसके फलस्वरूप नाना गतियो और योनियो म परिभ्रमण करना और जन्म मरणादि दु ख सहना होता है। वैसे देखा जाय तो दुष्कृत्यो या दुर्वृत्तियो म प्रवृत्त आत्मा ( मन आदि इन्द्रियसमह ) भी आत्मा का शत्रु बन जाता है। इस प्रकार आन्तरिक शत्रओं की गणना अनेक प्रकार से होती है। तात्पय यह है कि जो इन आन्तरिक शत्रओ को जीत लेत हैं वे जिन कहलाते हैं।

सम्भवत बौद्धों न जनो से ही इन दोनो शब्दो को ग्रहण किया। अहत एक अवस्था या पदविशेष है। उस अवस्था को बुद्ध न ही नहीं अपितु उनके अनेक शिष्यो और शिष्याओ न भी समय-समय पर प्राप्त किया जिसके अनेक उदाहरण हैं। बौद्ध और जनधम दोनो द्वारा अहत शब्द के प्रयोग पर टिप्पणी करते हुए प बेचरदास दोशी ने लिखा ह कि धम्मपद के प्रारम्भ म ही बुद्ध भगवान का विशेषण अरहत बतलाते हुए नमस्कार किया गया है यथा—नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। यह उसी प्रकार ह जैसे जन ग्रन्थों में नमो अरिहताण। किन्तु यह ध्यान मे रखना चाहिए कि बौद्ध प्रयोग म अरहत षष्ठी विभक्ति म ह और विशेषण के समान व्यवहृत है। अत वह श्रद्धय या आदरणीय के अथ म ही प्रयुक्त प्रतीत होता है। वहाँ अहत से वह अथ नही निकलता जो नमो अरिहताण के अरिहताण से निकलता है।

धम्मपद के सातव वग्ग का नाम अहन्तवग्ग है। इस वग्ग म अहतो के सम्बन्ध म विचार किया गया है। इस वग्ग की प्रत्येक गाथा म जैन अहतो या

---

१ अप्पामित्तममित्त च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥ उत्तराध्ययनसूत्र २ ।३७।
तुलनीय—

अत्तना वकत पाप अत्तना सकिलिस्सति।
अत्तना अकत पाप अत्तना व विसुज्झति।
सुद्धि असुद्धि पच्चत्त नाञ्ञो अञ्ञ विसोधये ॥ धम्मपद १६५ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३६३।

२ महावीर-वाणी पृ ४।

तीथकरों की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा की गयी है। अहृत् शब्द का ऐसा ही प्रयोग धम्मपद की १६४वी गाथा में किया गया है—

यो सासन अरहत अरियान धम्मजीविन।

धम्मपद के टीकाकार आचाय बद्धघोष ने यहाँ अरहत को विशेषण और सासन को विशेष्य बताया है और यही ठीक भी है। इस प्रकार यहाँ अरहत का अथ सम्मानास्पद समझना चाहिए। अब यह विचार करना चाहिए कि बौद्धो के अनुसार अर्हत का क्या अथ है? खुद्दकपाठ म इसका अथ इस प्रकार दिया हुआ है— दसह गहि समन्नागतो अरहाति वुच्चति —अर्थात जिसम दस लक्षण वतमान हो वह अहत है। इससे बोध होता ह कि बौद्धो की दृष्टि म अहत् का बहुत ऊचा किन्तु एक निश्चित स्थान था और एसा जान पडता है कि वह स्थान केवल बद्धत्व के नीचे था। अत मालम पडता है कि बौद्धधम म अर्हत्व की भावना किसी दूसरे सम्प्रदाय से ग्रहण की गयी है और वह सम्प्रदाय निस्सन्देह जन सम्प्रदाय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नतिक जीवन का आदश अहतावस्था माना गया है। अहत-अवस्था से तात्पय तृष्णा या राग द्वेष की वृत्तियों का पूण क्षय है। जो राग द्वष और मोह से ऊपर उठ चका ह जिसमें किसी भी प्रकार की तृष्णा नही ह जो सुख दु ख लाभ अलाभ और नि दा प्रशसा मे समभाव रखता है वही अहत है। इसके अतिरिक्त अर्हत को स्थितात्मा केवली उपशान्त आदि नियमो से भी जाना जाता ह। धम्मपद म अहत के जीवनादर्श का निम्न विवरण इस प्रकार ह जिसने अपनी यात्रा को समाप्त कर लिया है जिसन चिन्ताओ को याग दिया है जिसने सब तरह से अपने आपको स्वाधीन कर लिया है और सब बन्धनो को काट दिया है वह कष्टो से परे है। उनको घर मे सुख मालम नही होता वे भली प्रकार विचार कर घर को याग देते है जैसे राजहस अपने घरबार अर्थात् झील को त्याग देत हैं। वे पुरुष जिनके पास धन नही है जो खास किस्म का भोजन करते हैं जिन्होने पण स्वाधीनता पद निर्वाण को प्राप्त कर लिया है उनका माग आकाश म विचरनेवाले पक्षियो के माग की तरह समझना कठिन है। इस प्रकार के कतव्यपरायण पुरुष भमि तथा इन्द्रवज्र की तरह सहनशील हो जाता है वह कीच से रहित सरोवर की तरह है वह पुनजन्म की प्रतीक्षा नही करता। उसके विचार स्थिर हो जात हैं और कर्म क्षोभरहित हो जाते हैं तब वह मौनी कहलाता है। जो असृष्ट वस्तु को पहचानता है

१ जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ डॉ सागरमल जन प ४१७।

२ धम्मपद अरहन्तवग्ग ९ –९९।

जिसने सब बन्धनों को तोड दिया है और सब इच्छाओ को त्याग दिया ह वही श्रेष्ठ मनुष्य है। ऐसा मनुष्य जहाँ कही भी विहार करता ह वह भमि ( पवित्र ) है।

भदन्त बोधानन्द महास्थविर द्वारा लिखित बौद्धचर्या-पद्धति म शब्द के विषय म निम्नलिखित टिप्पणी प्राप्त होती ह अहत-जीवन्मुक्त। अह तीन प्रकार के होते हैं—बुद्ध प्रत्येक बुद्ध और श्रावक अर्हत्। इनम जो पुरुष बिन गुरु की सहायता के स्वय अपने प्रतिभा बल से सवज्ञता या पणज्ञान प्राप्त करके f लाभ करते हैं वे बुद्ध प्रत्येक बुद्ध क लाते ह। और जो पुरुष बुद्ध प्रदर्शित प चलकर सवज्ञता और निर्वाण लाभ करत हैं वे श्रावक अहत् कहलाते ह। ब प्रत्येक बद्ध म यह अन्तर ह कि कम ऋषि ज्ञान ऋषि आदि सब प्रकार की अ प्रतिभा तथा जिसम असख्येय अप्रमेय प्राणियो के उदबोधन करने की प्रतिभा ह वे बुद्ध कहलाते है और जो अपन प्रतिभा बल से अन्य प्राणियो का उदबोधन न सकत केवल स्वय निर्वाण लाभ कर सकत हैं वे प्रत्यक बुद्ध कहलाते है। बुद्ध जैनो म भी प्रसिद्ध हैं।

श्रावक की निर्वाण प्राप्ति के लिए चार अवस्थाओ का विधान दिया गया

**१ स्रोतापन्न**

स्रोतापन्न शब्द का अथ ह धारा म पडनवाला। जब साधक का चित्त प्र एकदम हटकर निर्वाण के माग पर आरूढ हो जाता ह जहाँ से गिरन की स नही रहती तब उसे स्रोतापन्न क त ह। जैसे किसी तीव्र जलधारा म पि ( तिनका ) अवश्य एक दिन समद्र तक पहुच जाता है उसी प्रकार स्रोतापन्न भी अधिक-से-अधिक सात जन्मो म अवश्य सम्पण क्लेशो का प्रहाण करने म स जाता है। उसका आठवाँ जन्म नही होता। वह मनुष्य देव आदि उच्च भू उत्पन्न होकर एक-दो जन्म में भी अहत् हो सकता है किन्तु किसी भी हालत से अधिक जन्म नही लेता।

**२ सकृदागामी**

स्रोतापन्न हो जान के बाद आगे मार्गाभ्यास करने पर व्यक्ति उ ( कामराग ) द्वेष ( प्रतिघ ) एव मोह ( अविद्या ) इन तीन सयोजनों को दु

१ उत्तराध्ययनसूत्र १८।४६।

२ खुद्दकनिकाय सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप ( खुद्दकपाठ—रतनसुत्त )

३ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ १३३ १९५ द्वितीय भाग पृ ७१ भाग पृ ८४ १ २।

देता है तो सकृदागामी कहलाने लगता है। ऐसा यकि इस कामभमि मे अधिक से अधिक एक बार ( सकृ ) ज म लेकर अपने सम्पूण दु ख का प्रहाण कर देता है।

३ अनागामी

इसे अनागामी इसलिए कहत ह क्योंकि ऐसे व्यक्ति का इस मनुष्य भमि ( कामभमि ) म फिर उत्पाद नही होता। कामभूमि म पुन आनेवाला न होन से यह अनागामी कहलाता ह। रूप अरूपभमि म उत्प न होकर यह अपने दु ख का अन्त कर देता है।

४ अहत्

उपयक्त तीनो व्यक्ति जिन क्लेशों का प्रहाण करन म असमथ रहते हं यह यक्ति बाकी के बच हुए ऊर्ध्वभागीय पाँच क्लेशो का भी प्रहाण कर अहत कहलाने लगता ह। अर्थात इसके सम्पण दस सयोजन ( कामराग रूपराग अरूपराग प्रतिघ मान दृष्टि शीलव्रत परामश विचिकि सा औद्धत्य एव अविद्या ) सर्वथा प्रहीण हो चके हैं। इसे अब कुछ प्रहाण करना शष नही ह। इसे जो करना था वह कर दिया जो पाना था वह पा लिया। यह कृतकृ य एव पण मनोरथ हो गया है। इसका ब्रह्मचय वास पण हो गया इसे अब फिर जन्म ग्रहण नही करना है। यह इसी ज म म अनास्रव चित्त विमुक्ति एव प्रज्ञा विमुक्ति का अनुभव करत हुए विहार करता है।

जन-दशन मे नतिक जीवन का परमसाध्य वीतरागता की प्राप्ति रहा है। जन दशन म वीतराग एव अरिह त इसी जीवनादश के प्रतीक हैं। वीतराग की जीवन-शैली क्या होती ह इसका वणन जनागमो म यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। डा सागरमल जन न उसे इस प्रकार से प्रस्तुत किया है जो ममत्व एव अहकार से रहित ह जिसके चित्त में कोई आसक्ति नहो है और जिसने अभिमान का त्याग कर दिया ह जो प्राणिमात्र के प्रति समभाव रखता ह जो लाभ-अलाभ सुख-दु ख जीवन मरण मान अपमान और निन्दा प्रशसा में समभाव रखता है जिसे न इस लोक और परलोक की कोई अपेक्षा नही है किसीके द्वारा चन्दन का लेप करन पर और किसीके द्वारा बसूले से छिलने पर जिसके मन में राग द्वेष नहीं

१ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ १३३ १९५ द्वितीय भाग पृ ७४ तृतीय भाग पृ ८३ १ २।

२ वही पृ ८३ ८४ १ ३।

३ वही पृ ८३ ८४।

४ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४१६ ४१७।

होता जो खान म और अनशन व्रत करने म समभाव रखता है वही महापुरुष है। जिस प्रकार अग्नि से शुद्ध किया हुआ सोना निमल होता है उसी प्रकार राग द्वेष और भय आदि से रहित वह निमल हो जाता है। जिस प्रकार कमल कीचड एव पानी म उत्प न होकर भी उसम लिप्त नहीं होता उसी प्रकार जो ससार के कामभोगों में लिप्त नही होता भाव से सदव ही विरत रहता है उस विरता मा अनासक्त पुरुष को इ द्रियो के शब्दादि विषय भी मन म राग द्वेष के भाव उ पन्न नही करते। जो विषयरागी व्यक्तियों को दु ख देते हैं वे वीतरागी के लिए दु ख के कारण नही होत ह। वह राग द्वष और मोह के अध्यवसायो को दोषरूप जानकर सदव उनके प्रति जागृत रहता हुआ माध्यस्थ भाव रखता ह। किसी प्रकार के सक प विक प नही करता हुआ तृष्णा का प्रहाण कर देता है। वीतराग पुरुष राग द्वष और मोह का प्रहाण कर ज्ञानावरणीय दशनावरणीय और अन्तराय कम का क्षय कर कृतकृत्य हो जाता है। इस प्रकार मोह अन्तराय और आस्रवो मे रहित वीतराग सवज्ञ सवदर्शी होता है। वह शुक्ल ध्यान और सुसमाधि होता ह और आयु का क्षय होन पर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

धम्मपद और उत्तराध्ययन के अहत पद-सम्ब धी तुलना मक अध्ययन से यह पता चलता है कि बौद्धधम की तरह ही जैनधर्म म भी अहत्-पद को बहुत महत्त्व दिया गया ह। जनधम का महान ध्यय ही वीतरागता की प्राप्ति ह। दोनो ग्र थो में अहत शब्द जीवन्मक्त के लिए प्रयुक्त है। जिसका चित्त मल सवथा प्रक्षीण हो चुका है वीततृष्ण हो जाने के कारण उसके कम दग्धबीज की तरह विपाक ( फल ) उत्पन्न नही करत। शरीर त्याग के बाद फिर ज म ग्रहण नही करता आवागमन मुक्त हो जाता है। राग द्वेष और मोह सब नष्ट हो जाता ह तब अहत-पद प्राप्त होता ह। वह पूर्णसिद्ध कृतकृ य हो जाता ह। अत सभी के ि ए पूज्य बन जाता है।

## त्रि शरण

बुद्ध धम और सघ बौद्धधम के तीन रत्न मान गय ह। आचार्य वसुब ध ने

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र १९।९ –९३।

२ वही २५।२१ २७ ३२।४७ ३५।

३ वही ३२।६१ ८७ १ ।

४ वही ३२।१ ८।

५ वही १९।९४ ३५।१९ २ २३।७५–७८

६ खुद्दकपाठ धमसग्रह ( नागाजुनकृत मक्समलर द्वारा स पादित आक्सफोड १८८५ ) पृ १।

अभिधमकोश भाष्य म इन तीन रत्नों की तुलना क्रमश वैद्य भेषज्य एव उपस्थापक से की है। इनका स्मरण स्वस्तिकारक है। अत नम रत्नत्रयाय कहकर इन्हें अक्सर नमस्कार भी किया जाता है। इससे भय दु ख आदि दूर होते है। त्रिशरण-गमन बौद्ध सघ में प्रवेश की प्रथम औपचारिक आवश्यकता थी। प्रव्रज्या के प्रार्थी को सिर और दाढी मडाकर काषाय वस्त्र पहनकर उत्तरासग एक कन्ध म बठकर और हाथ जोडकर तीन बार यह कहना पडता था बुद्ध की शरण जाता हूँ धम्म की शरण जाता हूँ और सघ की शरण जाता हूँ।

अब प्रश्न उठता है कि शरण का क्या अथ हो सकता है? शरण का अथ दढ निष्ठा एव तदनुसार आचरण करना ह। भगवान बुद्ध न पूजा-पाठ का निषध किया था। उन्होन अपनी पजा तक को साथक न कहकर धम आचरण की ओर सबको प्ररित किया था। उन्होन यह भी कहा था कि मनुष्य भय के मार पर्वत बन उद्यान वृक्ष चत्य आदि को देवता मानकर उनकी शरण म जाते ह। किन्तु य शरण मगलदायक नही य शरण उत्तम नही क्योकि इन शरणो मे जाकर सब दु खो से छटकारा नही मिलता। जो बुद्ध धम और सघ की शरण जाता ह और चार आय सत्यो की भावना करता है वही सब दु खो से मक्त होता ह।

---

१ अभिधमकोश भाष्य पृ ३८७।

२ देखिय रतनसुत्त (सुत्तनिपात)।

३ विनयपिटक महावग्ग प २४ और बौद्धधम के विकास का इतिहास प १४।

४ महापरिनिब्बानसुत्त प १४४।

५ बहु वे सरण यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आराम रुक्खचेत्यानि मनुस्साभय तज्जिता॥
नेत खो सरण खेमं नेत सरणमुत्तम।
नेत सरणमागम्म सब्ब दुक्खा पमुच्चति॥

धम्मपद १८८ १८९।

६ यो च बुद्ध च धम्म च सघ च सरण गतो।

एत खो सरण खेम एत सरणमुत्तम।
एत सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

वही १९ -१९२।

बुद्धानुस्मृति धर्मानुस्मृति सघानुस्मृति[1] ये तीन स्मृतियाँ हैं। इनके अभ्यास से भी चित्त क्लेशो मलो और आवरणो से परिशुद्ध अवदात एव निमल होता है तथा यथायोग्य प्रथम द्वितीय आदि ध्यानो की प्राप्ति होती है। अत ध्यान की प्राप्ति म इनका भी बडा महत्त्व है।

भगवान बुद्ध क णा की मूर्ति थे। समस्त जनता को नानाविध दु खो से द खी देखकर सवप्रथम उनके मन म करुणा का उ पाद हुआ। अ ततोगत्वा उपाय की खाज में उ होंने गृह याग किया और उरुवेला म बोधिवृक्ष के नीचे अनुपम ज्ञान प्राप्त कर बुद्ध हुए। इस तरह उनमें महाकरुणा और म ाप्रज्ञा विकास की चरमकोटि को प्राप्त कर समरस होकर स्थित थी। बद्ध सरण गच्छामि म बद्ध श द का अथ होता है भगवान् बद्ध के स्कन्ध द्रव्यो म होनेवाले अहत्व आदि ९ गण। अहत् आदि नव गुणो को ही बुद्ध कहा जाता है। भगवान बद्ध के अहत्व आदि ९ गणो का पन स्मरण करना बद्धानुस्मृति कहलाती ह। बद्ध-गुण का स्मरण इस प्रकार किया जाता है—वह भगवान अहत सम्यक मबद्ध विद्या-आचरण से सम्पन्न सुगत लोकविद अनुपम पुरुष दम्य सारथि देव मनुष्यो के शास्ता बद्ध भगवान हैं। बद्ध एक उपपद है व्यक्ति वाचक नाम नही। बद्ध जगे हुए पुरुष को कहते हैं अथवा जिसन बोधि को प्राप्त कर लिया ह। बद्ध का आविर्भाव बोधि से होता है माता के गभ से नही। इसलिये कहा गया है कि बद्ध पुरुष का आविर्भाव लोक म अति दलभ है। बद्ध नाम सुनना भी लोक म अति दलभ ह। धम्मपद में कहा गया है कि जिसकी स्मृति दिन रात हमेशा बद्धविषयक बनी रहती ह व गौतम (बद्ध) के शिष्य सदा स्मृति के साथ सोत और जागते हैं। इ ही सब विशेषणो के कारण बद्ध के यक्ति व की विशाल्ता को भारतीय

१ धम्मपद गाथा-सख्या २९६।
२ वही गाथा-सख्या २९७।
३ वही गाथा सख्या २९८।
४ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ ७६।
५ देखिए सुत्तनिपात (सेलसुत्त ३।७) तथा मज्झिमनिकाय (अस्सलायन सुत्त २।५।३)।
६ किच्छो बद्धान उप्पादो ॥ धम्मपद १८२।
७ चुल्लवग्ग ६।२ तथा सुत्तनिपात ३।७।
८ सुप्पबुद्ध पबुज्झन्ति सदा गोतम सावका।
ये स दिवा च रत्तो च निच्च बुद्धगत सति ॥
धम्मपद २९६।

लोगों ने ही नहीं विरोधियों ने भी स्वीकार किया है। सुप्रसिद्ध विद्वान् बार्थ ने लिखा है बुद्ध का व्यक्तित्व शान्ति और माधुर्य का सम्पूर्ण आदर्श है। वह अनन्त कोमलता नैतिक स्वतन्त्रता और पाप राहित्य की मूर्ति हैं। धम्मं सरणं गच्छामि—मैं धर्म की शरण में आता हूँ यह बौद्धों के लिए दूसरी शरण है। धर्म की अनुस्मृति वस्तुतः बुद्ध की स्मृति से कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। परमार्थ रूप से तो बुद्ध और धर्म में भेद करना ही अज्ञान होगा। बुद्ध और धर्म एक हैं। भगवान् बुद्ध ने स्वयं अनेक बार कहा है जो धर्म को देखता है वह मुझे देखता है। जो मुझे देखता है वह धर्म को देखता है। महायान बौद्धधर्म में इसी सत्य की स्वीकृति धर्म कायस्तथागता कहकर की गई है और उसे विस्तृत तात्त्विक रूप प्रदान किया गया है। महापरिनिर्वाण में प्रवेश करते समय भगवान ने भिक्षुओं से कहा था मेरे बाद मेरे द्वारा उपदेश किया हुआ धर्म विनय ही तुम्हारा शास्ता होगा। इस प्रकार धर्म लोक में बुद्ध का प्रतिनिधि है। धम्म अपने अस्तित्व के लिए बुद्धों के आविर्भाव पर निर्भर नहीं है। तथागत चाहे उत्पन्न हों या न हों धर्मनियामता तो रहती ही है। धम्म व्यक्तिनिरपेक्ष सत्य है जो व्यक्ति के रूप में भगवान् बुद्ध की अपेक्षा नहीं रखता। धम्मपद में कहा गया है कि जिनकी स्मृति दिन रात हमेशा धर्मविषयक बनी रहती है वे गौतम बुद्ध के शिष्य सदास्मृति के साथ सोते और जागते हैं। बुद्ध और संघ के बीच धम्म मध्यस्थता करता है। बुद्ध ने धम्म का साक्षात्कार किया और अपने बाद धम्म को अपना प्रतिनिधि बनाया। धम्म के लिए बुद्ध ने अपने को विसर्जित कर दिया। धम्म के प्रचार के लिए ब्रह्मचर्य के प्रकाश के लिए संघ का आयोजन हुआ। बुद्ध के बाद उसका नियन्त्रणकर्ता भी धम्म ही हुआ कोई व्यक्ति नहीं। वस्तुतः बुद्ध ने अपने जीवन-काल में भी कभी यह नहीं माना कि वे संघ का संचालन कर रहे हैं। धम्म के द्वारा ही वे संघ को संचालित मानते थे। जिस धर्म का बुद्ध ने साक्षात्कार किया उसे आदि में कल्याणकारी मध्य में कल्याणकारी और अन्त में भी कल्याणकारी कहा गया है। इस प्रकार धर्म शब्द से परियत्ति धर्म एवं स्रोतापत्ति आदि चार मार्ग धर्म स्रोतापत्ति आदि चार फल धर्म एवं निर्वाण का ग्रहण होता है। इन दस धर्मों के स्वाख्यात आदि ६ गुणों का पुनः पुनः स्मरण करना ही धर्मानुस्मृति है। धर्मानु

१ द रिलिजन्स ऑफ इण्डिया बार्थ पृ ११८।

२ संघाटीसुत्त ( इतिवुत्तक )।

३ महापरिनिब्बाणसुत्त ( दीघनिकाय २।३ )।

४ सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च निच्चं धम्मगता सति ॥ धम्मपद २९७।

५ हत्थिपदोपमसुत्त ( मज्झिमनिकाय १।३।७ )।

स्मृति की भावना विधि इस प्रकार ह—भगवान का धम स्वाख्यात ( सुन्दर प्रकार कहा गया ) है सा दृष्टिक ( इसी ससार में फल देनेवाला ) आकालिक ( कालान्त में नही तत्काल फल देनेवाला ) एहिपश्यिक ( परीक्षा किया जा सकनेवाला ओपनायिक ( निर्वाण के पास ले आनेवाला ) और विज्ञ पुरुषो के अपने अन्दर विदि होनेवाला है।

बौद्धधम म सघ एक प्रमुख इकाई ह और त्रिर न म एक रत्न है। शरणाग के वक्तव्य म सघ आदश रूप मे कल्पित है। यह निर्वाणप्राप्त जीव मुक्त भिक्षओ सघ है जिसमें चार पुरुष युग्म और आठ पुरुष पुद्गल होते हैं। इस तरह आठ अ पुद्गलो के सघ को ही परमाथत सघ कहा जाता है। व्यवहारत सभी प्रकार भिक्षओ के सघ को जिसम चार से अधिक भिक्ष हो सघ कहा जाता ह। भगव का श्रावक सघ अच्छ मार्ग पर चलनवाला ह सीधे मा ग पर चलनवाला ह या माग पर चलनेवाला है और समीचीन माग पर चलनवाला है। यह आह्वान क योग्य आतिथ्य करन यो य दक्षिणा देने योग्य तथा अजलि बाधकर प्रणाम क योग्य है। यह दान देनेवालों के लिए सवश्रष्ठ पण्य-क्षत्र ह। सघ के इन गणो का में बार बार स्मरण करना ही सघानुस्मृति ह। धम्मपद में कहा गया ह कि जिन स्मृति दिन रात हमशा सघविषयक बनी रहती है व गौतम बुद्ध के शिष्य सदा स के साथ सोते और जागत हैं। सघ के सामने व्यक्ति तुच्छ ह यहाँ तक कि सघ से भी महान ह। एक समय महाप्रजापति गौतमी भगवान बद्ध के पास गयी अ उन्ह अपन हाथ से कात और बन हुए एक जोडे वस्त्र को दान देना चाहा। भगव ने उसे स्वय न ग्रहण कर सघ को देन के लिए कहा और साथ ही यह भी कहा सघ को देन से म भी पूजित होऊगा और सघ भी। इससे स्पष्ट होता ह कि बौ धम में सघ का क्या स्थान है। धम्मपद म भी भगवान बद्ध न बद्ध धम्म और सघ मत्री को सुखदायक कहा ह।

---

१ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ ७६ तथा द्वितीय भाग पृ १६३।

२ वही द्वितीय भाग प १६३।

३ सुप्पबद्ध पबज्झन्ति सदागोतम सावका।
यस दिवा च रत्तो च निच्च सघ गतासति॥
धम्मपद २९८।

४ मज्झिमनिकाय ( दक्खिणा विभगसुत्त ) ३।४।१२ पृ ५८१।

५ सुखो बुद्धान उप्पादो सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा सघस्ससामग्गी समग्गान तपो सुखो॥ धम्मपद १९४।

उत्तराध्ययन में त्रिशरण का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। जैन-परम्परा में अरिहन्त सिद्ध साधु और केवली प्रज्ञप्त धर्म को शरण माना गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध-परम्परा म तीन और जैन-परम्परा में चार शरण हैं।

## निर्वाण

जिस प्रकार समुद्र का रस एकमात्र लवण रस ह उसी प्रकार भगवान बुद्ध की सम्पूण देशना का उनके सारे उपदेशो और प्रयत्नो का एकमात्र रस निर्वाण है। निर्वाण के प्रापक धर्मों को उन्होंने वास्तविक धर्म कहा। निर्वाण के अनुकल शारीरिक और मानसिक चेष्टाओ को उन्होंन कुशल कहा पुण्य शील सदाचार और सम्यग्दष्टि कहा। इससे विपरीत विचारो और क्रियाओ को उन्होंने मिथ्यादृष्टि पाप अकुशल दु शील और दुराचार की सज्ञा प्रदान की। निर्वाण के माग का उन्होंने स्वय अन्वेषण किया और इसके बाद इस सुपरीक्षित माग का उन्होने दूसरो को जीवनभर उपदेश दिया। व्यक्ति समाज और ससार का दु ख उनके सामने एक समस्या के रूप म उपस्थित था। उसके कारणो को नाश करके वे सभी को दु खो से आत्यन्तिक मुक्ति दिलाना चाहते थे। वे अत्यन्त सवदनशील थ। दु ख का साक्षात्कार तो प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन करता रहता ह किन्तु उससे कभी उद्विग्न नही होता मानो वह उस स्थिति का आदी हो गया हो। भगवान का इसी बात का सबसे अधिक आश्चय था कि लोग इतने बड दु ख-सागर म निमग्न होन पर भी कैसे हसते-खलते रहते हैं उससे मुक्ति का उपाय क्यो नही सोचते।

### निर्वाण का निवचन

निर्वाण की महत्ता की दष्टि से स्वभावत उत्तरकालीन बौद्ध-ग्रन्थो म इस विषय पर अत्यधिक विचार चर्चा हुई। अभिधम्मत्थसगहो में निम्नलिखित रूप म निर्वाण की व्याख्या है। निर्वाण म वान् शब्द का अथ तृष्णा है। वान् एक जोडनेवाला धर्म ह। इसके द्वारा एक जन्म ( भव ) का दूसरे जन्म के साथ योग किया जाता है। जब तक इस वान नामक तृष्णा का अन्त नही किया जाता तब तक निर्वाण असम्भव

१ अरहन्ते सरण पवज्जामि
सिद्धे सरण पवज्जामि
साहू सरण पव्वज्जामि
केवलीपेन्नत्त धम्म सरण पवज्जामि ॥ आवश्यकसूत्र।

२ को नु हासो किमानन्दो निच्च पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥
धम्मपद गाथा-सख्या १४६।

है। आशय यह है कि वान् से निगत धम ही निर्वाण है। जैसे सूचीकार कपड के एक टुकड को दूसरे टकड से जोडता ह सीता है अथवा जुलाहा तन्तुओं को परस्पर जोडकर कपडा बुनता है उसी प्रकार यह तष्णा नामक धम ( पदाथ ) भी वतमान ज म से अनागत जन्म का सयोजन करता रहता ह।

**निर्वाण का स्वरूप**

हेतु प्रत्ययो अपने कारणो से उत्पन्न धर्म सस्कृत एव प्रतीत्यसमुत्पन्न कहलाते हैं। सासारिक सभी पदाथ या पाँचो स्कन्ध सस्कृत ही हैं। निर्वाण किसीसे उत्पन्न नही है अत वह एक असस्कृत धम है। यह अमृत तथा उत्तम ( प्रणीत ) धम है। यह च्युतिरहित अन्तररहित तथा लोकोत्तर पद ह। यहाँ ( निर्वाण ) म सभी सस्कार धम शान्त हो जाते हैं। इसम सारी उपाधियाँ और सारे प्रपच समाप्त हो जाते हैं। यह तृष्णा का क्षय राग का क्षय और समस्त क्लेश उपक्लेश और दु खो का निरोध ह।

निर्वाण न तो बौद्धतर दाशनिको की भाँति नि य कूटस्थ कोई सदभत पदाथ है और न तो शश विषाण की तरह यह अनुपलम्भ स्वभाववाला ही ह। प्रश्न उठता ह कि क्या निर्वाण एक परमाथत स्वभावभत धम नही है ? प्रज्ञाचक्ष हितगवषी जनों को अनुरूप साधना अर्थात शमथ विपश्यना आदि उपायो का अभ्यास करन से निर्वाण की प्राप्ति या उपलम्भ होता है। अत यह कहना ठीक नही ह क्योंकि निर्वाण सामा य जनो को अनुभत नही होता अत वह है ही नही।

निर्वाण की अभावा मकता के सम्बन्ध मे भगवान बुद्ध ने कहा है लोहे के घन की चाट पडने पर जो चिनगारियाँ उठती ह वह तुर त ही बझ जाती हैं। कहाँ गई ? कुछ पता नही चलता। इसी प्रकार काम-बन्धन से मुक्त हो निर्वाण पाये हुए अचल-सुख प्राप्त किये हुए की गति का कोई भी पता नही लगा सकता। आचाय बुद्धघोष विशुद्धिमाग म कहत हैं कि निर्वाण का वास्तविक अथ तष्णा-क्षय अथवा विराग है। आधनिक विद्वानो ने इसे स्वीकार किया ह कि बुझ जाने का अथ अभावा

---

१ विभाविनी टीका ( अभिधम्मत्थसगहो की विभाविनी टीका ) सम्पा रेवतधम्म पृ ८।

२ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ ३२ तथा १६३।

३ अभिधम्मत्थसगहो द्वितीय भाग पृ ७२८ तथा विसुद्धिमग्ग पृ ३५८ ३५९।

४ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २९।

५ उदान ८।१ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४२७।

६ विसुद्धिमग्ग १६।६४।

त्मकता नहीं है वरन अस्तित्व की रहस्यमय एव अवर्णनीय अवस्था है। निर्वाण को अग्नि शिखा के बुझ जाने से की जानेवाली तुलना समुचित है क्योंकि भारतीय चिन्तन में आग के बुझ जाने से तात्पर्य उसके अनस्तित्व से न होकर उसका स्वाभाविक शुद्ध अदृश्य अव्यक्त अवस्था म चला जाना है जिसमें कि वह अपने दृश्य प्रकटन के पूव थी। वस्तुत निर्वाण को अभावात्मक इसलिए कहा जाता ह कि अनिवचनीय का निवचन करने म भावात्मक भाषा की अपेक्षा अभावात्मक भाषा अधिक युक्तिपूर्ण होती ह।

इतिवुत्तक म बुद्ध कहते हैं कि निर्वाण अजात असमुत्पन्न अशोक विरजपद निरोध सस्कारोपशम और सुख ह। काय से अमृत धातु का स्पश कर निरुपधि और पाधि प्रतिनि सग का साक्षात कर सम्यक सम्बद्ध अनास्रव अशोक विरजपद की देशना करत हैं। धम्मपद म निर्वाण को परम सुख कहा गया है जिसे प्राप्त कर लेन पर न च्युति का भय होता ह न शोक होता है। उसे शान्त ससारोपशम एव सुख पद भी कहा गया है। आचाय बद्धघोष निर्वाण की भावात्मकता का समर्थन करते हुए विशुद्धि माग म लिखते ह निर्वाण नहीं ह ऐसा नहीं कहना चाहिए। भव और जरा-मरण के अभाव से वह नि य ह अशिथिल पराक्रम सिद्ध विशेष ज्ञान से प्राप्त किये जान से और सवज्ञ के वचन तथा परमाथ से निर्वाण है।

**निर्वाण के भेद**

बौद्ध-परम्परा म दो प्रकार के निर्वाण माने गये ह सोपाधिशेष निर्वाण और निरुपाधिशेष निर्वाण। सोपाधिशेष की निम्नलिखित रूप म व्याख्या की गई है।

अच्छे-बरे कर्म और राग द्वेष अविद्या तृष्णा आदि क्लेशो के वश में जिनकी उत्पत्ति होती है वे उपाधि हैं। अथवा जिनसे कम और क्लेश उत्पन्न होते हं

---

१ बौद्धधर्म-दशन पृ २९४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४२८।

२ इतिवुत्तक ३७ ३८ तथा खुद्दकनिकाय भाग १ पृ २ ७।

३ इतिवुत्तक ४६ तथा खुद्दकनिकाय भाग १ पृ २१३।

४ निब्बान परम सुख—धम्मपद २ ३ २ ४ तथा ३६८।

५ विसुद्धिमग्ग भाग २ पृ ११९–१२१ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४२७।

६ विसुद्धिमग्ग प ३५५ ३५६ अभिधम्मत्थसंगहो द्वितीय भाग पृ ७२६।

जिनमें कर्म और क्लेश आश्रय ग्रहण करते हैं वे उपधि है। जो उपधि भी हैं और शेष भी रहते है वे उपधिशेष कहलाते हैं। वस्तुत अर्हत् व्यक्ति के पाँच स्कन्ध ही उपधिशेष ह। निर्वाण का लाभ हो जाने क्लेशो का क्षय हो जाने तथा क्लेशवश नवीन कर्मों का सम्पादन न करन पर भी पुराने कर्मों के विपाक ( फल ) के रूप मे उनकी स्थिति तब तक बनी रहती ह या उनकी धारा का प्रवाह तब तक चलता रहता है जब तक आयु का क्षय नही होता यही सोपाधिशेष अवस्था है।

जब अर्हत व्यक्ति का आयु क्षय से मरण हो जाता ह तब उसके सभी प्रकार के नाम धर्मों की सन्तति तथा रूप धर्मों की स तति सवदा के लिए सवथा निरुद्ध हो जाती है। उसके पाँचो स्कन्धो का निरोध हो जाता ह। जिस अवस्था म उपधिशेष कहलानेवाले पाँच स्कन्धो का भी अभाव हो जाता है वह निर्वाण धातु अनुपधिशेष निर्वाण कहलाती ह।

जन-परम्परा में भी मुक्ति के इन दो रूपो की कल्पना है वहाँ वे भाव मोक्ष और द्रव्य मोक्ष कही गयी ह। भाव मोक्ष की अवस्था के प्रतीक अरिह त और द्रव्य मोक्ष की अवस्था क प्रतीक सिद्ध मान गये ह। उत्तराध्ययनसूत्र म मोक्ष और निर्वाण शब्दो का दो भिन्न भिन्न अर्थों म प्रयोग हुआ ह। उनमें मोक्ष को कारण और निर्वाण को उसका कार्य बताया गया है। इस स दभ म मोक्ष का अथ भाव मोक्ष या राग-द्वष से मुक्ति है और द्रव्य मोक्ष का अथ निर्वाण या मरणोत्तर मुक्ति की प्राप्ति है।

**निर्वाण के विशेषण**

यद्यपि ध मपद आदि बुद्ध वचनो में निर्वाण के स्वरूप अथवा आकार का स्पष्ट विवचन उपल ध नही होता फिर भी उसके अनेक पर्यायवाची शब्द उपलब्ध होते ह जिनसे निर्वाण के स्वरूप का आकलन करने मे बडी सुविधा होती है जैसे—अमृत अजर अमर अरूप नि य असाधारण निष्प्रपच अच्युत अ यन्त असस्कृत लोकोत्तर निर्वाण आदि।

हेतु प्रत्ययों से उत्पन्न होने के कारण निर्वाण अमृत असंस्कृत अजर एव अमर कहलाता है। जो त्पन्न होता है उसका विनाश ध्रुव है। निर्वाण उत्पन्न नही होता

---

१ विसुद्धिमग्ग १६।७३ पृ ३५६।

२ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ १२ ।

३ उत्तराध्ययन २८।३ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४१५।

केवल विशिष्ट मार्ग द्वारा प्राप्त होता है अत वह जरा-मरण धर्मवाला नहीं है इस लिए वह नित्य भी है। उसकी पवकोटि भी नही है अत वह अनादि अन्तरहित एव अप्रभव है। रूप-स्वभाव का न होने से वह अरूप तथा सवप्रपचो से रहित होने के कारण निष्प्रपच कहलाता है। कल्पना शब्द तक का विषय न होने स अतक्य ग भीर एव दुज्ञेय कहलाता ह। तृष्णा से निर्गत होने के कारण उसे निर्वाण कहते हैं।

इस प्रकार विचार करने से यह निष्कष निकलता है कि निर्वाण परमार्थत स्वभावभूत एक धम है। न तो वह सांख्यो की प्रकृति या बौद्धेतर दाशनिकों की आत्मा की भांति नित्य व्यापक एव सत्तावान् कोई द्रव्य ह न ही शश विषाण की तरह वह सर्वथा अलीक है। न तो वह प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्मों की तरह सस्कृत धम है और न प्रज्ञप्तिमात्र है। वह एक परमाथ धर्म है जिसका साक्षात्कार एव प्राप्ति होती है किन्तु उसका भाव या अभाव के रूप में निवचन नही किया जा सकता। अत उसे भावत्वेन एव अभावत्वेन अनिवचनीय ही कहा जा सकता है।

भगवान् बुद्ध की सारी देशना का एकमात्र रस निर्वाण है। उनके धम का आदि और अन्त सब कुछ निर्वाण है। निर्वाण दु ख और उसके कारणो की निवृत्ति है। यह सवश्रेष्ठ अवस्था एव परमपद है। इसकी प्राप्ति के बाद कुछ प्राप्त करना शेष नही रहता। यह परम शान्ति है। इस अवस्था को प्राप्त कर लेने पर भी यदि व्यक्ति जीवित है तो वह सोपधिशेष निर्वाण या जीवन्मुक्त की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था म वह जो कुछ करता है वही पण्य है वही कुशल है किन्तु इसका उसे फल नही भोगना पडता क्योंकि इन कर्मों के पीछे राग द्वेष मोह तृष्णा आदि कोई क्लेश नहीं होते। य कम निराभोग कम कहलाते हैं। इनके द्वारा केवल लोक-सग्रह

---

१ निब्बान योगक्खेम अनुत्तर। धम्मपद २३।
पारमेस्सत्तिमच्चुधेय्य सुदुत्तर। वही ८६।
नत्थिसन्ति परं सुख। वही २ २।
निब्बान परम सुख। वही २ १ २ ४।
येयन्ति अच्चुत ठान यत्थ गन्त्वा न सोचते। वही २२५।
सन्तिमग्गमेवब्रूहय निब्बान सुगतेन देसित। वही २८५।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च से निब्बान सन्तिके। वही ३७२।
तथा—
दीघनिकाय प्रथम भाग पृ १२ द्वितीय भाग पृ ३२।
अभिधम्मत्थसगहो द्वितीय भाग पृ ७२८ तथा पृ ७२१।

या लोक-क याण होता है। भगवद्गीता में यही निष्काम कमयोग कहा गया
व्यक्तित्व के विकास की इससे ऊची अवस्था नही होती। एसे व्यक्ति के लौकिक
स्कन्ध जब निरुद्ध हो जाते हैं अर्थात् जब वह मर जाता है तो पुन उन स्कन्धो
उत्पाद नहीं होता। एसे व्यक्ति के नाम और रूप धर्मों की धारा सवथा समा
जाती है। इसे ही निरुपधिशेष निर्वाण की अवस्था कहत हैं।

### जैन-दर्शन में मोक्ष का स्वरूप

जन-तत्त्व मीमासा के अनुसार सवर के द्वारा कर्मों के आगमन का निरो
जाने पर और निजरा के द्वारा समस्त पुरातन कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्म
जो निष्कम शुद्धावस्था होती है वही मोक्ष ह। मोक्ष आत्मा की शुद्ध स्वरूपा
ह। मोक्ष को जीवन का अन्तिम लक्ष्य मानन के कारण जैन आचार्यों ने मोक्ष
मोक्ष माग दोनों पर विस्तार से विचार किया ह। उत्तराध्ययन भी अन्य भारतीय ध
ग्रन्थो की तरह जीवो को मुक्ति की ओर अग्रसर करना अपना चरम लक्ष्य समझत

मोक्ष के लिए निर्वाण शब्द का प्रयोग जैन आचार्यों ने भी किया
निर्वाण का शाब्दिक अथ है— नि शेषण वान गमन निर्वाणम अर्थात् सम्पूण र
गमन निर्वाण है। निर्वाण के बाद जीव का संसार म पुनरागमन नही होता।
यहाँ पर निर्वाण का अथ है कमजन्य सासारिक अवस्थाओ का सदैव के लिए स
हो जाना। बौद्ध-दशन का भी मूल लक्ष्य जीवों को मुक्ति की ओर ले जाना
जैन मनीषियों ने मोक्ष के स्वरूप का प्रतिपादन करने के साथ अन्य भारतीय दश
मान्य मोक्ष के स्वरूप की समीक्षा भी की है और तार्किक दृष्टि से उपयुक्त जैन-परि
को प्रतिस्थापित किया ह। उत्तराध्ययनसूत्र म मुक्ति के अथ को डॉ सुदशनलाल
ने अपनी पुस्तक म विस्तृत रूप स प्रस्तुत किया है जिसे उसके स्वरूप के विष
विशेष जानकारी प्राप्त होती ह। वे शब्द निम्नलिखित हैं

---

१ जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भा
पृ ४३१।

२ उत्तराध्ययन २३।७१–७३ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शन
तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ४२ ।

३ नायए परिनिव्वुए — उत्तराध्ययनसूत्र ३६।२
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण — वही २८।३ ।

४ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ३७५–३७८।

१ मोक्ष

मोक्ष शब्द की उत्पत्ति मुच धातु से हुई है जिसका अथ छटकारा प्राप्त करना होता है। अध्यात्म विषय होने से यहाँ पर ससार के बन्धनभत कर्मों से छटकारा जीव को होता है तथा कमबन्धन से रहित जीव को मुक्त जीव कहा गया है। अत मोक्ष का अर्थ हुआ सब प्रकार के ब धन से रहित जीव द्वारा स्वस्वरूप की प्राप्ति।

२ बहि विहार

यहाँ पर विहार शब्द का अर्थ है ज म-जरा-मरण से व्याप्त ससार। अत बहि विहार का अथ हुआ ससार के आवागमन से रहित स्थान या ज म। मरणरूप ससार से बाहर। मोक्ष की प्राप्ति हो जाने के बाद जीव का ससार म आवागमन नही होता ह अत ग्र थ म उसे बहि विहार कहा गया है।

३ सिद्धलोक

ग्रन्थ म निर्वाण अ याबाध सिद्धि लोकाग्र क्षम जीव और अनाबाध इन नामो का उल्लेख मिलता ह परन्तु इस स्थान को पूण रूप से सयम का पालन करनेवाले महर्षि लोग ही प्राप्त करत हैं क्योकि यह स्थान सर्वोत्तम सर्वोच्च तथा सबके लिए क याणकारी है। इसम सर्वप्रकार के कषायो से विरत होकर परमशान्त-अवस्था को प्राप्त होने से इसको निर्वाण कहा गया ह। लोक के अग्र-अन्त भाग में होने से इसको लोकाग्र नाम से भी पुकारत हैं क्योकि यहाँ से लोक का प्रारम्भ भी होता है और यह लोक का प्रधान भाग होन से शीर्षस्थानापन्न भी है। मोक्ष को प्राप्त करनेवाला जीव सिद्ध बुद्ध एव मुक्त होकर अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सिद्धलोक को चला जाता है तथा वह सिद्धलोक सभी पापो के उपशमन होने से परमकल्याणरूप और सर्वोत्कृष्ट है।

---

१ बन्धमोक्खपइण्णिणो उत्तराध्ययनसूत्र ३६।२६९।

२ बहिं विहाराभिनिविट्ठचित्ता। वही १४।४।

ससारपारनिच्छिन्न। वही ३६।६७।

३ अलोए पडिहया सिद्धालोयग्गेय पइटिठया। उत्तराध्ययन ३६।५६ तथा

निव्वाण ति अबाह ति सिद्धी लोगग्गमेव य।

खेम सिव अणाबाह ज चरन्ति महेसिणो॥ वही २३।८३।

अकलेवरसेणिमुस्सिया सिद्धिगो ग्मलोयं गच्छसि।

खेम च सिव अणुत्तर वही १ ।३५।

### ४ आत्मवसति

मुक्त होने का अथ है आत्मस्वरूप की प्राप्ति । अत आ मवसति या आ म प्रयोजन की प्राप्ति का अथ है मोक्ष की प्राप्ति ।

### ५ अनुत्तरगति प्रधानगति वरगति और सुगति

धम में सामा य रूप से चार गतियाँ मानी गयी ह जो ससार भ्रमण में कारण हैं । परन्तु मोक्ष एसी गति है जिसे प्राप्त कर लेने पर पुन ससार म आवागमन नही होता है । इससे श्रेष्ठ कोई गति नही है । अत इसे अनुत्तरगति कहा गया ह । यद्यपि देव और मनुष्यगति को ग्र थ म कही कही सुगति कहा गया है परन्तु वह ससारापेक्षा से कहा गया ह । वस्तुत सुगति मोक्ष ही ह । ससार की चार गतियों से भिन्न होने के कारण यह पचमगति ह ।

### ६ ऊर्ध्वदिशा

मुक्तात्माय स्वभाव से ऊध्वगमन स्वभाववाली हैं और जहाँ मुक्त जीव निवास करते ह वह स्थान लोक के ऊपरी भाग म ह । अत मोक्ष की प्राप्ति का अर्थ है ऊर्ध्व दिशा म गमन ।

### ७ दुरारोह

निर्वाण प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होने से इसे दुरारोह कहा गया है । ग्रन्थ म कहा गया ह कि लोक के अग्रभाग म एक एसा स्थान ह जहाँ पर जरा और मृत्यु का अभाव है तथा किसी प्रकार की याधि और वेदना की भी वहाँ पर सत्ता नही एव वह स्थान ध्रव निश्चल अर्थात शाश्वत ह परन्तु उस स्थान तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है । तात्पय यह है कि उस स्थान पर पहुचने के लिए सम्यक दशन सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र ये तीन साधन हैं । इनके द्वारा ही वहाँ पर पहुँचा जा सकता है परन्तु इनका सम्यकतया सम्पादन करना भी बहुत कठिन है ।

---

१ अप्पणो वसहिं वए । — उत्तराध्ययन १४।४८ तथा
इह कामाणियट्टस्स अत्तट्ठे अवरज्झई । — वही ७।२५ ।

२ पत्तो गइमणुत्तर । — वही १८।३८ ३९ ४ ४२ ४३ ४८ आदि ।
गइ प्पहाण च तिलोगविस्सुय । — वही १९।९७ ।
जीवा गच्छन्ति सोग्गइ — वही २८।३ ।
सिद्धिं वरगइ गया । — वही ३६।६७ ।

३ उडढ पक्कमई दिस । — वही १९।८२ ।

४ वही २३।८१ ८३ ।

८ अपुनरावृत्त और शाश्वत

यहाँ आने के बाद जीव पुन कभी भी ससार में नही आता है। अत अपुनरावृत्त है तथा नित्य होने से शाश्वत भी है। तात्पय यह है कि मोक्ष दशा को प्राप्त हो जाने पर न तो कोई कम शेष रहता है और न किसी प्रकार के दु ख का उपभोग करना पड़ता है।

९ अव्याबाध

सब प्रकार की बाधाओ से रहित तथा अत्यन्त सुखरूप होने से निर्वाण को अव्याबाध भी कहा गया है। तात्पय यह है कि निजगुण का सुख एक अनुपम सुख होता ह और सातावदनीय कम के क्षयोपशम से जो सुख उत्पन्न होता है वह अनित्य सादि सान्त होता है परन्तु इसके विपरीत जो आध्यात्मिक सुख ह वह अजन्य होने से नित्य अथवा अन त पदवाला है।

१ लोकोत्तमोत्तम

तीनो लोकों मे सर्वश्रष्ठ होने से निर्वाण को लोकोत्तमोत्तम कहा गया है। मोक्षस्थान म प्राप्त हुआ जीव फिर इस ससार में आकर जन्म मरण की परम्परा को प्राप्त नही होता अर्थात मोक्षस्थान ध्रुव है। नि य ह। जो लोग मुक्तात्मा का पुनरागमन मानते हैं व भ्रान्त हैं। क्योकि जब तक यह आत्मा आश्रवो से हित नही होता तब तक मोक्ष की प्राप्ति दलभ ही नही कि तु असम्भव है।

इस तरह यह निर्वाण की अवस्था रूप जरा व्याधि एव भौतिक शरीर से रहित अत्य त द खाभावरूप निरतिशय सुखरूप शा त क्षमकर शिवरूप बनरूप

---

१ अपुणागम गए — उत्तराध्ययन २१।२४ तथा
सत्वगुणसम्पन्नयाएण अपुणरावृत्ति जणयइ। — वही २९।४५।

२ अणगारेण जीवे सारीर
माणसाण दुक्खाण छेयणभेयण—सजो गाईण
वोच्छेय करेइ अव्वाबाह च सुह निव्वेसइ ॥ — वही २९।४।

३ लोगत्तमुत्तम ठाण सिद्धि गच्छसिनीरओ ॥ — वही ९।१८ तथा

निरासवे सखवियाण कम्म
उवेइ ठाण विउलत्तम धुव ॥ — वही २ ।५२।

वृद्धि एवं ह्रास से रहित अविनश्वर ज्ञानरूप दर्शनरूप पुनर्जन्म से रहित तथा एकान्त अधिष्ठानरूप है।[1] मोक्ष का वर्णन उत्तराध्ययन के छत्तीसवें अध्ययन में है[2] लेकिन अनेक अध्ययनों की परिसमाप्ति में सिद्ध गति निर्वाण या मोक्ष प्राप्त होने का उल्लेख है।[3]

मोक्ष की प्राप्ति के लिए श्रद्धा ज्ञान और चारित्ररूप रत्नत्रय की आवश्यकता पड़ती है। चार्वाक दर्शन को छोडकर अन्य सभी भारतीय दर्शनों का भी प्रधान लक्ष्य जीवों को मुक्ति की ओर ले जाना है। इस तरह उत्तराध्ययन में जो मुक्ति की अवस्था दर्शायी गयी है वह एक दिव्य अवस्था है जहाँ न तो स्वामी-सेवकभाव है और न कोई इच्छा इसे प्राप्त कर लेने पर जीव कभी भी संसार में नहीं आता। वह कर्म बन्धन से पूर्ण मुक्त हो जाता है। यह आत्मा के निर्लिप्त स्वस्वरूप की स्थिति है। सब प्रकार के सांसारिक बन्धनों का हमेशा के लिए अभाव होने से इसे मुक्ति कहा गया है।[4]

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि धम्मपद एवं उत्तराध्ययनसूत्र जिस प्रकार आत्मा के विषय में एकमत नहीं हैं ठीक उसी प्रकार निर्वाण के विषय में भी एकमत नहीं हैं यद्यपि दोनों ग्रन्थों में निर्वाण की चर्चा है। धम्मपद में जहाँ विमुक्ति की अवस्था के लिए निर्वाण शब्द का प्रयोग किया गया है वहीं उत्तराध्ययनसूत्र में निर्वाण शब्द की अपेक्षा मोक्ष शब्द का ही प्रयोग अधिक है। लेकिन दोनों ग्रन्थों में निर्वाण के लिए सच्चे विश्वास ज्ञान और आचार विचार को प्रधानता दी गयी है। दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि बौद्ध दृष्टि से द्रव्य सत्ता का अभाव ही निर्वाण है जब कि जैन दृष्टि से आत्मा की शुद्ध अवस्था निर्वाण है।

**धर्म का स्वरूप**

धर्म का स्वरूप बड़ा व्यापक है। उसकी इस विशेषता के कारण ही बड़े-बड़े विद्वान उसका कोई ऐसा स्वरूप निर्धारित नहीं कर पाते हैं जो सर्वमान्य हो। यही

---

१ अरुविणोजीवणा नाणदसण सन्निया।
अउल सुह संपत्ता उवमाजस्सनत्थि उ॥

उत्तराध्ययन ३६।६६।

२ वही ३६।४८–६७।

३ वही १।४८ ३।२ १।३७ ११।३२ १२।४७ १३।३५ १४।५३ १६।१७ १८।५३ २१।२४ २४।२७ २५।४३ २६।५२ ३।३७ ३१।२१ ३२।१११ ३५।२१ ३६।६८।

४ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ३८८ ८९।

कारण है कि धर्म की कोई एक सवमान्य परिभाषा नही उपलब्ध होती। व्युत्पत्ति के अनुसार इसके प्राय दो अर्थ किये जाते हैं (१) ध्रियते लोक अनेन इति धर्म अर्थात जिससे लोक धारण किया जाय वह धर्म है और (२) धरति धारयति वा लोक इति धम अर्थात जो लोक को धारण करे वह धम ह। मूल भावना यह है कि धम के द्वारा ही इस लोक का धारण या सचालन होता है। जीवन के चार पुरुषार्थों में धम का प्रमख स्थान है। धम की मान्यता के अनुसार धम और स"य एक हैं तथा दोनों पर्याय वाची शब्द हैं। धम सत्य के ही माग का नाम ह। धम्मपद म भी सत्य सयम दम और अहिंसा को धर्म के ही अन्तगत माना गया ह। आचाय बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग में धम शब्द के मुख्यत चार अर्थों का विवचन किया ० (१) सिद्धा त (२) हतु (३) गुण और (४) निसत्त। बौद्ध-साहित्य म धम श द का प्रयोग और भी व्यापक अर्थ म किया गया ह। वह कहीं स्वभाव कहीं कत्तव्य कहीं वस्तु और कहीं विचार और प्रथा का वाचक भी बनकर आया ह। इसके अतिरिक्त धम शब्द का प्रयोग बाधि धम या ज्ञान धम के लिए भी कहा गया ह। ज्ञान का ही बौद्ध लोग स"चा धम मानत थ। ज्ञान के अतिरिक्त धम शब्द का प्रयोग सत्य के अथ में भी मिलता है। धम्मपद म धम श द का प्रयोग भगवान बद्ध के उपदेशो के लिए किया गया ह। उसम लिखा ह कि बद्धिमान् लोग धम अर्थात भगवान बद्ध के वचनो को सुनकर उसी प्रकार शुद्ध और निमल हो जात है जिस प्रकार गम्भीर जलाशय मे जल निमल हो जाता ह। जो अ छी तरह उपदिष्ट धम म धर्मानुचरण करते हैं वे ही दस्तर मृत्यु के रा"य का पार कर सकत है। इस प्रकार हम देखत ह कि धम्मपद म धम शब्द का प्रयोग भगवान् बद्ध के उप"शो के अथ म किया गया है।

---

१ बौद्ध दशन तथा अ"य भारतीय दशन उपाध्याय भरतसिंह भाग १ पृ ११९।

२ यम्हि सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्ञमो दमो ॥
धम्मपद २६१।

३ बौद्ध दशन तथा अन्य भारतीय दशन भाग १ प १२१।

४ वही पृ १२ ।

५ यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्नो अनाविलो।
एव धम्मानि सुत्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥ धम्मपद ८२।

६ य च खो सम्दक्खाते धम्मानुवत्तिनो।
तेजना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्य सदुत्तरं ॥ वही ८६।

धम्मपद के तेरहवें लोकवग्ग म कहा गया है कि नीच कम न करें प्रमाद में म रहें आवागमन के चक्र म न पड उठ और धम का आचरण कर। सुचरित धम का आचरण करनेवाला धर्मचारी इस लोक तथा परलोक दोनो जगह सुखपवक रहता है।[1] लेकिन जिसने धम का उ लघन किया ह जो झठ बोलता है और परलोक का हँसी-मजाक उडाता है ऐसा मनुष्य किसी प्रकार के पाप करने से न डरेगा। उन्नीसवें धम्मटठवग्ग म धम म स्थित रहनेवालो की प्रशसा की गई है। अधिक बकवाद करने से मनष्य धम का धारण करनवाला नही क ला सकता। वही पुरुष सचमुच धम को धारण करनेवाला है जो यद्यपि थोडा बोलता है लेकिन अपने जीवन से उस सिद्धान्त को देखता ह जो मन य विचारपवक समान धम से दूसरो का पथ प्रदशन करता ह और जो धर्म द्वारा रक्षित तथा मधावी ह। वही धम को धारण करनेवाला है जो कभी धम की अवहेलना नही करता। धम की सवत्र प्रशसा की गयी है। धम्मपद में भी कहा गया है कि धम का दान सब दानो से श्रेष्ठ है धम की मिठास सब मिठाइयों से श्रेष्ठतम है धम का आन द सब सुखो से बढकर है।

जैन दशन म धम का व्युत्पत्तिमलक अथ ह धारणात धम अर्थात जो धारण किया जाये वह धर्म ह। ध धातु के धारण करने के अथ म धम शब्द का प्रयोग होता है। जैन-पर परा म वस्तु का स्वभाव धम कहा गया ह। प्र यक वस्तु का किसी न किसी प्रकार का अपना स्वभाव होता है। वही स्वभाव उस वस्तु का अपना धम माना जाता ह। आ मा के अहिसा सयम तप आदि गुणो को भी धम का नाम दिया गया ह। यही नही वरन समष्टि रूप म इसे इस प्रकार भी कह सकत हैं कि धर्म आत्मा की राग द्वष-हीन परिणति ह। इनके अतिरिक्त धम के और भी अनक अथ होते हैं। उदाहरण के लिए नियम विधान परम्परा यवहार परिपाटी प्रचलन आचरण कतव्य अधिकार न्याय सद्गुण नतिकता क्रिया सत्कम आदि अर्थों म धम शब्द का प्रयोग होता आया है।

---

१ धम्मपद १६७ १६९।

२ वही १७६।

३ वही २५७ २५९।

४ सब्बदान धम्मदान जिनाति स ब रस ध मरसो जिनाति।
सब्ब रतिं धम्मरसो जिनाति।  वही ३५४।

५ जैन-दशन मेहता मोहनलाल प ८।

६ जैन दर्शन मनन और मीमासा मुनि नथमल प २९१।

७ भगवान् महावीर पाठक शोभनाथ प ९९।

धम शब्द की वरीयता को परखने का मनीषियो ने भी खब प्रयास किया है। अत धम चित्त का वह भाव ह जिसके द्वारा हम विश्व के साथ एक प्रकार के मेल का अनुभव करते हैं। इस प्रकार विद्वानो ने धम की महत्ता को आँकने का श्लाघनीय प्रयास किया है किन्तु तथ्यत धम वही है जिससे मानवता का कल्याण हो। महावीर ने मानव-कल्याण हेतु धर्म की उपयोगिता का उपदेश इस रूप म दिया ह। यथा—जिस समय ससारी जीव जन्म जरा और मरण तथा आधि-व्याधिरूप जलराशि के महान वेग में बहते हुए व्याकुल हो उठत हैं उस समय इस धमरूप महाद्वीप की शरण म जान से उनकी रक्षा हो जाती ह। यहाँ पर ज म जरा और मृत्यु को समद्र जल के समान कहा गया है और श्रत चारित्ररूप धम को महाद्वीप बतलाया गया ह। इसलिए ससाररूप समुद्र के जरा-मरणादिरूप जल प्रवाह म बहते हुए प्राणियो को इसी धर्मरूप महाद्वीप का सहारा द और इसीकी शरण में जाना सर्वोत्तम ह। किन्तु मनुष्य भौतिकता मे भटक धम की यथायता को परख नही पाता जो उसके इस लोक और परलोक को सवारने मे सक्षम होता ह। तीथकर महावीर ने मनुष्यो को आगाह किया है कि जो रात्रि चली जाती है वह वापस लौटकर नही आती किन्तु अधम का सेवन करनवाले मनुष्य की सभी रात्रियाँ निष्फल हो जाती ह। अर्थात् मनुष्य उन रा।त्रयो म करवटें बदलता हुआ सुअवसर हाथ से न जाने दे सत्य आचरण से धम का पालन करे जिससे वास्तविक क याण हो। क्योंकि धम के अतिरिक्त इस ससार म कोई वस्तु विद्यमान नही जो तरे उपयोग म आए। तथ्यत स य शिव सु दरम की समष्टि ही धम ह। महावीर न धम के विषय में जो कुछ कहा वह लोक मङ्गल की भावना से सम्बन्धित है। उनकी दृष्टि में पथक्त्व कृत्रिमता व रूढ़िवादिता से ग्रस्त हिंसा या अन्य कष्टदायक कृत्य धम नही कहे जा सकत। यही कारण था कि तत्कालीन हिंसा का उ होंने घोर विरोध किया

---

१ जैन दर्शन प ९ १ ।

२ जरामरण वेगेण वुज्झमाणाण पाणिण।
धम्मो दीवो पइटठाय गई सरण मुत्तम॥ उत्तराध्ययन २३।६८।

३ जाजा वच्चइ रयणी नसा पडिनियत्तई।

धम्म च कुणमाणस्स सफलाजन्ति राइओ॥
वही ४।२४ २५।

४ वही १४।४ ।

तथा प्रत्येक प्राणी को धम का ही आचरण स्वीकार करने के लिए कहा क्योकि धम का आचरण अति दष्कर है। इस प्रकार हम देखते ह कि धम का सम्बन्ध किसी पूजा आराधना बलि अथवा आड बर से नही ह अपितु वसुधैव कुटम्बकम की भावना से ह जिसमें सभी प्राणियो के कयाण का असीम हित समाहित है। महावीर की दृष्टि में धर्म का उद्देश्य है सुकम करना जिससे सुख मिलता ह जब कि धम से विमुख होने पर कुकर्म की प्रवृत्ति उपजती ह जा द खदायक होती है। तभी तो उन्होन कहा ह कि जो मनुष्य पाप करता ह वह घार नरक म जाता ह और जो आय धम का आचरण करनवाला ह वह दिव्य गति म जाता ह। धम से सुख और अधर्म से दु ख मिलता है। अत मनुष्य को भली प्रकार समझकर इस वास्तविकता को परखना चाहिए। वसे तो मनुष्य इस लोक म धम की आराधना के लिए आया ह जो सदव उसकी रक्षा करता ह। धम के अतिरिक्त अय कोई यहा पर रक्षक नही ह।

महावीर ने धम की इस महत्ता को परखकर स्पष्ट कहा था कि धम प्रचार के पवित्रतम अनुष्ठान म यथाशक्ति योग देकर आत्मोद्धार एव परोद्धार क ो। जन जन के कयाण हेतु जहाँ धम अपक्षित ह वही स्वय के लिए भी इसकी उपयोगिता अनूठी ह। महावीर न आम-सयम हतु भी धम की महत्ता का प्रतिपादन किया है। मनरूप घोडा इस जीवात्मा को जिधर चाहे ले जाता है ऊँची-नीची जिस गति म चाह धकेल देता ह। इसलिए प्रयेक मुमुक्षु पुरुष को चाहिए कि अपन मन को सुधार ल उसे सन्मा र्ग पर लान का प्रयत्न करे। सरलता से ही आमा की शुद्धि होती ह और शुद्ध आ मा म ही धम स्थिर रहता ह। ग्रय में अय उपमाओ द्वारा भी धम

---

१ धम्म चर सुदच्चर। उत्तराध्ययन १८।३३।

२ पडन्ति नरए घोरे जे नरापावकारिणो।
दिव्व च गइ गच्छन्ति चरित्ता धम्ममारिय॥
वही १८।२५।

३ एक्को हु धमो नरदेव।
ताण न वि जई अन्नमि हह किंचि॥
वही १४।४।

४ मनो साहस्सिओभीमो दट्ठस्सोपरिधावई।
त सम्म तु निगिण्हामि धम्म सिक्खाइकन्थग। वही २३।५८।

५ सोही उज्जुयभूयस्स–ग॥ वही २३।५८।
धम्मो सुद्धस्स चिटठई॥ वही ३।१२।

की वरीयता को बताया गया है। निम्न उदाहरण विचारणीय है जो भगवान् महावीर को वाणी से उद्भूत है जिस प्रकार स्नान करने के लिए बाहर एक जलाशय होता है उसी प्रकार आन्तरिक स्नान के लिए अहिंसा धमरूप जलाशय है जो कि कमरूप मल को दूर करन म समथ है तथा जिस प्रकार तडाग म सोपान आदि लगे होत हैं उसी प्रकार धमरूपी तडाग के ब्रह्मचय आदि शान्ति-तीथ हैं जो कमरूप मल को जड से दूर करने म तथा मिथ्यात्वादि कालुष्यरहित होने से आत्मा की प्रसन्न लेश्या के सपादन म समथ है। सो इस प्रकार के धमरूप जलाशय म स्नान किया हुआ आ मा कममल से रहित होकर निष्कलक हो जाता है। जीव उस परमशीतलता को प्राप्त करता हुआ समस्त अन्तर और बाह्य के दोषो को दूर करता ह। इसी स्नान के द्वारा कुशल पुरुषो ने और समाधिस्थ योगी महर्षियो न उत्तम स्थान को परमधाम को प्राप्त किया है।

सासारिक सधार के लिए धम का सम्बल आवश्यक है चाहे वह कोई भी क्षत्र क्यो न हो। यहाँ तक कि नीति निर्धारण म भी धर्म की उपयोगिता वरदान स्वरूप है। तभी तो महावीर ने कहा ह कि धमहीन नीति जगत् के लिए अभिशाप ह और नीतिहीन धम कोरी वैयक्तिक साधना है। अत ह साधक! जो व्यवहार धम से उत्पन्न है और ज्ञानी पुरुषो ने जिनका सदा आचरण किया है उनका आचरण करनवाला पुरुष कभी निन्दा को प्राप्त नहीं होता। धम की उपयोगिता इसी स्वाधीन एव स्थायी सुख को प्राप्त कराने म है जो अथ काम आदि किसी भी अन्य उपाय से प्राप्त नही हो सकता। धम से ही मनुष्य की सच्चे स्वाधीन सुख की इच्छा की पूर्ति हो सकती है। विवेक-दृष्टि से सोचा जाय तो ससार के समस्त पदार्थ जिनसे मनुष्य सुख की आशा रखता है अध्रुव हैं अशाश्वत हैं। प्रत्येक पदाथ जिसम मनुष्य सुख

---

१ धम्मेहरए बम्भे सन्ति तित्थे
अणाविले अत्तपसन्न लेसे।

जहिं सिणाया विमला विसुद्धा
महारिसी उत्तमं ठाण पत्ते॥

उत्तराध्ययन १२।४६ ४७।

२ धम्मज्जिय च ववहार बुद्धे हायरिय सया।
तमायरन्तो ववहार गरह नाभिगच्छई॥

वही १।४२।

की कल्पना करता है परिवर्तनशील है। इसलिए इस दु खप्रचर ससार म या सांसारिक पदार्थों में सुख तो राईभर है मगर दु ख पवत के बराबर है। फिर वह राईभर सुख भी स चा सुख नही ह सुख का विकार सुखाभास है। एसी स्थिति म मनुष्य को सोचना चाहिए कि वह कौन-सा काय है जिससे म दु ख से बच सकं। यह तो निश्चित है कि स्वाधीन और सच्चा सुख धम से ही प्राप्त होता है। ऐसे सच्चे सुख के भागी धर्म को जीवन म ओत प्रोत कर देनेवाले पूण धर्मिष्ठ वीतरागी मुनि ही हो सकते हैं अथवा वीतराग-माग पर चलनेवाले धर्मिष्ठ साध–श्रावक-वर्ग हो सकते हैं। इसी प्रकार शुद्ध आ मतत्त्वरूप उत्तम सिद्धपद और उत्तम अरिहन्त वीतराग-पद की प्राप्ति के लिए एकमात्र साधन धम ही है। धम के द्वारा ही अरिहन्त सिद्ध और साध पदो को उत्तमत्व प्राप्त ह।

इस प्रकार हम देखत हैं कि धर्म की शक्ति दो प्रकार से प्रकट होती है—एक तो वह आपदग्रस्त व्यक्तियो का रक्षण करता है उन्हें शरण देता है दूसर वह सुख की प्राप्ति कराता है। उत्तराध्ययन म धम की इस द्विविध शक्ति पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। यथा—सकडो कष्टो म फँसे हुए क्लेश और रोग से पीडित मरण भय से हताश दु ख और शोक से पीडित व्यथित तथा जगत म अनेक प्रकार से याकुल एव निराश्रित जनो के लिए धर्म ही नि य शरणभत है।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि धम के बिना मानव-जीवन की कोई कीमत नही है। किन्तु अवश्य ही उस धर्म का अथ है नैतिकता और सदाचार। प्राणरहित शरीर की तरह उस जीवन का मूल्य नहीं है जिसम धर्म अथवा नैतिकता नही रहती। अगर जीवन म धम का प्रकाश न हो तो वह अन्धा है और वह अपने लिये तथा दूसरो के लिए भी भारस्वरूप है। मनुष्य मे से पशुता के नि कासन का श्रय धम को ही है। धम मनुष्य की दवी-वृत्ति है। यह प्रवृत्ति ही उसम दया दान सन्तोष करुणा अनुकम्पा क्षमा अहिंसा आदि अनक गुणो को उत्पन्न करती ह।

---

१ अधुवे असासयमि ससार मिदुक्खपउराए।
कि नाम होज्ज त कम्मय जणा ह दोग्गइन गच्छेज्जा ॥

उत्तराध्ययन ८।१।

२ वही २ ।२२–३१।

३ जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४४ ।

## कर्म

बौद्धधर्म एक मनोवैज्ञानिक धर्म है। मनोविज्ञान की आधारशिला पर वह प्राणि-जगत् को कम्मदायाद कम्मस्सक कम्मयोनि और कम्मपटिसरण कहता है। भगवान् बुद्ध के इन वचनों में बौद्धधर्म का सार निहित है। बौद्धधर्म की यह कर्म वादिता उसकी बुद्धिवादिता का परिणाम है। बौद्ध विचारकों ने भी क्रिया के अर्थ में ही कर्म शब्द का प्रयोग किया है। वहाँ भी शारीरिक वाचिक और मानसिक क्रियाओं को कर्म कहा गया है जो अपनी नैतिक शुभाशुभ प्रकृति के अनुसार कुशल अथवा अकुशल कर्म क जाते हैं। भगवान् बुद्ध न कर्म शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक रूप में किया है। उसे वह चेतना का पर्यायवाची मानते थे। यह बात उनकी निम्नलिखित उक्ति से प्रकट है चेतना ही भिक्षुओ का कर्म है मं ऐसा कहता हूँ। चेतनापूर्वक कर्म किया जाता है काया से वाणी से या मन से। यहाँ पर चेतना को कर्म कहने का आशय केवल यही है कि चेतना के होने पर ही ये समस्त क्रियाए सभव हैं। बौद्ध दर्शन म चेतना को ही कर्म कहा गया है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे कर्मों का निरसन किया गया ह।

कर्म मूलत दो प्रकार के हैं—चेतना कर्म और चेतयित्वा कर्म। चित्त कर्म (मानसिक कर्म) और चेतयित्वा अथवा चेतसिक कर्म (काय और वचन से उत्पन्न होने के कारण कायिक और वाचिक कर्म) कहे गये हैं। इस प्रकार कर्म शब्द क्रिया के अर्थ म प्रयुक्त होता है लेकिन कर्म शब्द का अर्थ क्रिया से अधिक विस्तृत है। कर्म शब्द में शारीरिक मानसिक और वाचिक क्रियाओं का निर्धारण और उन भावी क्रियाओं के कारण उत्पन्न होनेवाली अनुभूति सभी समाविष्ट हो जाती है। कर्म म क्रिया का उद्देश्य क्रिया और उसके फलविपाक तीनों ही अर्थ लिये जाते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा है केवल चेतना (आशय) और कर्म ही सकल कर्म नहीं है। कर्म के परिणाम का भी विचार करना होगा। इससे एक अपूर्व कर्म एक अविज्ञप्ति होती है।

बौद्ध-दर्शन कर्म के चैतसिक पक्ष को ही स्वीकार करता है और यह मानता

१ मज्झिमनिकाय चूलकम्मविभंगसुत्त ३।४।५।

२ संयुत्तनिकाय (रो) जिल्द २ पृ ३९४ अंगुत्तरनिकाय (रो) जिल्द २ पृ १५७-५८ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ ८४।

३ बौद्धधर्म-दर्शन पृ २४९।

४ वही पृ २५५।

है कि बन्धन के कारण अविद्या वासना तृष्णा आदि चैत्तसिक तत्त्व ही हैं। यदि ऐसा नहीं तो मानना पड़ेगा कि काय वाक और मन–ये तीन कर्मद्वार हैं। सभी कर्म इन्हीं द्वारों से सम्भूत हैं एव मन का सम्बन्ध सभी के साथ ह। मन उनका प्रतिशरण है। कहा गया है— सारी अवस्थाओ का मन अगुवा ह मन प्रधान ह और सारे कम मनोमय हैं। जब अपना मन बरा या भला होता ह तब कायिक और वाचिक कृत्य भी उसके मुताबिक बर या भले होते हैं।

बौद्धकम विचारणा म कर्मों का विभाजन अनक प्रकार से किया गया है। बुद्धघोष ने इन्हें चार प्रकार से विभाजित किया ह (१) कृत्य के अनुसार (२) विपाक देन के पर्याय से (३) विपाक के काल के अनुसार (४) विपाक के स्थान के अनुसार। सर्वास्तिवादी कर्मों का विभाजन किंचित निम्न प्रकार से करत थे।

**कर्म विपाक के सम्बन्ध में बौद्ध और जन दृष्टिकोण**

कम और विपाक की प परा से यह ससार चक्र प्रवर्तित होता रहता ह। भगवान् बद्ध कहत है कि कम से विपाक प्रवर्तित हात ह और विपाक से कम उत्पन्न होता है। कर्म से पुनज म होता है और इस प्रकार यह ससार प्रवर्तित होता ह। बौद्ध दार्शनिक भी कर्म और विपाक के सम्बन्ध म इसे स्वीकार करते हैं। कहा गया है कि कम और विपाक के प्रवर्तित होन पर वृक्ष बीज के समान किसीका पूव छोर नहीं जान पडता है। बौद्ध-दार्शनिको के अनुसार जसे किसी बीज के भुन जान पर उस बीज की दष्टि से बीज-वृक्ष की परपरा समाप्त हो जाती ह वैसे ही व्यक्ति के राग द्वेष और मोह का प्रहाण हो जान पर व्यक्ति की कम विपाक-परपरा का अन्त हो जाता ह। जन-दार्शनिको के अनुसार भी राग-द्वेषरूपी कम बीज के भन जाने पर कर्म प्रवाह की परपरा समाप्त हो जाती है।

अब प्रश्न यह उठता ह कि क्या एक यक्ति अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल दूसर व्यक्ति को दे सकता है? क्या व्यक्ति अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों

---

१ मनोपुब्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।

धम्मपद गाथा-सख्या १।

२ विसुद्धिमग्ग भाग २ प २ ४।

३ सिस्टम्स ऑफ बुद्धिस्टिक थाट सोगेन यामाकामी पृ १५ ।

४ मज्झिमनिकाय (किरिसुत्त ३।१।३) तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३१४।

का ही भोग करता है अथवा दूसरों के द्वारा किये हुए शुभाशुभ का फल भी उसे मिलता है ? इस सन्दर्भ में दोनों दर्शनों के दृष्टिकोण पर भी विचार कर लेना आवश्यक है ।

बौद्ध-दृष्टिकोण के सम्बन्ध में आचाय नरेन्द्रदेव लिखते हैं कि सामान्य नियम यह है कि कम स्वकीय है जो कर्म करता है वही ( सन्तान प्रवाह की अपेक्षा से ) उसका फल भोगता है । किन्तु पालि निकाय में भी पुण्य परिणामना ( पत्तिदान ) है । वह यह भी मानता है कि मृत की सहायता हो सकती है । स्थविरवादी प्रेत और देवों को दक्षिणा देते हैं अर्थात् भिक्षुओं को दिये हुए दान ( दक्षिणा ) से जो पुण्य सचित होता है उसको देते हैं । बौद्धो के अनसार हम अपने पुण्य में दूसरे को सम्मिलित कर सकते हैं पाप में नही । इस प्रकार बौद्ध विचारणा कुशल कर्मों के फल-सविभाग को स्वीकार करती है । जैन विचारणा के अनसार प्राणी के शुभाशुभ कर्मों के प्रतिफल में कोई भागीदार नही बन सकता । जो व्यक्ति शुभाशुभ कर्म करता है वही उसका फल प्राप्त करता है । उत्तराध्ययनसूत्र म स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ससारी जीव स्व एव पर के लिए जो साधारण कर्म करता है उस कर्म के फलभोग क समय बन्धु बान्धव ( परिजन ) हिस्सा नही लेते । इसी ग्रथ में प्राणी की अनाथता का निणय करते हुए यह बताया गया है कि न तो माता पिता और पुत्र-पौत्रादि ही प्राणी का हिताहित करने में समर्थ हैं । इस प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र में कर्म-फल-संविभाग को अस्वीकार किया गया ह ।

इस प्रकार बौद्ध विचारक न केवल कर्मों के विपाक में नियतता और अनियतता को स्वीकार करते हैं वरन् दोनो की विस्तत व्याख्या भी करते हैं । वे यह भी बताते हैं कि कौन कर्म नियत विपाकी होगा । प्रथमत वे कर्म जो केवल कृत नहीं किन्तु

---

१ बौद्धधर्म-दर्शन पृ २७७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३१६ ।

२ कत्तारमेव अणुजाइकम्म ॥

उत्तराध्ययन १३।२३ ।

कम्मस्सते तस्स उवेय-काले

नबन्धवा बन्धवय उवेन्ति ॥ वही ४।४ ।

३ त मे तिगिच्छ कुव्वन्ति चाउप्पाय जहाहिय ॥

नय दुक्खा विमोएइ एसामज्झ अणाहया ॥

वही २ ।२३–३ ।

उपचित भी है नियत विपाक कम हैं। दूसरे वे कम जो तीव्र प्रसाद ( श्रद्धा ) और तीव्र क्लेश ( राग-द्वष ) से किय जात हैं नियत विपाक कम हैं। बौद्ध-दशन की यह धारणा जैन-दशन से बहुत कुछ मिलती जुलती ह। लेकिन प्रमुख अन्तर यही है कि जहाँ बौद्ध दशन तीव्र श्रद्धा और तीव्र राग द्वेष दोनो अवस्था म होनेवाले कम को नियत विपाकी मानता है वहाँ जैन-दशन मात्र राग द्वेष ( कषाय ) की अवस्था म किये हुए कर्मों को ही नियत विपाकी मानता ह। दोनो ही इस बात से सहमत हैं कि मातृवध पितृवध तथा धम सघ और तीथ तथा ध प्रवतक के प्रति किये गये अपराध नियत विपाकी होते हैं।

कमवाद के दाशनिक और नतिक पक्ष के अतिरिक्त भगवान बुद्ध उसके सामाजिक पक्ष म भी विश्वास करत थे। सामाजिक क्षेत्र म वह जन्मजात वणव्यवस्था में बिल्कुल विश्वास नही करत थ। उनका कहना था कि कोई भी वर्णव्यवस्था ज म के आधार पर स्थापित नही की जा सकती है। बुद्धोपदिष्ट चातुवर्णी शुद्धि का आधार कम ही ह। चाह शूद्र हो या अ य कोई प्राणी यदि वह स्मृति प्रस्थान आदि की भावना करता ह तो निर्वाण का साक्षा कार करता है। कर्म मनुष्य मनुष्य म भेद नही करता। पुण्य कर्म से आयु की वृद्धि होती ह और बत्तीस महापुरुष-लक्षण भी मनुष्य पूवज म के किय कर्मों के परिणामस्वरूप पाता है। कहन का तात्पय यह है कि विश्व की व्यवस्था में कम ही प्रधान है। इसलिए मनुष्य को अधिक-से-अधिक शुभकम करना चाहिए। इसीलिए भगवान् बुद्ध ने कम प्रतिशरण बनने का उपदेश दिया था। वे बुद्धशरण और कमशरण म कोई भेद नही मानते थे। उनका कहना था कि जिसका कम अच्छा है वह बुद्ध के समीप ह चाहे वह उनसे सौ योजन की दूरी पर भी हो। जिसका कर्म बुरा है वह बुद्ध से दूर है चाहे वह उनकी सघाटी के छोर को पकडकर उनके पैरो के पीछ पैर रखता हुआ ही चल रहा हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि कमवाद का सिद्धा त बौद्धधम की आधारशिला है।

जैन-दशन म कम शब्द के अनेक अथ मान गये हैं। साधारणत कम शब्द का

१ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३२४।

२ अग्गञ्ज-सुत्त ( दीघनिकाय ३।४ )।

३ चक्कवति-सीहनाद-सुत्त ( दीघनिकाय ३।३ )।

४ लक्खणसुत्त ( दीघनिकाय ३।७ )।

५ सघाटिसुत्त ( इतिवुत्तक )।

अर्थ क्रिया होता है[1] अर्थात् जो कुछ किया जाता है वह कर्म है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि जीव के राग-द्वेषरूप परिणामों के निमित्त से जो रूपी अचेतन द्रव्य जीव के साथ सम्बद्ध होकर ससार में भ्रमण कराते हैं कर्म हैं।[2] कर्म के बीज राग और द्वेष हैं कर्म मोह से उत्पन्न होता है कम जन्म-मरण का मूल है और ज म-मरण ही दु ख है।[3] यह जीव द्वारा किये जाने के कारण कर्म कहलाता है। कर्म जब आत्मा के साथ बन्ध को प्राप्त होते हैं तो वे मुख्य रूप से आठ रूपों में परिवर्तित हो जाते हैं जिन्हें कर्मों के मुख्य प्रकार कह सकते हैं। आठ मूल कर्मों या कर्म प्रकृतियों के नाम क्रमश इस प्रकार हैं (१) ज्ञानावरणीय (२) दर्शनावरणीय (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय कर्म।[4] इनम प्रथम चार कर्मों को घातिया कम कहते हैं क्योंकि ये आत्मा के गुणों का घात करते हैं। शेष चार कर्म अघातिया हैं क्योंकि ये आत्मस्वरूप का घात नही करते। ग्र थ म इसीलिए चार घातिया कर्मों के विनष्ट होने पर जीव को जीवन्मुक्त मान लिया गया है।[5] क्योंकि शेष चार अघातिया कम आयु के पूण होने पर एक साथ बिना

---

१ जन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३ ५।

२ उत्तराध्ययन ३३।१ १६।

३ रागो य दोसो वि य कम्मबीय
कम्म च मोहप्पभव वयति।
कम्म च जाई मरणस्स मूल
दुक्ख च जाई मरण वयति॥

वही ३२।७।

४ नाणस्सावरणिज्ज दसणावरण तहा।
वेयणिज्ज तहा मोह आउकम्मं तहेव य॥
नामकम्म च गोय च अन्तराय तहेव य।
एवमेयाइ कम्माइ अट्ठेव उ समासओ॥ वही ३३।२ ३ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ १५४–१६१।

५ पसत्य जोग पडिवन्नेयणं अणगारे अणन्तघाइपज्जवे खवेइ।

उत्तराध्ययन २९।८।

वेयणिज्ज आउय नामंगोत्त च एए चत्तारि विकम्मं से जुगव खवेइ।

वही २९।७३ और आगे २९।४२ ५९ ६२।

विशेष प्रयत्न के नष्ट हो जाते हैं। नीचे आठों कर्मों के स्वरूप आदि का वर्णन किया जा रहा है—

१ ज्ञानावरणीय कर्म

जिसके द्वारा पदार्थों का स्वरूप जाना जावे उसका नाम ज्ञान है तथा जो कर्म ज्ञान का आ छादन करनेवाला हो वह ज्ञानावरणीय कम है। ज्ञान पाँच प्रकार का है। यथा—( १ ) श्रुतज्ञानावरण ( २ ) आभिनिबोधिक ज्ञानावरण ( ३ ) अवधि ज्ञानावरण ( ४ ) मन पययज्ञानावरण ( ५ ) केवलज्ञानावरण।

२ दशनावरणीय कम

पदार्थों के सामा य बोध का नाम दशन है। अत जिस कम के द्वारा इस जीवात्मा का सामान्य बोध आवृत हो जावे उसे दशनावरणीय कहते हैं। इस कम के ९ भेद गिनाय गये ह जिसम प्रथम पाँच निद्रा से सम्बन्धित हैं तथा अन्य चार दशन सम्बन्धी है ( १ ) निद्रा ( २ ) निद्रा निद्रा ( ३ ) प्रचला ( ४ ) प्रचला प्रचला ( ५ ) स्त्यानगृद्धि ( ६ ) चक्षुदशनावरण ( ७ ) अचक्षुदशनावरण ( ८ ) अवधिदशनावरण ( ९ ) केवलदशनावरण।

३ वेदनीय कम

जिस कम के द्वारा सुख-दु ख का अनुभव किया जावे उसका नाम वेदनीय कम

---

१ उत्तराध्ययन ३२।१ ९।

२ नाणावरण पचविह सुय आभिणिबोहिय।
आहिनाण च तइय मण नाणं च केवल ॥ वही ३३।४ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन प १५४।

३ निद्दातहेव पयला निद्दानिद्दा पयल पयलाय।
तत्तोय थीण गिद्धी उ पचमा होइ नायव्वा ॥
चक्खुम चक्ख ओहिस्स दसण केवले य आवरणे।
एव तु नवविगप्पं नायव्व दसणा वरण ॥ उत्तराध्ययन ३३।५ ६ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पु १५५।

४ वेयणीय पिय दुविह सायमसाय च आहिय।
सायस्स उ बहू भया एमेव असायस्स वि ॥
उत्तराध्ययन ३३।७।

है। यह दो प्रकार का है सातावेदनीय और असातावेदनीय। इन दोनों के पुन अनेक भेद हैं जिसे ग्रन्थ म गिनाया नही गया है।

४ मोहनीय कम

जिस कर्म के प्रभाव से जीवात्मा जानती हुई भी मूढ़ता को प्राप्त हो जावे उसको मोहनीय कर्म के नाम से अभिहित किया गया है। इसके प्रमुख दो भेद हैं दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय पुन तीन प्रकार का है (१) सम्यक्त्व मोहनीय (२) मिथ्यात्व मोहनीय और (३) सम्यक्त्व मिथ्यात्व मोहनीय (मिश्र मोहनीय)। सदाचार म मूढता पैदा करनेवाले चारित्र मोहनीय कम के दो भद बताये गये हैं कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भेद ग्रन्थ म बताये गये ह और नोकषाय के सात अथवा नौ भेद हैं।

५ आयुकम

जिस कम के प्रभाव से जीवात्मा अपनी आयु को पूर्ण कर उस कम को आयु

---

१ उत्तराध्ययन ३३।७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प १५७।

२ मोहणिज्ज पि दविह दसण चरण तहा।
दसणं तिविह वुत्त चरण दुविह भवे॥
उत्तराध्ययन ३३।८ २९।७२ ५ ६ २९ ३२।१ २ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प १५७।

३ सम्मत चेव मिच्छत्त सम्मामिच्छत्तमेवय।
एयाओ तिन्नि पयडीओ मोहणिज्जस्सदसण॥
उत्तराध्ययन ३३।९ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५७ १५८।

४ चरित्तमोहण कम्म दुविह तु वियाहियं।
कसाय मोहणिज्ज च नोकसायं तहेवय॥
उत्तराध्ययन ३३।१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५८।

५ सोलस विहभेएणं।
कम्मं तु कसायजं॥ उत्तराध्ययन ३३।११ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५९।

६ सत्त विह नवविह वा कम्म च नोकसायज॥
उत्तराध्ययन ३३।११ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १५९ १६ ।

कर्म कहते हैं। चार गतियों के आधार से इसके चार भेद किये गये हैं[1] (१) नरकायु (२) तिर्यगायु (३) मनुष्यायु और (४) देवायु। यहाँ एक बात विशेष ध्यान रखने की है कि ग्रन्थ म सूत्राथ चिन्तन का फल बतलाते हुए लिखा है कि इससे जीव आयुकर्म को छोडकर शेष सात कर्मों के प्रगाढ बन्धन को शिथिल कर देता है। किन्तु आयुकम का बन्ध विकल्प से करता है। इससे स्पष्ट है कि आयुकम शेष सात कर्मों से कुछ भिन्नता रखता है।

६ नामकर्म

शरीर आदि की रचना का हेतु जो कम है उसको नामकम कहते हैं। यह दो प्रकार का है शुभनाम और अशुभनाम। इस कर्म के प्रभाव से ही जीव को शुभाशुभ शरीर इन्द्रिय आदि की प्राप्ति होती है।

७ गोत्रकम

जिसके द्वारा जीवात्मा ऊच-नीच कुल में उत्पन्न हो अर्थात ऊच-नीच सज्ञा से सम्बोधित किया जावे उसका नाम गोत्रकम है। इसके उच्च और निम्न दो भेद हैं।

८ अन्तरायकम

जो कम दान आदि में विघ्न उपस्थित कर देवे उसकी अन्तराय सज्ञा है। कहने का अथ यह है कि देनेवाले की इच्छा तो देन की हो और लेनेवाले की इच्छा लेने की हो परन्तु ऐसी दशा में भी दाता और याचक की इच्छा पूरी न हो यह

---

१ नेरइय तिरिक्खाउ मणुस्साउतहेवय।
देवाउय चउत्य त आउकम्म चउव्विह॥

उत्तराध्ययन ३३।१२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६ ।

२ अणुप्पे हाएण आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ धणिय बधणबद्धाओ सिढिल-बंधणबद्धाओ पकरेइ आउय चणकम्म सियबन्धइ सियनो बन्धइ।

उत्तराध्ययन २९।२३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६ ।

३ नामकम्म तु दुविह सुहमसुह च आहिय।
सुहस्स उबहूभेया एमेव असुहस्सवि॥

उत्तराध्ययन ३३।१३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६१।

४ गोयकम्मं दुविह उच्च नीय च आहिय।
उच्च अट्ठविह होइ एव नीय पि आहिय॥

उत्तराध्ययन ३३।१४।

जिस कर्म के कारण सम्भव होता है उसे जैन-परिभाषा में अन्तरायकर्म कहा गया है। इसके पाँच भेद ग्रन्थ में गिनाये गये हैं यथा—दानान्तराय लाभान्तराय भोगा न्तराय उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की विभिन्न स्थितियाँ भी बतायी गयी हैं जो इस प्रकार हैं —

| कर्म | अधिकतम समय | न्यूनतम समय |
|---|---|---|
| १ ज्ञानावरणीय | तीस कोटाकोटि सागरोपम | अन्तमुहूत |
| २ दशनावरणीय | | |
| ३ वेदनीय | | बारह मुहूत |
| ४ मोहनीय | सत्तर कोटाकोटि सागरोपम | अन्तर्मुहूत |
| ५ आयु | तैंतीस सागरोपम | |
| ६ नाम | बीस कोटाकोटि सागरोपम | आठ मुहूत |
| ७ गोत्र | | |
| ८ अन्तराय | तीस कोटाकोटि सागरोपम | अन्तर्मुहूर्त |

उपयक्त स्थितियाँ कर्मों के मूल भेदों की अपेक्षा से ही हैं। इस स्थिति की सीमा के अन्दर कम अपना फल दिखाकर नष्ट हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये नये कम आते रहते हैं।

इस तरह यद्यपि कर्मों का वणन पूर्ण हो जाता है परन्तु कर्मों के रूपी होने पर भी उन्हें इन नग्न नत्रों से देखना सम्भव नहीं है। यह कैसे समझा जाय कि अमुक प्रकार के कम का बन्ध हुआ है इसके लिए ग्रन्थ मे कमलेश्याओं का वर्णन किया गया है जिसका अर्थ होता है आत्मा के बधे हुए कर्मों के प्रभाव से व्यक्ति में उत्पन्न

१ दाणे लाभे य भोगेय उवभोगे वीरिएतहा ।
पचविहमंतराय समासेण वियाहिय ।।

उत्तराध्ययन ३३।१५ ।

२ उदहीसरिनामाण तीसई कोडिकोडिओ ।

नामगोत्ताण उक्कोसा अट्ठमुहुत्ताजहान्नेया ।।
वही ३३।१९-२३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६३ ।

होनेवाला अध्यवसाय विशेष । लेश्या के वर्णन द्वारा उत्तराध्ययन में व्यक्ति के आचरण के अनुसार शुभाशुभ फल का कथन किया गया है । व्यक्तियों के अच्छे और बुरे आचरण को तरतम भाव से छह भागो में विभक्त करके तदनुसार ही छह लेश्याओं के स्वरूप का वर्णन किया गया है । क्रमश उनके नाम है—कृष्ण नील कापोत तेज

---

१ उत्तराध्ययन ३४।३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १६५ ।

२ पचासवप्पवत्तो तीहिं अगुत्तो छस अविरओय ।
तिव्वारम्भपरिणओ खुददो साहसिओ नरो ॥
निद्धन्धसपरिणामो निस्ससो अजिइदिओ ।
एयजोगसमाउत्तो किण्हलेसतु परिणम ॥

उत्तराध्ययन ३४।२१ २२ ३४।४ १ १६ २८ २ ३३ ३४ ४३ ४५ ४८ ५६ ५८–६ ।

३ इस्सा अमरिस-अतवो अवि ज-माया अही-
गेद्धी पओसे य सढ रिया य ।
पमत्ते रसलोलए सायगवे सए य ॥
आरम्भाओ अविरओखुद्दो साहस्सिओ नरो ।
एय जोगसमाउत्तो नील लेस तु परिणमे ॥

वही ३४।२३ २४ ३४।५ ११ १६ १८ २ ३३ ३५ ४२ ४९ ५६ ५८–६ ।

४ वके वक समायारे नियडि ले अण जुए ।
पलिउचग ओवहिए मि छादिटठी अणारिए ॥
उप्फालग दुटटवाईय तण यावि य मच्छरी ।
एय जोगसमाउत्तो काउलेस तु परिणमे ॥

वही ३४।२५ २६ ३४।६ १२ १६ १८ २ ३३ ३६ ४ ४१ ५ ५६ ५ –६ ।

५ नीयावित्ती अचवले अमाई अकु ऊहले ।
विणीयविणाग दन्ते जोगव उवहाणव ॥
पियधम्मे दढधम्मे वज्जभीरु हिएसए ।
एय जोगसमाउत्तो तेउलेस तु परिणम ॥

वही ३४।२७ २८ ३४।७ १३ १७ १९ २ ३३ ३७ ४ ५१–५३ ५७–६ ।

पद्म और शुक्ल।

कर्म और लेश्याओं के वर्णन से स्पष्ट है कि दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। पुण्यरूप कर्मों से शुभ लेश्याओं की प्राप्ति और पापरूप कर्मों से अशुभ लेश्याओं की प्राप्ति होती है। कर्मों का अभाव होने पर इनका भी अभाव हो जाता है।

इस प्रकार दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि बौद्ध और जैन दोनो परम्पराओं का कर्मवाद में विश्वास था। वास्तव में यह दोनों की आधारशिला है। इसम व्यक्ति के मन में उठनेवाले विचारों का विश्लेषण किया गया है। इसे आधुनिक वैज्ञानिक शब्दावली में बौद्ध मनोविज्ञान तथा जैन-मनोविज्ञान कह सकते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार प्राणियों की विचित्रता का प्रधान कारण कर्म है। प्राणी अच्छे या बुरे कर्मों के कारण दुःख भोगता है। ये कर्म जब आत्मा से सयुक्त होते हैं तो उसके स्वभाव को दूषित कर देते हैं। आत्मा स्वभाव को भूलकर विभाव म परिणति करने लगता ह जिससे वह पुन नये कर्मों से सयुक्त होता है। इस प्रकार प्राणी अनादिकाल से कर्म-परम्परा में उलझा हुआ है। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कर्मों का आत्मा के साथ सयुक्त होने रूप बन्ध की प्रक्रिया में कर्म स्वत प्रवृत्त होते हैं न कि ईश्वर की इच्छा से जैसा कि हिन्दू-धर्म में माना गया है।

---

१ पयणुक्कोह-माणय माया-लोभे य पयणुए।
पसन्नचित्ते दन्तप्पा जोगव उवहाणव॥
तहा पयणुवाई य उवसन्ते जिइन्दिए।
एय जोगसमाउत्तो पम्हलेस तु परिणमे॥
उत्तराध्ययन ३४।२९ ३ तथा ३८।८ १४ १७ १९ २ ३३ ३८ ४ ४५ ५४ ५७–६।

२ अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता धम्मसुक्काणि झायए।

एय जोगसमाउत्तो सुक्कलेस तु परिणमे॥
वही ३४।३१ ३२ तथा ३४।९ १५ १७ १९ २ ३३ ३९ ४ ४६ ५५ ५७–६।

३ पालि-साहित्य का इतिहास उपाध्याय भरतसिंह पृ ३३५ भारतीय सस्कृति में जैनधर्म का योगदान पृ २२३।

४ देखिए ज्ञानावरण कर्म।

५ भारतीय दर्शन की रूपरेखा पृ १७।

६ जैनधर्म पृ १४५–१४७।

बौद्धधर्म के अनुसार भी ससार की विचित्रता सत्त्व के कर्मों के द्वारा उद्भूत है। इस विचित्रता का कर्ता किसी बुद्धिमान् को मानना ठीक नही है क्योंकि अन्ततोगत्वा उस बुद्धिमान् को विषमता के दोष से बचाने के लिए सत्त्वकृत कर्मों को मुख्य कारण मानना ही पडता है। सत्त्व जब अपने पुराने अर्जित कर्मों का फल भोगता है तो उस समय उसके चित्त म राग द्वेष मोह रूप भाव होते हैं। इस प्रकार कर्म एव कमफल की धारा अनादिकाल से चली आ रही है। धम्मपद के अनुसार भी सत्त्व के कर्म तथा कर्मफल म ईश्वर को किसी भी रूप में कारण नही माना है। अन्त म कम के सम्बन्ध में बौद्ध और जैन-परम्परा के महत्त्वपूर्ण भेद भी स्मरणीय है। बौद्ध कर्म को मूलत चेतना मानते थे और जैन परम्परा म कम के पौद्गलिक रूप पर जोर था तथा बौद्ध कम को किसी कर्ता का व्यापार नही स्वीकार करते थे जब कि जैन परम्परा म इसे जीव का व्यापार माना जाता था।

## अनुप्रेक्षा ( भावना )

*अनुप्रेक्षा का अर्थ ह गहन चिन्तन क्योकि आत्मा का विशुद्ध चिन्तन होने के कारण इनम सासारिक वासना विकारो का कोई स्थान नही रहता और साधक विकास करता हुआ मोक्षाधिकारी होने म समथ होता ह। अनुप्रेक्षा वह तत्त्व ह जिससे जीव आयुकम को त्यागकर अन्य गाढ बन्धनो से बाँधी हुई सातो कम की प्रकृतियो को शिथिल बन्धनोंवाली कर देता है और यदि वे लम्ब काल की स्थितिवाली हो तो उन्हें अल्पकाल की स्थितिवाली बना देता है तथा यदि वे तीव्र अनुभाग रसवाली हो तो उनको मन्द बहुप्रदेशी हो तो अल्पप्रदेशी बना डालता ह। इस तरह वह अनन्त दीघ मागवाले चतुगतिरूप ससार-जगल को शीघ्र ही पार कर जाता ह।*

जैन-दशन म अनुप्रेक्षाओ की महती प्रतिष्ठा है। *अनुप्रेक्षा सासारिक चेतन व अचेतन पदार्थो से मोह हटाने तथा शारीरिक भोगों के प्रति विरक्ति के लिए बारह अनुप्रेक्षाय या भावनाओ का चिन्तन व मनन किया जाता है।* व इस प्रकार है

---

१ बौद्धधम-दर्शन पृ २४१।

२ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ ८४।

३ अणुप्पेहाएण आउय वज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ धणिय बन्धण बद्धाओ सिढिल बन्धणबद्धाओपकरेइ।

उत्तराध्ययन २९।२३।

४ भारतीय संस्कृति में जैनधम का योगदान पृ २६१।

( १ ) अनित्य ( २ ) अशरण ( ३ ) संसार ( ४ ) एकत्व ( ५ ) अन्यत्व ( ६ ) अशुचि ( ७ ) आस्रव ( ८ ) संवर ( ९ ) निर्जरा ( १० ) लोक ( ११ ) बोधि ( १२ ) धर्म । यद्यपि इनके क्रम में कहीं कहीं किंचित् अन्तर दीख पड़ता है परन्तु प्रकारों में अन्तर नहीं है ।

१ अनित्य भावना

संसार के प्रत्येक पदार्थ को अनित्य एवं नाशवान् मानना अनित्य भावना है । उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि यह संसार अनित्य है इसकी कोई भी वस्तु स्थिर नहीं ऐसा जानकर आसक्ति को छोड़कर आत्मचिन्तन में प्रवृत्त होना ही श्रेयस्कर है । अतएव धीर पुरुष को मुहूर्तभर भी प्रमाद नहीं करना चाहिए । अतः हे पांचाल देश के राजा ! मेरे वचन को सुनकर तू घोर हिंसा अर्थात् पंचेन्द्रिय जीवों का वध मत कर । यह मनुष्य का निवास अशाश्वत अर्थात् स्थिर रहनेवाला नहीं है तथा इसमें अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित होते हैं और आयु भी दीर्घ नहीं है । तात्पर्य यह है कि मनुष्य-सम्बन्धी इन विनश्वर सुखों में किंचिन्मात्र भी प्रसन्नता नहीं है । यह जीवन और रूप जिसमें कि तू मूर्च्छित हो रहा है बिजली के चमत्कार के समान अति चंचल है । क्योंकि उपभुक्त अथवा अनुपभुक्त दोनों ही दशाओं में इसकी विनश्वरता निश्चित है फिर ऐसे विनाशशील पदार्थ में कामभोगों के लिए आसक्त होना किसी प्रकार से भी बुद्धिमत्ता का काम नहीं । इसके अतिरिक्त इस शरीर में जो सौन्दर्य होता है वह भी जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है । इसलिए प्रिय और अप्रिय दोनों वस्तुओं के संयोग में मध्यस्थता रखते हुए संसार के किसी भी पदार्थ में

---

१ जया सव्वं परिच्चज्ज गन्तव्वमवसस्स ते ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि किं रज्जम्मि पसज्जसि ।।

उत्तराध्ययन १८।१२ ।

२ वही १३।३१ ।

३ वही १३।२६ ।

४ असासयं दट्ठु इमं विहारं बहुअन्तरायं न य दीहमाउं ।

वही १४।७ ।

५ जीवियं चेव रूवं च विज्जुसंपाय-चंचलं ।
जत्थ तं मुज्झसी रायं । पेच्चत्थं नावबुज्झसे ।।

वही ८।१३ ।

६ वही १९।१४ तुलनीय धम्मपद १७ ।

आसक्त नहीं होना चाहिए। ग्रन्थ में गौतम स्वामी को लक्ष्य में रखकर शरीर की अनित्यता का प्रतिपादन करते हुए भगवान् महावीर कहते हैं कि हे गौतम! तेरा शरीर इस समय जीर्ण हो रहा है क्योंकि वय की हानि प्रति समय हो रही है। जो केश पहले काले थे अब श्वेत हो चले और सभी बल भी क्षीण होता जा रहा है। इस प्रकार ससार को अनित्य अस्थिर नाशवान समझना और ऐसा चिन्तवन करना ही अनित्य भावना है।

बुद्ध ने अपने उपासकों को अनेक प्रकार से अनित्यता का बोध कराया है। धम्मपद में कहा गया है कि इस शरीर को फेन के समान क्षणभगुर समझकर तथा मृगतृष्णा के समान असार जानकर मार के पुष्पमय बाणों को काटकर यमराज की दृष्टि से परे हो जाय। मेरा पुत्र है मेरा धन है इस प्रकार मख परेशान होता है जब मनुष्य आप ही अपना नहीं है तो पुत्र और धन कहाँ तक होंगे? इसलिए भगवान् कहते हैं इस समय तुम पीले पत्ते के समान हो और तुम्हारे पास यम के दूत भी उपस्थित हो गये हैं। तुम वियोग के मुख पर खड़े हो पर तुम्हारे पास पाथेय भी नहीं है। ससार के सब पदार्थ अनित्य हैं इस तरह जब बुद्धिमान् पुरुष जान जाता है तब वह दुःख नहीं पाता।

२ अशरण भावना

जन्म जरा एव मृत्युरूप भयों से कोई भी किसीकी रक्षा नहीं कर सकता और इन भयों से दूर होने का उपाय आत्मा से ही सम्भव है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि जिस प्रकार सिंह मृग को पकड़कर जबरन ले जाता है उसी प्रकार अन्त समय में मृत्यु भी मनुष्य को उठा ले जाती है। उस समय माता पिता भाई स्त्री

---

१ उत्तराध्ययन २१।१५।

२ वही १।२६ इसी सन्दर्भ में गाथा संख्या १।२१ २२ २३ २४ और २५ देखिए।

३ फेणूपम कायमिमं विदित्वा मरीचिधम्मं अभिसम्बुधानो।
छेत्वान मारस्स पपुप्फकानि अदस्सनमच्चुराजस्स गच्छे॥

धम्मपद ४६।

४ वही ६२।

५ वही २३५ २३७।

६ वही २७७।

आदि कोई भी उसके दु ख में हिस्सेदार नहीं होते परलोक में साथ नहीं आते । वे अपनी आयु देकर भी मृत्यु से नहीं बचा सकते ।

धम्मपद में भी यही बात कही गयी है कि निद्रित गाँव को जैसे बाढ़ बहा ले जाती है वैसे ही वासनाओं में जिसका मन चिपका हुआ है वह मनुष्य इधर अपनी मनोकामना के फूल गूँथता रहता है और उधर मृत्यु हो जाती है । ऐसे मनुष्य को और जिसकी कामों से अभी भी तृप्ति नही हुई है उसको मृत्यु तो विवश कर ही देती है । मृत्यु से पकड हुए मनुष्य की रक्षा के लिए न पुत्र न पिता न बन्धु आ सकते हैं । किसी सम्बन्धी से रक्षा नहीं हो सकती । इस तरह मृत्यु के वश में सबको जानकर सम्यक अनुष्ठान करनेवाला बुद्धिमान् पुरुष शीघ्र ही निर्वाण के मार्ग को साफ करे ।

३ संसार भावना

ससार की दु खमयता का विचार करना ससार भावना है । उत्तराध्ययनसूत्र म कहा गया है जन्म दु खमय है बुढ़ापा दु खमय है रोग और मरण भी दु खमय है यह सम्पूण ससार दु खमय है जिससे प्राणी क्लेश को प्राप्त हो रहे हैं । यह लोक मृत्यु से पीड़ित ह जरा से घिरा हुआ है और रात दिनरूपी शस्त्रधारा से त्रुटित कहा गया है ।

धम्मपद में कहा गया है कि जैसे मनुष्य पानी के बलबले को देखता ह और जैसे वह मृगमरीचिका को देखता है वैसे वह इस ससार को देखे । इस प्रकार देखन

---

१ जहेह सीहो व मिय गहाय मच्चुनर नेइहु अतकाले ।
न तस्स माया व पिया व भाया कालम्मितम्म सहरा भवन्ति ॥
उत्तराध्ययन १३।२२ २३ ६।३ १९।१५ ६।११ १४।१२ ३९ ४।५ ६।६ ।

२ धम्मपद ४७ ४८ ।

३ वही २८७–२८९ ।

४ उत्तराध्ययन १९।१६ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२८ ।

५ उत्तराध्ययन १४।२३ १९।४६ ४७ ७१ ७३ ७४ २१ २४ १४।२४ २७ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२८ ।

वाले को यमराज नही देखता। यह हसना कैसा और यह आनन्द कैसा जब चारों तरफ बराबर आग लगी हुई ह ? अन्धकार से घिरे हुए प्रकाश को क्यों नही देखते हो ?

४ एकत्व भावना

उत्तराध्ययन के अनुसार मनुष्य अकेला ही ज मता ह और अकेला ही मरता है हर हालत म उसका कोई साथी नही ह ऐसा विचारना एकत्व भावना है। इसके अन्तगत साधक यह चिन्तन करता ह कि जीव सवथा अकेला ही रहता है। जन्म से बाल्यावस्था युवावस्था बढ़ापा और मृत्यु के समय तक उसे कोई दूसरा सहायक नहीं बन पाता। चाहे जितना धन वैभव घर-द्वार पुत्र-कलत्र हो मरते समय किसीका कोई साथ नही देता। यह जीव द्विपद चतुष्पद क्षत्र घर धन-धा य और सर्ववस्तु को छोडकर तथा दूसरे कम को साथ लेकर पराधीन अवस्था म परलोक के प्रति प्रयाण करता है और वही कम के अनुसार अ छी या बरी गति को प्राप्त करता है।

धम्मपद म भी एकत्व भावना का विचार उपल ध है। भगवान बुद्ध कहते हैं कि अपन से जात अपन से उत्पन्न अपने से किया हुआ पाप ही दुबद्धि मनुष्य को विदीण कर देता ह जिस प्रकार कि पाषाण से निकला वज्र पाषाणमय मणि को छेद डालता है। अपने पाप का फल मनुष्य स्वय भोगता है। पाप न करने पर वह स्वय शुद्ध रहता है प्रत्यक पुरुष का शद्ध अथवा अशुद्ध रहना उसी पर निभर है। दूसरा ( आदमी ) दूसरे को शुद्ध नही कर सकता। इसलिए कहा गया है कि जितनी हानि शत्र शत्र की या वैरी वैरी की करता ह उससे अधिक बुराई झठे माग में लगा हुआ यह चित्त करता ह।

---

१ धम्मपद १८ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ प ४२८।

२ धम्मपद १४६ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२८।

३ उत्तराध्ययन ४।४।

४ वही १३।२४ १९।७७ २ ।३७ ४८ तुलनीय धम्मपद ४२।

५ धम्मपद १६१ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२५।

६ धम्मपद १६५ तुलनीय उत्तराध्ययन २ ।३६ ३७।

७ धम्मपद ४२।

५ अन्यत्व-भावना

संसार के सभी पदार्थ मुझसे भिन्न हैं और मैं उनसे भिन्न हूँ। ऐसा विचार किया जाता है कि देहादि समस्त इन्द्रियाँ अथवा बाह्य पदार्थों से आत्मा का कोई लगाव नहीं बल्कि वे सारी चीजें आत्मा से एकदम भिन्न ही हैं। आदमी अकेला जन्मता है और अकेला मरता है। उसकी सज्ञा विज्ञान और वेदना भी व्यक्तिगत होती है। अन्यत्व भावना का मुख्य लक्ष्य साधक की बाह्य आसक्ति को कम करना है।

धम्मपद में अन्यत्व भावना का सुन्दर चित्रण नैरात्म्य-दर्शन के रूप में हुआ है। कहा गया है अहो! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही चेतनारहित होकर निरर्थक काष्ठ की भाँति पृथ्वी पर शयन करेगा। जिस प्रकार राजाओं के चित्रित रथ जीर्ण हो जाते हैं उसी प्रकार शरीर भी वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। जहाँ मूढ लोग दु खी होते हैं और ज्ञानी लोगो को आसक्ति नहीं होती। इसलिए मनुष्य स्वय की रक्षा करे क्षणभर भी न चूके। क्षण को चुके हुए लोग नरक में पडकर शोक करते हैं।

६ अशुचि भावना

शरीर की अशुचिता का विचार करना अशुचि भावना है। उत्तराध्ययनसूत्र में भी शरीर की अशुचिता एव अशाश्वतता का निर्देश है। उसमें कहा गया है कि यह शरीर अनित्य अर्थात् क्षणभगुर है और स्वभाव से अपवित्र है क्योंकि इसकी उत्पत्ति शुक्र शोणित आदि अपवित्र पदार्थों से ही देखी जाती है तथा इस शरीर की अपेक्षा से इसम निवास करनवाला जीव भी अशाश्वत ही है अथवा इसमें जीवात्मा का निवास भी अशाश्वत ही है। इसके अतिरिक्त यह शरीर नाना प्रकार के द ख और क्लेशो का भाजन है क्योंकि जितने भी शारीरिक अथवा मानसिक द ख अथवा क्लेश हैं वे सब शरीर के आश्रय से ही होत ह। इसलिए यह शरीर अनेक प्रकार के दु खों और क्लेशो का स्थान है।

---

१ उत्तराध्ययन १८।१४ १५ १३।२५।

२ धम्मपद ४१।

३ वही १५१।

४ वही १७१।

५ वही ३१५।

६ इमं सरीरं अणिच्चं असुइ असुइ सभव।
असासयावासमिणं दुक्ख-केसाणभायणं ॥
उत्तराध्ययन १९।१३।

धम्मपद में भी कहा गया है कि अनेक प्रकार के वस्त्रालकारादि से सजाये हुए किन्तु घावों से भरे हुए मास वसा मज्जा आदि से फूले हुए अनेक दु खों से पीडित तथा अनेक सकल्पोंवाले इस चित्रित शरीर को तो देखो जिसकी स्थिति स्थायी नहीं है। यह शरीर जरा-जीर्ण रोगो का घर है क्षणभगुर ह दुर्गन्ध का ढेर है और किसी समय ख ड-खण्ड हो जायेगा क्योंकि जीवन का अन्त ही मरण है।

७ आस्रव भावना

दु ख अथवा कर्मब ध के कारणो पर विचार करना आस्रव भावना है। परन्तु आस्रव से मुख्यतया पापास्रव को समझा जाता ह। इसीलिए उत्तराध्ययन म पापास्रव के पाँच भेदों का सकेत किया गया ह। बौद्ध-परम्परा म आस्रव भावना के सम्बन्ध में बुद्ध का कहना ह कि जो कर्तव्य को बिना किये छोड देत हैं और अकर्तव्य करते हैं एसे उद्धत तथा प्रमत्त लोगो के आस्रव बढ़ जाते हैं। पर तु जिनकी चेतना शरीर के प्रति जागरूक रहती है जो अकरणीय आचरण नही करत और निर तर सदाचरण करत हैं एसे स्मृतिमान् और सचेत मनुष्यो के आस्रव नष्ट हो जात ह। दूसरो के दोष देखनेवाले तथा सदा दूसरो से चिढनेवाले के आस्रव (चित्त के मल) बढ़त हैं। वह चित्त के मैलो के विनाश से दूर हटा हुआ है। लेकिन जो सदा जागरूक रहते हैं और रात दिन शिक्षा ग्रहण करत रहते हैं अर्थात अपने दोषों के क्षय और गुणो की वृद्धि करने म लगे रहते हैं और एक ही निर्वाण जिनका परायण है अन्तिम उद्देश्य है उनके आस्रव अस्त हो जाते ह।

८ सवर भावना

सवर भावना म आस्रव के विपरीत कर्मों के आगमन को रोकने के उपायों पर विचार किया जाता है। सवर भावना आस्रव भावना का विधायक पक्ष है। उत्तराध्ययन

---

१ धम्मपद १४७।

२ वही १४८ १४९ १५ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२६।

३ उत्तराध्ययन ३४।२१ १९।३४ २।४५ २९।११।

४ धम्मपद २९२ २९३ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलना मक अध्ययन भाग २ पृ ४२९।

५ धम्मपद २५३।

६ वही २२६।

सूत्र में कहा गया है कि संयम से यह जीव आस्रव से रहित हो जाता है तथा कायगुप्ति से जीव संवर को प्राप्त करता है और सवर के द्वारा कायगुप्तिवाला जीव सर्व प्रकार के पापास्रवों का निरोध कर देता है।

धम्मपद में भी सवर-भावना का उल्लेख मिलता है। बुद्ध का कथन है कि आँख का सवर ( सयम ) उत्तम है कान का सवर उत्तम ह प्राण का सवर उत्तम है जीभ का सवर उत्तम है। काया वाणी और मन का सवर भी उत्तम ह। जो सवत्र सवर करता है वह द खों से छट जाता है। इसलिए भिक्षु को सदैव इस सम्बन्ध में स्मृतिमान् रहना चाहिए।

९ निजरा भावना

जिन कर्मों का ब ध पहले हो चुका ह उनको नष्ट करन के उपायो का विचार करना निजरा भावना है। उत्तराध्ययनसूत्र म कहा गया है कि नाले बन्द कर देने व अन्दर के जल को उलीच-उलीचकर बाहर निकाल देने पर जैसे महातालाब सूख जाता है वैसे ही आस्रवद्वारों को बन्द कर देने और पूर्वसचित कर्मों को तपस्या के द्वारा निर्जीव करने पर आत्मा पुद्गल-मुक्त हो जाती है।

१ लोक-भावना

लोक की रचना आकृति स्वरूप आदि पर विचार करने के लिए लोक-भावना है। जन दशन के अनुसार यह लोक किसीका बनाया हुआ नही है और अनादिकाल से चला आ रहा है। आत्माए भी अनादिकाल से अपने शुभाशुभ कार्यों के अनुसार परिभ्रमण कर रही हैं। इस लोक के अग्रभाग पर सिद्धस्थान है। सिद्धस्थान के नीचे ऊपर के भाग म स्वर्ग और अधोभाग में नरक है। इसके मध्य भाग मे तिर्यञ्च एव मनुष्यो का निवास है। लोक की इस आकृति एव स्थिति पर विचार करते हुए साधक सदैव यही सोचे कि उसका आचार एसा हो जिससे उसकी आत्मा पतन के स्थानो को

---

१ उत्तराध्ययन २९।२७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४२९।

२ उत्तराध्ययन २९।५५।

३ धम्मपद ३६ ३६१ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३ ।

४ उत्तराध्ययन ३ ।५ ६।

छोड़कर ऊर्ध्वलोक में जन्म ले या लोकाग्र पर आकर मक्ति प्राप्त कर सके। यही इस भावना का सार है।

धम्मपद में भी कहा गया है कि नीच धर्म का सेवन नही करना चाहिए प्रमाद से दूर रहना चाहिए मिथ्या धारणा में नही पडना चाहिए। क्योकि ऐसा करने से आवागमन का चक्र बढ जाता है। यह लोक अन्धे के सदृश है यहां दखनेवाले ही है जाल से मुक्त पक्षी की भाँति बिरले ही स्वर्ग जाते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि यह विश्व बौद्ध-दर्शन की तरह अभावरूप नही है अपितु यह उतना ही सत्य और ठोस है जितना हम प्रतीत होता ह।

११ बोधि-दुलभ भावना

बोधि दलभ भावना के द्वारा यह चिन्तवन किया जाता ह कि सन्माग का जो बोध प्राप्त हुआ ह उसका सम्यक आचरण करना अत्यन्त दुष्कर है। इस दलभ बोध को पाकर भी सम्यक आचरण के द्वारा आत्मविकास अथवा निर्वाण को प्राप्त नही किया तो पुन एसा बोध होना अत्यन्त कठिन है। जैन विचार में चार चीजो की उपलब्धि अत्यन्त दलभ कही गयी है—ससार म प्राणी को मनुष्यत्व की प्राप्ति धर्म श्रवण शुद्ध श्रद्धा और सयम-माग में पुरुषाथ।

धम्मपद मे कहा गया है कि मनुष्यत्व की प्राप्ति दलभ है मानव-जन्म पाकर भी जीवित रहना दुलभ है कितने अकाल म मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्य बनकर सद्धम का श्रवण दुलभ है और बद्ध होकर उत्पन्न होना तो अत्यन्त दलभ है।

१२ धर्म-भावना

धर्म के स्वरूप और उसकी आत्मविकास की शक्ति का विचार करना धम भावना है। धर्म के वास्तविक स्वरूप का विचार करना आवश्यक है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि ससार में एकमात्र शरण धम ही है इसके सिवा अन्य कोई

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र का ३६वाँ अध्ययन तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ प ४३१।

२ धम्मपद १६७।

३ वही १७४।

४ उत्तराध्ययन ३।८–११ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३१।

५ धम्मपद १८२ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३२।

रक्षक नहीं है। जरा और मृत्यु के प्रवाह में वेग से डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप ही उत्तम स्थान और शरणरूप है।

धम्मपद में कहा गया है कि धम के अमृत रस का पान करनेवाला सुख की नीद सोता है उसका चित्त प्रसन्न रहता है। पण्डित पुरुष आर्यों द्वारा प्रतिपादित धम माग पर चलता हुआ आनन्दपूर्वक रहता है।

इस प्रकार इन बारह अनुप्रेक्षाओं अथवा भावनाओ के चिन्तवन से चित्त समभाव युक्त होता है जिनसे कषायों का उपशमन होता ह और सम्यक्त्व प्रकट होता ह। वैराग्य म दृढता आती ह। ससार-सम्बन्धी द ख-सुख पीडा जन्म मरण आदि का मनन चिन्तन करने से वृत्ति अन्तमखी होती है। इसी कारण इन्हें वैराग्य की जननी कहा गया है। धम्मपद म अनुप्रेक्षा श द के स्थान पर भावना का प्रयोग है और यद्यपि भावनाओ को वहाँ न उस प्रकार का पारिभाषिक महत्त्व प्राप्त है और न उनकी एक स्थान पर १२ अथवा अन्य सख्याओं के रूप म गणना है फिर भी उत्तराध्ययन की विभि न अनुप्रेक्षाओ के समानान्तर भाव धम्मपद म भी प्राप्त हो जाते हैं। ●

---

१ उत्तराध्ययन १४।४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३ ।

२ उत्तराध्ययन २३।६८।

३ धम्मपद १६९ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४३१।

अध्याय ४

# धम्मपद मे प्रतिपादित बौद्ध आचार और उसकी उत्तराध्ययन मे प्रतिपादित जैन आचार मीमासा से तुलना

आचार और विचार जीवन-यात्रा की गाडी के दो पहिये हैं तथा परस्पर सम्बद्ध हैं। डा मोहनलाल महता ने अपनी पुस्तक जन आचार म इसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है। आचार बिना विचार की प्ररणा से सम्भव नही ह और उसी प्रकार विचार को व्यावहारिक रूप देने के लिए आचार की अनिवायता होती ही है। जब तक आचार को विचारो का सहयोग प्राप्त न हो अथवा विचार आचार रूप म परिणत न हो तब तक जीवन का यथाथ विकास नही हो सकता।

अत सिद्धान्त और यवहार अथवा ज्ञान एव क्रिया अथवा विचार एव आचार के सम्यक सन्तुलन से ही व्यक्तित्व का विकास होता ह। इस द्वैत के लिए ज्ञान एव आचार शब्द का भी प्रकारा तर से प्रयोग होता है। इन दोनो की उपयुक्तता एव अनिवायता के सम्बन्ध म बताया भी गया है कि जिस प्रकार अभीष्ट स्थान पर पहुचने के लिए निर्दोष आँख व पैर दोनो आवश्यक हैं उसी प्रकार आध्यात्मिक सिद्धि के लिए दोषरहित ज्ञान एव चारित्र दोनों अनिवाय हैं। दूसर शब्दो म ज्ञानविहीन आचरण नत्रहीन पुरुष की गति के समान ह जब कि आचाररहित ज्ञान पगु पुरुष की स्थिति के सदृश है।

भारतीय दशनो म आचार एव विचार दोनो को समान अधिकार दिया गया है। आचार एव विचार को ही प्रकारान्तर से क्रमश यवहार और सिद्धान्त अथवा क्रिया एव ज्ञान अथवा धम एव दशन कहा गया ह।

## अष्टाङ्गिक माग

बौद्धधम का चौथा आयसत्य दु खनिरोधगामिनी प्रतिपदा का अपर नाम आय अष्टाङ्गिक माग ह। यह अष्टाङ्गिक माग बौद्धधम की आचार मीमासा का चरम साधन है। इस मार्ग पर चलने से प्रत्यक व्यक्ति अपने दुःखो का नाश कर निर्वाण प्राप्त कर लेता है। इसलिए यह समस्त मार्गों में श्रेष्ठ माना गया है। आय

---

१ देख जैन आचार मेहता मोहनलाल पृ ५।

२ मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो। धम्मपद २७३।

अष्टांगिक मार्ग बुद्ध शासन में निश्चय ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अपने सर्वप्रथम प्रवचन (धम्मचक्कपवत्तनसुत्त) में भगवान् ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को इसका उपदेश दिया था और मध्यमा प्रतिपदा के साथ इसकी एकात्मकता दिखाई थी। यही वह मार्ग है जिसे तथागत ने खोज निकाला। मध्यमा प्रतिपदारूपी आर्य अष्टांगिक मार्ग अरण धर्म है और यही ठीक मार्ग है। यह मार्ग आँख खोल देनेवाला है ज्ञान करा देनेवाला है। यह शासन अभिज्ञा बोध और निर्वाण की ओर ले जानेवाला है। भगवान ने कहा है कि निर्मल ज्ञान की प्राप्ति के लिए यही एक मार्ग है और दूसरा कोई मार्ग नहीं। इस मार्ग पर चलने से तुम दु ख का नाश करोगे।

सम्पूर्ण धम्मपद के अनुशीलन करने से यह ज्ञात होता है कि बौद्धधर्म के अनुसार शील समाधि और प्रज्ञा ये तीन मुख्य साधन हैं। अष्टांगिक मार्ग इसी साधना त्रय का पल्लवित रूप है। बौद्धधर्म में आचार की प्रधानता है। तथागत निर्वाण के लिए तत्त्वज्ञान के जटिल मार्ग पर चलने की शिक्षा कभी नहीं देते प्रत्युत तत्त्वज्ञान के विषय प्रश्नों के उत्तर में वे मौनावलम्बन ही श्रेयस्कर समझते हैं। आचार पर ही उनका प्रधान बल है। यदि अष्टांगिक मार्ग का पालन किया जाय या आश्रय लिया जाय तो शान्ति अवश्य प्राप्त होगी। भगवान के उपदेश का यही सार है। मार्ग पर आरूढ होना अत्यन्त आवश्यक है। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—उद्योग तुम्हें करना होगा। उपदेश के श्रवणमात्र से दु खनिरोध कथमपि नहीं होगा। उसके लिए आवश्यक है उद्योग करना। तथागत का काम तो केवल उपदेश देना है। उस पर चलना भिक्षुओं का काम है। उस आर्य अष्टांगिक मार्ग में आरूढ होकर ध्यान में रत होनेवाले व्यक्ति ही मार के बन्धन से मुक्त होते हैं अन्य पुरुष नहीं। इसलिए भिक्षु को तथागत के उपदिष्ट धर्म में उद्योगी हो सत्-अर्थ में अप्रमादी एवं आत्मसंयमी

---

१ अरणविभंगसुत्तन्त मज्झिमनिकाय ३।४।९।

२ धम्मचक्कपवत्तनसुत्त। संयुत्तनिकाय।

३ एसोव मग्गो नत्थञ्ञो दस्सनस्स विसुद्धिया।
एतं हि तुम्हे पटिपज्जथ मारस्सेतं पमोहनं॥
एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्ञाय सल्लसन्थनं॥

धम्मपद २७४ २७५।

४ तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति झायिनो मारबन्धना॥

वही २७६।

ही विहार करना चाहिए। इससे बढकर उद्योग तथा स्वावलम्बन की शिक्षा दूसरी कौन हो सकती है।

प्राय आर्य अष्टांगिक मार्ग को तथागत के मूल उपदेशो में माना जाता है। श्रीमती रीज डविड्स ने अष्टांगिक मार्ग को बुद्ध की मूलदेशना का अग होने पर शका की है। अगुत्तरनिकाय के अष्टक निपात और दीघनिकाय के सगीति पर्यायसूत्र म आठ अग ( सम्यग्दृष्टि ) आदि का उल्लेख न होने से इस मा यता पर प्रश्नचिह्न खडा हो गया है। सम्भव ह कि आरम्भ म मध्यम मार्ग से अथ केवल दो अतियो का परिहार था और आठ अग बाद म जोड गय। लेकिन ये आठ अग ३७ बोधि पक्षीय धर्मों म भी गिनाये जाते हैं। कही-कही सप्ताङ्ग और दशाङ्ग मार्ग के रूप म भी इसका वर्णन पाया जाता है। इसलिए इसे मूल देशना से बहिर्भूत नही किया जा सकता। इस स्थिति म अष्टांगिक मार्ग को धमदेशना का मल भाग स्वीकार करने म कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

**मध्यमा प्रतिपदा**

भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट माग मध्यममाग या मध्यमा प्रतिपदा कहलाता है क्योकि यह सैद्धान्तिक और यावहारिक दोनो दष्टियों से दोनो अन्तो का परिहार करता है। जो कहता है कि आ मा ह वह शाश्वत दृष्टि से पूर्वान्त म अनुपतित होता है। जो कहता है कि आ मा नही है वह उच्छेद दृष्टि के दूसरे अ त म अनपतित होता है। शाश्वत और उच्छेदवाद दोनो अ तो का परिहार कर भगवान मध्यमा प्रतिपद ( माग ) का उपदेश करते हैं। इसी तरह एक अन्त काम-सुखानुयोग है दूसरा अन्त आत्मक्लमथानुयोग ( शरीर को कठिन तप से पीडा देना ) ह। भगवान दोनों अन्तों का परिहार करत हैं। भगवान कहते हैं कि देव और मनुष्य दो दृष्टियों से अनुगत रहते हैं। केवल चक्षष्मान ही यथाभत देखता है जब भव निरोध के लिए धम की देशना होती है तो उनका चित्त प्रसन्न नही होता। इस प्रकार वे इसी ओर रह जाते हैं। दूसर भव से जुगुप्सा कर विभव का अभिनन्दन करत हैं। वे मानते ह कि उच्छद ही शाश्वत और प्रणीत है। वे अतिधावन करत ह। चक्षष्मान भत को भतत देखता है। वह भत के विराग निरोध के लिए प्रतिपन्न होता है। यह मध्यममाग आय अष्टा गिक माग ह। भगवान यह नही कहते कि मझ पर श्रद्धा रखकर बिना समझे ही मेरे

१ शाक्य रीज डविड्स टी डब्ल्य पृ ८९।
२ बौद्धधम के विकास का इतिहास प ११७।
३ अभिधम्मत्थसगहो पर हिन्दी प्रकाशिनी व्याख्या पृ ७८४।
४ देखें दीघनिकाय ३।२५२ प ११४ २९२ २४ ।

धम को मानो । भगवान् कहते हैं कि मेरा धर्म एहिपस्सिक और पच्चत्तं वेदितव्व है । अर्थात् भगवान् सबको निमन्त्रण देते हैं कि आओ और देखो इस धम की परीक्षा करो ।[1] प्रत्येक को अपने चित्त में उसका अनुभव करना होगा । यह ऐसा धम नही है कि एक माग की भावना करे और दूसरा फल का अधिगम करे । दूसरे के साक्षात्कार करने से इसका साक्षात्कार अपने को नही होता । इसलिए भगवान् कहते हैं कि हे भिक्षुओ तुम अपन लिए स्वय दीपक हो दूसरे की शरण मत जाओ ।

आर्य अष्टांगिक मार्ग के प्रत्येक अग का विशिष्ट स्वरूप

१ सम्यक दृष्टि

दृष्टि का अथ ज्ञान है । सत्काय के लिए ज्ञान की भित्ति आवश्यक होती है । आचार और विचार का परस्पर सम्बन्ध नितान्त घनिष्ठ होता है । विचार की भित्ति पर ही आचार खडा होता है । इसलिए आचार-माग में सम्यक दृष्टि पहला अग मानी गई है । जो व्यक्ति अकुशल को तथा अकुशल मूल को जानता है कुशल तथा कुशल मूल को जानता है वही सम्यक दृष्टि से सम्पन्न माना जाता ह । सम्यग्दृष्टि के बिना शील और समाधि की प्राप्ति नही होती न ही बिना शील और समाधि के सम्यग्दृष्टि की । धम्मपद म कहा गया है कि जो दोषयुक्त काय को दोषयुक्त जानकर तथा दोषरहित काय को दोषरहित जानकर यथाय धारण करते हैं व प्राणी सम्यक दृष्टि को धारण करके सद्गति को प्राप्त होत हैं । दु ख द खसमुदय द खनिरोध और द खनिरोधगामिनी प्रतिपद इन चार आय सत्यों का यथाथ ज्ञान सम्यग्दष्टि है । सम्यग्दृष्टि के परिणामस्वरूप ही सदाचार की प्राप्ति होती है । धम्मपद में कहा गया है कि जो शील और सम्यक दर्शन से युक्त अर्थात सम्यक दष्टि से सम्पन्न धर्म मे स्थित सत्यवादी और अपने कार्यों को करनेवाला ह उसे लोग प्रिय बताते हैं ।

---

१ दीघनिकाय प्रथम भाग पृ ७५ ।

२ वही द्वितीय भाग पृ ८ ।

३ वज्ज च वज्जतो ञत्वा अवज्जञ्च अवज्जतो ।
सम्मादिटठिसमादाना सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं ॥
धम्मपद ३१९ ।

४ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३३ ।

५ सील दस्सनसम्पन्न धम्मटठ सच्चवादिन ।
अत्तनो कम्मकुब्बान तं जनो कुरुते पिय ॥
वही २१७ ।

सम्यग्दृष्टि कुशल-अकुशल का ज्ञाता होता है। वह अकुशल को छोड कुशल का उपार्जन करता है। कायिक वाचिक तथा मानसिक सभी कर्म दो प्रकार के होते हैं कुशल ( भले ) और अकुशल ( बुरे )। इन दोनो को भलीभाँति जानना सम्यक दृष्टि है। दीघनिकाय में इन कर्मों का विवरण इस प्रकार है—

| | अकुशल | कुशल |
|---|---|---|
| कायकम | १ प्राणातिपात ( हिंसा ) | १ अ हिंसा |
| | २ अदत्तादान ( चोरी ) | २ अ चौर्य |
| | ३ मिथ्याचार ( व्यभिचार ) | ३ अ-व्यभिचार |
| | ४ मृषावचन ( झूठ ) | ४ सत्य बोलना |
| वाचिकम | ५ पिशुन वचन ( चुगली ) | ५ अ पिशुन वचन |
| | ६ परुष वचन ( कटु वचन ) | ६ अ-कटुवचन |
| | ७ सम्प्रलाप ( बकवाद ) | ७ अ-सप्रलाप |
| | ८ अभिध्या ( लोभ ) | ८ अ-लोभ |
| मानसकम | ९ व्यापाद ( प्रतिहिंसा ) | ९ अ प्रतिहिंसा |
| | १ मिथ्यादष्टि | १ मिथ्या दृष्टि न होना। |

२ सम्यक संकल्प

सक प का अथ दढ निश्चय ह। सकल्प के अनेक अथ हैं—इ छा इरादा विचार मनोरथ आदि। ठीक इच्छा या इरादा अथवा विचार ही सम्यक सक प है जिसका सम्ब ध चित्त के साथ रहता है। यह चित्त कुशल एव अकुशल दोनो दिशाओं म ही हो सकता ह। चित्त में पहले हिंसात्मक रागयुक्त विचार उठत है। जब ये अधिक बलवान होते हैं तब मिथ्या सक प कहलात हैं। इनका ही प्रतिपक्षी सम्यकसक प है। धम्मपद म कहा गया है कि जो असार को सार और सार को असार समझते है वे मिथ्या सकल्प में पड व्यक्ति सार को प्राप्त नही करते हैं। लेकिन जो असार को असार और सार को सार समझते हैं वे सम्यक सक प से युक्त यक्ति सार को प्राप्त करते हैं।

सम्यक सक प तीन प्रकार का होता है जि हें नष्क्रम्य अव्यापाद एव अवि हिंसा सकल्प कहा जाता है।

---

१ असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनो।
ते सार नाधिगच्छन्ति मिच्छासङकप्पगोचरा ॥
सार च सारतो नत्वा असारञ्च असारतो।
ते सार अधिगच्छन्ति सम्मासङकप्पगोचरा ॥
धम्मपद ११ १२।

सभी कुशल धर्मों से सप्रयुक्त वितक नष्क्रम्य सम्यक सकल्प हैं। इसे यों भी कह सकते हैं कि अव्यापाद एव अविहिंसा से अवशिष्ट निर्दिष्ट सभो वितक नैष्क्रम्य सम्यक सकल्प हैं।

व्यापाद शब्द का अथ हिंसा या परविनाश चिन्ता है इसका विपरीत भाव मत्री ही अव्यापाद है। इसलिए सभी प्राणियों के प्रति हिंसा से विरत होकर मैत्रीपूर्ण व्यापार करने का दृढ निश्चय ही अव्यापाद है। धम्मपद में कहा गया है कि इस ससार में वैर से वैर कभी शान्त नही होते अपितु अवैर ( मैत्री ) से ही शान्त होते हैं।

हिंसा से विरत होना या हिंसा के विचार का न होना ही अविहिंसा सम्यक-सकल्प है। धम्मपद में कहा गया है कि जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से मारता ह वह मरकर सख नहीं पाता और जो सख चाहनेवाले प्राणियों को अपने सुख की चाह से दण्ड से नही मारता है वह मरकर सुख पाता है।

३ सम्यक वाक

ठीक भाषण—झठ वचन और बकवास का त्याग सम्यक वचन कहे जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने सम्यक वचन का कथन निषधात्मक शैली से दिया है यथा मिथ्यावचन से विरति ही सम्यक वचन है।

---

१ अभिधम्मत्थसग्गहो पर हिन्दी प्रकाशिनी व्याख्या पृ ७५८। तुलनीय दीघ निकाय १।६३ प ५५ मज्झिमनिकाय १।२६७ प ३२८ सुत्तनिपात ४ ७ ( पब्बज्जासुत्त )।

२ नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

धम्मपद गाथा-सख्या ५।

३ सुखकामानि भतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्चसोन लभते॥
सुखकामानि भूतानि यो दण्डन सुखं न हिंसा।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुख॥

वही १३१ १३२।

४ सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसहिता।
एक अत्थ पद सेय्यो य सुत्वा उपसम्मति॥

वही १ ।

४ सम्यक कर्मान्त

अष्टांगिक माग का चौथा अग सम्यक कर्मान्त है। मनुष्य की सदगति या दुर्गति का कारण उसका कम ही होता है। कम के ही कारण जीव इस लोक में सुख या दु ख भोगता है तथा परलोक म भी स्वग या नरक का गामी बनता है। धम्मपद का कथन है कि असत्यवादी नरक म जाते हैं और वह मनुष्य भी जो किसी काम को करके भी नही किया ऐसा कहता है। दोनो प्रकार के नीच कम करनेवाले मनुष्य मरकर एक समान होते हैं। अतएव मनुष्य को चाहिए कि सब प्रकार के बरे कर्मों का परित्याग कर दे और पचशील का आचरण कर।

दीघनिकाय म हिंसा चोरी और काम मिथ्याचार से विरत रहना सम्यक कर्मान्त बतलाया गया ह। धम्मपद म कहा गया है कि जो धीर पुरुष काय वाणी और मन से सयत रहते हैं वास्तव में वे ही सुसयमित हैं।

५ सम्यक आजीव

ठीक आजीविका। आय श्रावक मिथ्या आजीव ( झठी जीविका ) को छोडकर सम्यक आजीव से जीविका चलाता ह। बिना जीविका के जीवन धारण करना कठिन ह वस्तुत असम्भव ह। मानवमात्र को शरीर रक्षण के लिए कोई न कोई जीविका ग्रहण करनी ही पडती है। परन्तु यह जीविका अ छी होनी चाहिए जिससे दूसरे प्राणियो को न तो किसी प्रकार का क्लेश पहुचे और न उनकी हिंसा का अवसर आवे। भगवान बद्ध ने उस समय की पाँच जीविकाओ को हिंसाप्रवण होने से अनुचित ठहराया है

१ हथियार का यापार
२ प्राणियो का व्यापार
३ मास का यापार
४ शराब का रोजगार और
५ विष का व्यापार।

---

अभूतवादी निरय उपेति यो वापिकत्वा न करोमि चाह।
उभो पि त पेच्च समा भवं त निहीनकम्मा मनुजा परत्थ॥
धम्मपद गाथा-सख्या ३ ६।

२ धम्मपद २४६ २४७ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३३।

३ दीघनिकाय २।३१२ पृ २३३।

४ कायन सवुता धीरा अथो वाचाय सवता।
मनसा सवुता धीरा ते वे सुपरिसवता॥ धम्मपद गाथा सख्या २३४।

५ दीघनिकाय द्वितीय भाग प २३३।

इस प्रकार के साधनों के माध्यम से जीविकोपार्जन करना हीन माना गया है। इनसे विरत होकर ऐसे कार्यों द्वारा जीविका उपार्जन करना जिससे किसीकी हानि न हो सम्यक आजीविका है। जीविकोपार्जन के साधनों में सवत्र निर्दोष ढग को ही श्रेष्ठ बताया गया है।

धम्मपद से प्रकट है कि जिस प्रकार भ्रमर विभिन्न पुष्पों पर आकर उनसे रस लेकर अपनी जीविका चलाता है उसी प्रकार भिक्षु गाँवों में विचरण करते हुए बिना किसी पर भारस्वरूप बने जीविकोपार्जन करे।

६ सम्यक व्यायाम

ठीक प्रयत्न शोभन उद्योग। भिक्षु अनुत्पन्न पापों को न उत्पन्न होने देने के लिये इच्छा उत्पन्न करता है उनसे प्रयत्नपूर्वक अपने चित्त को रोकता है। इसी प्रकार वह उत्पन्न पापों के नाश और अनुत्पन्न सुकर्मों के उत्पाद के लिए इच्छा उत्पन्न करता है। उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति अ नाश वद्धि विपुलता एव पूर्णता के लिए इच्छा उत्पन्न करता है। यही सम्यक व्यायाम है। सत्कर्मों के करने की भावना करने के लिए प्रयत्न करत रहना चाहिए। इन्द्रियो पर सयम बरी भावनाओ को रोकने और अच्छी भावनाओ के उत्पाद के प्रयत्न और उत्पन्न अच्छी भावनाओं को कायम रखने के प्रयत्न य सम्यक व्यायाम हैं। बिना प्रयत्न किये चचल चित्त से शोभन भावनाय दूर भागती जाती ह और बरी भावनाय घर जमाया करती हैं। अत यह उद्योग आवश्यक है।

७ सम्यक स्मृति

स्मृति का अर्थ है जागरूकता। इस अग का विस्तृत वर्णन दीघनिकाय के महासतिपट्ठानसुत्त में प्राप्त है। स्मृति प्रस्थान चार है—(१) कायानुपश्यना (२) वेदनानुपश्यना (३) चित्तानुपश्यना और (४) धर्मानुपश्यना। इन चारों स्मृति प्रस्थानो की भावना करने को सम्यक स्मृति कहते हैं।

स्मृति का अभ्यासी कायानुपश्यना का अभ्यास करते हुए इस शरीर को विश्लेषण द्वारा समझने का यत्न करता है। वह इसे जानन-पहचानने का यत्न करता

१ यथापि भमरो पुप्फ वण्णगन्ध अहेठय।
फलेति रसमादाय एव गामे मुनी चरे॥

धम्मपद गाथा-सख्या ४९

तुलनीय दशवैकालिक गाथा-सख्या २।

२ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३३ २३४।

३ वही २।३१३ पृ २३४ मज्झिमनिकाय १।५६ पृ ७७।

है कि यह काया अचिरस्थायी है। मृत्यु के पश्चात जब यह शरीर श्मशान म फेंक दिया जाता है तो फूलकर उवण हो जाता है। उसमें कीट हो जाते हैं जिसे काक श्रृगाल खाकर क्षत विक्षत कर देते हैं। स्मृतिभाव का अभ्यासी यह देखते-सोचते हुए कि वह श्मशान भमि में जो विवर्ण पतितकाय ह वही यह शरीर है अपन शरीर से आसक्ति का निवारण करता है। शरीर ग दगी की राशि है। जल के बुलबलो की तरह उत्पन्न विलीन होनवाला मृग मरीचिका के समान धोखा देनेवाला और क्षण भगुर है। स्मृति के द्वारा काया के प्रति ऐसे अभ्यास को कायानुपश्यना कहा जाता है। धम्मपद में कहा गया है कि जिन्ह नित्य कायगता-स्मृति उपस्थित रहती है वे अकर्तव्य को नही करते और कर्तव्य को निरन्तर करनेवाले होते हैं। ऐसे स्मृतिमान और बद्धिमानों के चित्तमल अर्थात् आस्रव अस्त हो जाते हैं।

वेदनानुपश्यना का अथ वेदनाओ के प्रति जागरूकता ह। यह वेदना पाँच प्रकार की होती ह—(१) सुखावेदना (२) सौमनस्यवेदना (३) दु खावेदना (४) दौर्मनस्यवेदना और (५) उपेक्षावेदना।

चित्तानुपश्यना का अर्थ चित्त के प्रति जागरूकता है। चित्त अनेक प्रकार क होते हैं यथा—सराग वीतराग सदोष वीतदोष समोह वीतमोह समाहित असमाहित चित्त आदि।

धर्मों के प्रति जागरूकता का नाम धर्मानुपश्यना ह। धम शब्द से यहाँ पाँच नीवरण (कामच्छन्द व्यापाद स्त्यानमृद्ध औद्ध य-कौकृत्य और विचिकित्सा) पाँच

---

१ यथा बुब्बुलक पस्से यथापस्सेमरीचिक।
एव लोक अवक्खन्त म च्चराजानपस्सति॥

धम्मपद गाथा-सख्या १७ ।

२ य सन्च सुसमारद्धानिच्च कायगतासति।
अकिच्चन्ते न सेवन्ति किच्च सात च्चकारिनो।
सतान सम्पजानान अत्य गच्छन्ति आसवा॥

वही २९३।

३ बौद्ध-दशन तथा अन्य भारतीय दशन भाग १ पृ ३६६।

४ बौद्ध-दशन-मीमांसा पृ ५८।

५ मातर पितर हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्थिये।
वेयग्घपञ्चम हन्त्वा अनीघो याति ब्राह्मणो॥

धम्मपद २९५।

उपादान स्कन्ध ( रूप वेदना संज्ञा संस्कार और विज्ञान ) छह आभ्यन्तरिक और बाहरी आयतन। सात बोध्यंग[1] एवं चार आर्य सत्यों का अर्थ ग्रहण किया गया है। इन धर्मों को उनके यथार्थरूप में जानना धर्मानुपश्यना है।

इस प्रकार ये चारों ही स्मृत्युपस्थान सत्वों की विशुद्धि का एकमात्र मार्ग है। इनसे ही भिक्षु आत्मशरण और अनन्यशरण होकर विहार करता है। धम्मपद में कहा गया है कि स्मृतिमान लोग ध्यान विपश्यना आदि में लगे रहते हैं वे आलस्य में रत नहीं होते। जिस प्रकार हंस जलाशय का परित्याग कर चले जाते हैं उसी प्रकार वे लोग गृहों को त्याग देते हैं।

८ सम्यक समाधि

समाधि चित्त की एकाग्रता के अर्थ में प्रयुक्त है। सम्यक समाधि का अर्थ है—ठीक समाधि यथार्थ समाधि। समाधि से चित्त को एकाग्र किया जाता है चित्त का दमन किया जाता है क्योंकि एकमात्र चित्त के दमन से सभी दान्त हो जाते हैं। धम्मपद म इसीलिए कहा भी गया है कि चित्त का दमन करना अ छा है चित्त का दान्त होना सुखावह ह। चित्त कुशलाकुशल धर्मों म प्रवृत्त होता है। इसलिए भिक्षु कामवासनाओ से अलग हो बराइयो से अलग हो वितक और विचारयुक्त विवेक से उत्पन्न प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है और इसी प्रकार

---

१ योचवस्स सतजीव अपस्स उदयब्बय।
एकाह जीवितं सेय्यो पस्सतो उदयब्बय॥

धम्मपद ११३।

२ चक्षु श्रोत्र घ्राण जिह्वा काय और मन—ये छ भीतरी आयतन हैं वैसे हो रूप शब्द गन्ध रस स्पर्श और धर्म—ये छ बाहरी।

३ स्मृति धम विचय वीय प्रीति प्रश्रब्धि समाधि और उपेक्षा।

४ दु ख द खसमुदय दु खनिरोध और द खनिरोधगामिनी प्रतिपद।

५ महासतिपट्ठान ( दीघनिकाय २।९ )।

६ उय्युन्जन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते।
हंसा व पल्लल हित्वा ओकमोक जहन्ति ते॥

धम्मपद ९१।

७ मज्झिमनिकाय १।३ १ पृ ३७१।

८ चित्तस्स दमन साधु चित्त दान्त सुखावह॥

धम्मपद ३५।

क्रमश द्वितीय तृतीय और चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो विहार करता है। यह सम्यक समाधि कही जाती है।

अस्तु बौद्धो के इन्ही आठ अगो से युक्त माग का नाम अष्टागिक मार्ग या मध्यमा प्रतिपदा है। य आठ अग ही बौद्ध-साधना के प्रथम आधारभूत अग हैं। इन्हीके माध्यम से त्रिपाद सम्बन्धित बौद्ध साधना प्रारम्भ होती है।

बौद्धधम का अन्तिम लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति ह। निर्वाण-पद की प्राप्ति के लिए ही अष्टागिक माग का कथन किया गया ह जिसे क्रमिक अभ्यास की दृष्टि से तीन पादों में विभक्त किया गया है शील समाधि और प्रज्ञा। सम्यक वचन सम्यक कर्म एव सम्यक आजीवक का सम्मिलित नाम ही शील ह। सम्यक यायाम सम्यक स्मृति सम्यक समाधि को ही समाधि कहते हैं। सम्यक दृष्टि सम्यक सकल्प का ही नाम प्रज्ञा है।

इस दृष्टि से बौद्धधम के स्वरूप को समझने के लिए शील समाधि प्रज्ञा का ज्ञान होना निता त आवश्यक ह। इन तीनो के बोध होने के पश्चात ही इस धम की ओर गति एव प्रवृत्ति हो सकती ह। इन तीनो को जान बिना बौद्धधम का वास्तविक स्वरूप जानना अत्यन्त कठिन ह। शील समाधि और प्रज्ञा के विविध आधारभूत वर्गीकरण म सम्पूर्ण बद्ध-शासन आ जाता है। शील सदाचार का पर्याय वाची शब्द है। समाधि हमारे चित्त की एकाग्र अवस्था का ही नाम ह। बिना शील के समाधि की प्राप्ति सम्भव नही। प्रज्ञा को कुशल चित्त युक्त ज्ञान भी कहा गया है। प्रज्ञा की उच्चतम अवस्था ही सम्यक सम्बोधि है। शील समाधि और प्रज्ञा के रूप में बौद्ध-साधना-पद्धति का विस्तत विवचन आचाय बद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग म किया है।

## जैन-साधना माग

उत्तराध्ययनसूत्र में मोक्ष के साधन चार बताये गये हैं—(१) ज्ञान (२) दशन (३) चारित्र और (४) तप। ज्ञान से त व जाना जाता है और दर्शन (सम्यक्त्व) से तत्त्व के प्रति श्रद्धा होती है चारित्र से आनेवाले कर्मों का निरोध होता है और तप से पूवसञ्चित कम क्षीण होते हैं इसलिए चारो समुदित रूप से

१ दीघनिकाय द्वितीय भाग प २३४।

२ चूलवेदल्ल-सुत्तन्त (मज्झिमनिकाय १।५।४)।

३ नाण च दसण चेव चरित्त च तवोतहा।
एय मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छन्ति सोग्गइ॥

उत्तराध्ययन २८।३।

मोक्ष या आत्मोपलब्धि के साधन हैं। बौद्धों की तरह जैन-परम्परा में भी मोक्ष के प्रत्येक साधन के पूर्व सम्यक विशेषण जुड़ा हुआ है।

१ सम्यग्दर्शन ( तत्त्व श्रद्धा )

सम्यग्दर्शन शब्द का अर्थ है सत्य का देखना। सत्य का पूर्ण साक्षात्कार बिना ज्ञान के सम्भव नही है और दर्शन को ज्ञान की पूर्वावस्था माना गया है। अत सत्यभूत जो ९ तथ्य है उनके सदभाव में विश्वास करना सम्यग्दर्शन है। जैन-दर्शन में सम्यग्दर्शन के गुणरूप पाँच चिह्न बतलाए गए हैं जिनका उत्तराध्ययन में शब्दत कथन तो नहीं मिलता फिर भी सम्यक्त्व के प्रसग में उनमे प्रत्येक चिह्न से युक्त गुणों का फल अवश्य बतलाया गया है। उन चिह्नो के नाम हैं —( १ ) सवेग ( २ ) निर्वेद ( ३ ) अनुकम्पा ( ४ ) आस्तिक्य ( ५ ) प्रशम। उत्तराध्ययन में सवेग निर्वेद और आस्तिक्य ( अनुत्तर धर्म श्रद्धा ) को एक दूसरे का पूरक बतलाते हुए ततीय ज म का अतिक्रमण किए बिना कर्मों का क्षय करके आत्मविशुद्ध होकर मोक्ष का अधिकारी कहा है। इस तरह सम्यग्दर्शन प्रशम सवेग निवद अनुकम्पा और आस्तिक्य इन पाँच गुणों से युक्त होना है तथा जब तक इन पाँच गुणो की प्राप्ति नहीं होगी तब तक जीवादि नव तथ्यो म श्रद्धा उत्पन्न नही हो सकती हैं। जीवादि नव तथ्यो म श्रद्धा होना सम्यग्दर्शन है तथा इनमें श्रद्धा न होना मिथ्यात्व या मिथ्या दर्शन

---

१ नाणण जाणई भाव दसणेण यसद्दहो।
चरित्तेण निगिण्हाइ तवेण परिसज्झई ॥ उत्तराध्ययन २८।३५।

२ तहियाण तुभावाण स भावे उव एसण।
भावेण सद्दहतस्स सम्मत्त त वियाहिय ॥

वही २८।१५ तथा
उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १९७।

३ भारतीय सस्कृति में जैनधम का योगदान पृ २४२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १९८।

४ सवेगेण भते। जीवे किंजणयइ ? सवेगेण अणुत्तर धम्मसद्ध जणयइ। अणुत्तराए धम्मसद्धाए सवेग हव्वमागच्छइ। अण ताणुबन्धिकोहमाण मायालोभे खवेइ। नव च कम्म न बधइ। तप्पच्चइय च णं मिच्छत्त विसोहिं काऊण दसणा राहए भवइ। दसण विसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थे गइए तेणेव भवग्ग हणणं। सिज्झई। विसोहीए य ण विसुद्धाए तच्च पुणो भवग्गहण नाइक्कमई। उत्तराध्ययन २९।१ २ ३ १८।१८ २१।१ २९।६ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ १९८।

है। इसीलिए ग्रन्थ में संवेगादि की प्राप्ति को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

सम्यग्दर्शन निम्न आठ विशेष बातों पर निर्भर करता है जो सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहलाते हैं

(१) निःशंकित (२) निःकांक्षित (३) निर्विचिकित्सा (४) अमूढ़दृष्टि (५) उपबृंहा (६) स्थिरीकरण (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। इनमें से प्रथम चार गुण तो अन्तरङ्ग हैं और शेष चार बहिरङ्ग। इन आठ गुणों के द्वारा दर्शन प्रदीप्त होता है। इसके अतिरिक्त सम्यक्त्व की दृढ़ता के लिए उत्तराध्ययन में निम्न तीन गुण आवश्यक बतलाए गए हैं—(१) तत्त्व का संस्तव (२) तत्त्व वेत्ता महापुरुषों की उपासना तथा (३) सन्मार्ग से भ्रष्ट और कुमार्ग में प्रवृत्ति रखनेवालों के संसर्ग का परित्याग। इसके अतिरिक्त सम्यक्त्व के विघातक जितने भी दोष हो सकते हैं उन सबका त्याग जरूरी है। ग्रन्थ में ऐसे कुछ दोषों का त्याग आवश्यक बतलाया गया है परन्तु उनका व्यवस्थित कथन नहीं किया गया है। यद्यपि सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का मूलकारण कर्मसिद्धान्त के अनुसार दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय या उपशम होता है परन्तु निमित्तकारणता की अपेक्षा से उत्तराध्ययन में सम्यक्त्व के निम्न दस प्रकारों की चर्चा है

---

१ सोऊण तस्स सोधम्मं अणगारस्स अन्तिए।
महया संवेगनिव्वेयं समावन्नो नराहिवो॥
उत्तराध्ययन १८।१८ २९।१ २ ३ २१।१ २९।६ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प १९९।

२ निस्संकिय निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठीय।
उववूह थिरीकरण व च्छल्लपभावणं अट्ठ॥
उत्तराध्ययन २८।३१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २ ।

३ परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठ परमत्थ सेवणावावि।
वावन्नकुदंसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा॥ उत्तराध्ययन २८।२८।

४ दण्डाण गारवाण च सल्लाणं च तियंतियं।
ज भिक्खू चयई निच्च से न अच्छइ मण्डले॥
वही ३१।४ १९।८९ ९१ २७।९ ३।३ ३१।१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प २ ।

५ निसग्गुवसरुई आणारुई सुत्त-बीयरुईमेव।
अभिगम वित्थाररुई किरिया-संखेव-धम्मरुई॥
उत्तराध्ययन २८।१६ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २ १–२१ ।

१ निसर्ग रुचि ' २ उपदेशरुचि, ३ आज्ञारुचि ' ४ सूत्ररुचि ५. बीज-रुचि ' ६ अभिगमरुचि ' ७ विस्ताररुचि ८ क्रियारुचि, ९ संक्षेपरुचि ' १० धर्मरुचि ।

उपर्युक्त दस प्रकार के सम्यक्त्व के भेदों को देखने से ज्ञात होता है कि ये सभी भेद उत्पत्ति की निमित्तकारणता को लेकर ही नही किये गये है अपितु कुछ सम्यक्त्व की हीनाधिक अवस्था विशेष के आधार पर भी किए गए हैं। इनके साथ जो रुचि शब्द जोडा गया है वह भी स्पष्ट नहीं होता है। सम्भवत यह रुचि शब्द विश्वास या श्रद्धा के उत्पन्न होने के अर्थ में प्रयुक्त है क्योंकि सम्यग्दर्शन के जो दस भेद किये गये

---

१ भयत्थेणाहिगया जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।

एमवन न्नहत्तिय निसग्गरुइत्तिनायव्वे ॥

उत्तराध्ययन २८।१७-१८ ।

२ एएचेवउभावेउवइट्ठे जो परेण सद्दहई ।
छउमत्थेण जिणण व उवएसरुइत्तिनायव्वे ॥

वही २८।१९ ।

३ रागोदोसोमोहो अन्नाण जस्स अवगय होइ ।
आणाए रोयंतो सो खलु आणारुई नाम ॥

वही २८।२ ।

४ जोसुत्तमहिज्जन्तो सुएण ओगाहई उ सम्मत्त ।
अगेण बाहिरेणव सोसुत्तरुइत्तिनायव्वो ॥

वही २८।२१ ।

५ एगेण अणेगाइं पयाइंजो पसरई उ सम्मत्तं ।
उदएव्व तेल्लबिन्दू सोबीयरुइत्तिनायव्वो ॥

वही २८।२२ ।

६ सोहोइ अभिगमरुई सुयनाणंजेण अत्थओ दिट्ठं ।
एक्कारस अंगाई-पइण्णग दिट्ठिवाओय ॥

वही २८।२३ ।

७-८ ९ १ दव्वाण सव्वभावासव्वपमाणे हिंजस्स उवलद्धा ।
...

सद्दहइ जिणाभिहिय सो धम्मरुइत्तिनायव्वो ॥

वही २८।२४ २५ २६ २७ ।

११ उत्तराध्ययन-सूत्र एक परिशीलन पृ० २०४ ।

है वे यह बतलाते हैं कि निसर्गादि की विशेषता को लिए हुए जीवादि तथ्यों में रुचिरूप सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है।

सम्यक्त्व धम का मूलाधार है। इसके अभाव मे ज्ञान और चारित्र आधारहीन है। ज्ञान और चारित्र में वृद्धि होने पर सम्यक्त्व म भी वृद्धि हो जाती है। इसे उत्तराध्ययन में बोधिलाभ शब्द से भी कहा गया है। क्योंकि इसकी प्राप्ति होने पर जीव मुक्ति के पथ पर अग्रसर हो जाता है और धीरे धीरे ज्ञान और चारित्र की पूर्णता करके मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इसके महत्त्व के ही कारण ग्रन्थ के २९वें अध्ययन का नाम जिसमें सम्यक्त्व के साथ ज्ञान और चारित्र का भी वर्णन है सम्यक्त्व पराक्रम दिया गया है।

२ सम्यग्ज्ञान ( सत्यज्ञान )

सम्यग्ज्ञान का अर्थ ह सत्यज्ञान। यहाँ घट-पटादि सांसारिक वस्तुओ को जानना मात्र सत्य ज्ञान नही ह अपितु मोक्ष प्राप्ति में सहायक ९ तथ्यो का ज्ञान अभि प्रेत है। अर्थात् सम्यक दर्शन से जिन तथ्यो पर विश्वास किया गया था उनको विधिवत् जानना। इसके अतिरिक्त जितना भी सासारिक फलाभिलाषापरक ज्ञान ह वह मिथ्या है क्योंकि वह अल्पस्थायी है। स्त्री पुत्र धन आदि जो भी सुख के साधन हैं वे सब दु ख के कारण हैं। सत्यज्ञान वही ह जो हमेशा रह। उत्तराध्ययन म वर्णित सासारिक विषयभोगों से सम्बन्धित २९ प्रकार के मिथ्याशास्त्रो से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस तरह जो ज्ञान ससार के विषय सुखो की ओर ले जाता है वह मिथ्या ह तथा जो मुक्ति की ओर अभिमुख करता है वह सत्य है।

ज्ञान के आवरक पाँच प्रकार के कर्मों के स्वीकार करन से तत्तत आवरक कर्मों के उदय म न रहने रूप पाँच प्रकार के ज्ञान स्वीकार किये गय ह —( १ ) श्रुतज्ञान ( २ ) आभिनिबोधिकज्ञान ( ३ ) अवधिज्ञान ( ४ ) मन पर्ययज्ञान और ( ५ ) केवलज्ञान। इनमें अन्त के तीन ज्ञान क्रमश उच्च उच्चतर और उच्चतम

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २ ६।

२ नाणण जाणई भावे। उत्तराध्ययन २८।३५ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २ ७।

३ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २ ७।

४ तत्थपचविह नाण सुय आभिनिबोहिय।
ओहीनाण तइय मणनाण च केवल॥
उत्तराध्ययन २८।४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २ ८।

दिव्यज्ञान की अवस्था में है। यद्यपि उत्तराध्ययन में इनके स्वरूप आदि का विशेष विचार नहीं किया गया है तथापि इनके विषय में कुछ संकेत अवश्य मिलते हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१ श्रुतज्ञान

इसका अर्थ है शब्दजन्य शास्त्रज्ञान। परन्तु सम्यक्श्रुतज्ञान वही है जो जिनोपदिष्ट प्रामाणिक शास्त्रों से होता है। जिनोपदिष्ट प्रामाणिक ग्रन्थ अग ( प्रधान ) और अगबाह्य ( अप्रधान ) के भेद से दो प्रकार के हैं। अत श्रुतज्ञान भी प्रथमत दो प्रकार का है। अग ग्रन्थों की सख्या बारह होने से अगश्रुतज्ञान भी बारह प्रकार का है तथा अगबाह्य ग्रन्थों की कोई सीमा नियत न होने से अनेक प्रकार का है। अग ग्रन्थों की प्रधानता होने से उत्तराध्ययन में समस्त श्रुतज्ञान को द्वादशाङ्ग का विस्तार कहा गया है। द्वादशाङ्ग के वेत्ता को ही बहुश्रुत कहा गया है तथा बहुश्रुत के महत्त्व को प्रकट करने के लिए सोलह दृष्टान्तों से उसकी प्रशसा की गयी है।

ये सभी दृष्टान्त साभिप्राय विशेषणों से युक्त हैं अत ग्रन्थ में श्रुतज्ञानी के कुछ अन्य सहज गुण गिनाये गये हैं जो इन दृष्टान्तो से पुष्ट होते हैं जैसे — श्रुतज्ञानी समुद्र की तरह गम्भीर प्रतिवादियों से अपराजेय अतिरस्कृत विस्तृत श्रुतज्ञान से पूर्ण जीवों का रक्षक कर्म क्षयकर्ता उत्तम अर्थ की गवेषणा करनेवाला और स्व-पर को मुक्ति प्राप्त करानेवाला होता है। इसी तरह श्रुतज्ञानी के अन्य अनेक गुण समझे जा सकते हैं। सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति में शास्त्रों का स्थान प्रमुख होने से श्रुतज्ञानी को बहुत प्रशंसा करके उसका फल मुक्ति बतलाया गया है।

---

१ उत्तराध्ययन २८।२१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २०९।

२ दुवालसंग जिणक्खाय। उत्तराध्ययन २४।३।
बारसगविऊ बुद्धे। वही २३।७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २०९।

३ जहा संखम्मि पयं निहियं दुहओ वि विरायइ।

सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया॥
उत्तराध्ययन ११।१५–३१।

४ वही ११।३२ २९।२४ ५९ १०।१८ ३।१ २ तथा उत्तराध्ययन-सूत्र एक परिशीलन पृ २११।

५ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २११।

२ आभिनिबोधिकज्ञान

चक्षु आदि इन्द्रियों और मन की सहायता से उत्पन्न होनेवाला ज्ञान आभिनिबोधिक कहलाता है। जैन-दर्शन में इसका प्रचलित नाम मतिज्ञान है क्योंकि यह इन्द्रियादि की सहायता से होता है।

३ अवधिज्ञान

अवधि का अर्थ है सीमा। जो ज्ञान इन्द्रियादि की सहायता के बिना कुछ सीमा को लेकर अन्त साक्ष्यरूप होता है वह अवधिज्ञान कहलाता है।

४ मन पर्यायज्ञान

दूसरों के मनोगत विचारों को जानने की शक्ति के कारण इसे मन पर्यायज्ञान कहा गया है। यह दिव्यज्ञान की दूसरी अवस्था है और अवधिज्ञान से श्रेष्ठ है।

५ केवलज्ञान

मोहनीय ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय कर्म के क्षय से कैवल्यज्ञान प्रकट होता है। यह ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था है। इसीलिए उत्तराध्ययन में इसे अनुत्तर सर्वप्रधान सम्पूर्ण प्रतिपूर्ण आवरणरहित अन्धकाररहित विशुद्ध लोकालोक-प्रकाशक बतलाया गया है। इस ज्ञान को धारण करनेवाले को केवली केवलज्ञानी या सर्वज्ञ कहा गया है। इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर जीव उसी प्रकार सुशोभित होता है जिस प्रकार आकाश में सूर्य। इस ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर जीव शेष कर्मों को नष्ट करके नियम से मोक्ष जाता है।

---

१ जैन-धर्म-दर्शन महता मोहनलाल पृ १५७।

२ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २१२।

३ वही पृ २१२।

४ तओ पच्छा अणुत्तर अणत कसिण पडिपुण्ण निरावरण वितिमिर विसुद्ध लोगालोगप्पभावग केवल वरनाणदसण समुप्पाडेइ।

उत्तराध्ययन २९।७२।

५ उग्ग तव चरित्ताण जायादोण्णिवि केवली। वही २२।५।

६ सन्नाणनाणोवगए महेसी अणुत्तर चरिउ धम्मसचय।
अणुत्तरे नाणधरे जससी ओभासइ सूरिए वन्तलिक्खे।

वही २१।२३।

७ जाव सजोगी भवइ ताव य इरिया वहियकम्म बन्धइ सुहफरिस दुसमयठिइय। त पढमसमए बद्ध बिइय समए वेइय तइय समए निज्जिण। त बद्ध पुट्ठ उदीरिय वेइय निज्जिण्ण सेयाले य अकम्म चावि भवइ॥

वही २९।७२।

३ सम्यक चारित्र ( सदाचार )

सम्यक् चारित्र का अर्थ है सदाचार। आचार व्यक्ति का वह मूल्य है जिसके द्वारा वह महान् से महान् और निम्न से भी निम्न बन सकता है। सदाचार व्यक्ति को नीचे से उच्च सिंहासन पर बैठा देता है और दुराचार उच्च सिंहासन से नीचे गर्त में ढकेल देता है। सम्यक दर्शन और सम्यक् ज्ञान होने पर भी यदि व्यक्ति में सदाचार नहीं है तो वह सम्यक् दर्शन और सम्यक ज्ञान निरर्थक है क्योंकि उनका प्रयोजन सदाचार में प्रवृत्ति कराना है। अत कहा गया है कि पढ़े हुए वेद व्यक्ति की रक्षा नहीं कर सकते हैं।[1] प्रश्न उठता है कि सदाचार क्या है? यदि सदाचार को एक वाक्य में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि दूसरे के साथ वैसा ही व्यवहार करना जैसा हम दूसरे से स्वय के प्रति चाहते हैं। सदाचार को उत्तराध्ययन में अहिंसा के रूप में उपस्थित किया गया है तथा इस अहिंसा के साथ सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और धन सम्पत्ति का त्याग ( अपरिग्रह ) इन चार अन्य आचारपरक नियमो को जोड़ा गया है। ये ही जैनधर्म के पाँच प्रसिद्ध व्रत है। शेष जितने भी नियम और उपनियम हैं वे सब इन पाँच व्रतों की ही पूर्णता एवं निर्दोषता के लिए है। ज्यो-ज्यों इन व्रतों के पालन से सदाचार में वृद्धि होती जाती है त्यों-त्यों व्यक्ति मुक्ति की ओर बढ़ता जाता है। इसी प्रकार ज्यो-ज्यो वह मुक्ति की ओर अग्रसर होता जाता है त्यों-त्यों पूर्वबद्ध कर्म आत्मा से पृथक हो जाते हैं और ज्यों ज्यों पूर्वबद्ध कर्म आत्मा से पृथक होते जाते हैं त्यो-त्यों आत्मा निर्मल से निर्मलतर अवस्था को प्राप्त करती हुई मुक्ति को प्राप्त कर लेती हैं।[2] चारित्र के पाँच प्रकार है —( १ ) सामायिक ( २ ) छेदोपस्थापना ( ३ ) परिहार विशुद्धि ( ४ ) सूक्ष्मसम्पराय तथा ( ५ ) यथाख्यातचारित्र।[3]

---

१ वेया अहीया न भवन्ति ताण। उत्तराध्ययन १४।१२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २२८।
पसुबन्धा सव्ववेयाजट्ठं च पावकम्मुणा।
न त तायन्ति दुस्सील कम्माणि बलवन्तिह ॥
उत्तराध्ययन २५।३०।

२ एवं चयरित्तकरं चारित्त होइ आहियं ॥
वही २८।३३।
तथा—चरित्तमायारगुणन्निए तओ अणुत्तर संजम पालियाणं।
निरासवे संखवियाणकम्मं उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥
वही २०।५२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ० २२९।

३ सामाइयत्थपढमं छेओवट्ठावणं भवेबीयं।
परिहार विसुद्धीयं सुहुमं तहसंपरायं च ॥

## ४ तप

उत्तराध्ययन में कही कहीं चारित्र से पृथक जो तप का वणन मिलता है वह उसके महत्त्व को प्रकट करने के लिए किया गया है। तप एक प्रकार की अग्नि है जिसके द्वारा सैकडो भावो के सञ्चित पर्व कर्मों को शीघ्र ही जलाया जा सकता है। ग्रन्थ म कषायरूपी शत्रुओं के आक्रमण पर विजय प्राप्त करने के लिए तप को बाण एवं अर्गलारूप बतलाया गया है। अत कभी-कभी तप को चारित्र से पथक बतलाया गया है अन्यथा वह चारित्र से पृथक नहीं है क्योंकि इसमें जो तप का वणन मिलता है वह साधु के आचार का हो अभिन्न अग है और साधु के आचार से सम्बन्धित कुछ क्रियाओ को ही यहाँ तप के रूप म बतलाया गया ह। आत्मसयम जो कि चारित्र की आधारशिला है तप उससे पृथक नही है।

तप को बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से सवप्रथम दो भागो म विभाजित किया गया है और फिर बाह्य तप और आभ्यन्तर तप को पुन छ-छ भागों म विभक्त किया गया है। इस तरह कुल मिलाकर १२ प्रकार के तपों का वणन ग्रन्थ म है। उन १२ प्रकार के तपो के क्रमश नाम है—( १ ) अनशन ( २ ) ऊनोदरी ( ३ ) भिक्षाचर्या ( ४ ) रस-परित्याग ( ५ ) कायक्लेश ( ६ ) सलीनता या विविक्त शयनासन ( ७ ) प्रायश्चित्त ( ८ ) विनय ( ९ ) वैयावृत्य ( १ ) स्वाध्याय ( ११ ) ध्यान और ( १२ ) व्युत्सग या कायोत्सग। उपयक्त म प्रथम छ तप बाह्य शरीर की क्रिया से अधिक सम्बन्धित होन के कारण बाह्य तप कहलाते हैं तथा अन्तिम छ तप आत्मा से अधिक सम्बन्धित होने के कारण आभ्यन्तर तप कहलात हैं। बाह्य तपो का प्रयोजन आभ्यन्तर तपो को पुष्ट करना है। अत प्रधानता आभ्यन्तर तपो की ह। बाह्य तप मात्र आभ्यन्तर तपों की ओर ले आने म सहायक हैं।

इस प्रकार सम्यग्दशन सम्यक ज्ञान सम्यक चारित्र तथा तप आत्मविकास की क्रमिक सीढ़ियाँ हैं मोक्षमाग के साधन हैं क्योंकि इनके द्वारा क्रम क्रम से आत्म विकास होता जाता है कषाय एव कम क्षीण होते जात हैं स्वानुभूति की परिधि का विस्तार होता जाता है तथा अन्त म एक ऐसी अवस्था आती ह जब साधक मोक्ष

---

अकसाय अहक्खाय छउमत्थस्स जिणस्वा।
एय चयरित्तकर चारित्त होइ आहिय॥

उत्तराध्ययन २८।३२ ३३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २३ ।

१ वही ९।२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३२९ ३ ।

२ उत्तराध्ययन ३ ।७८ २९ ३ २८।३४ १९।८९ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ ३३१ ।

का अधिकारी बन जाता है। जिस प्रकार किसी कार्य की सफलता के लिए इच्छा ज्ञान और प्रयत्न इन तीन बातों का संयोग आवश्यक होता है उसी प्रकार संसार के दु खों से मुक्ति पाने के लिए भी विश्वास ज्ञान और सदाचार के संयोग की आवश्यकता होती है जिसे ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के नाम से कहा गया है। ये तीनों बौद्ध-दर्शन के शील समाधि और प्रज्ञा की तरह अलग-अलग मुक्ति के तीन मार्ग नही हैं बल्कि तीनो मिलकर एक ही मार्ग रत्नत्रय का निर्माण करते हैं। यद्यपि ग्रन्थ में कहीं-कहीं ज्ञान के पहले चारित्र का तथा दर्शन के पहले ज्ञान व चारित्र का भी प्रयोग मिलता है परन्तु इनकी उत्पत्ति क्रमश होती है।

उत्तराध्ययनसूत्र म तो सम्यक ज्ञान सम्यक दर्शन सम्यक चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बताया गया है।[1] लेकिन जैन-आचार्यों ने सम्यक चारित्र म तप का अन्तर्भाव कर दिया है जिसके कारण परवर्ती साहित्य में त्रिविध साधना-मार्ग का ही विधान किया गया है। इस तरह विश्वास ज्ञान और सदाचार ही मुक्ति के प्रधान साधन हैं। ये तीनों मिलकर एक ही मार्ग का निर्माण करते हैं क्योंकि मुक्ति में साक्षात कारण चारित्र की पूर्णता मानी गयी है तथा चारित्र की पूर्णता बिना दर्शन और ज्ञान के सम्भव नहीं है। ये तीनो कारण जैन-दर्शन में रत्नत्रय के नाम से प्रसिद्ध हैं।[2]

बौद्ध-दर्शन में त्रिविध साधना मार्ग के रूप में शील समाधि और प्रज्ञा का विधान है। कहीं-कहीं शील समाधि और प्रज्ञा के स्थान पर वीर्य श्रद्धा और प्रज्ञा का भी विधान है। वस्तुत वीर्य शील का और श्रद्धा समाधि का प्रतीक है। श्रद्धा और समाधि दोनो इसलिए समान है क्योंकि दोनों म चित्त विकल्प नही होते हैं। इस

---

१ नाण च दंसण चेव चरित्त च तवोतहा।
एस मग्गुत्तिपन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥

उत्तराध्ययन २८।२।

२ नाण च दसणं चेव चरित्त चेव निच्छए ॥
वही २३।३३ तथा जैन बौद्ध और गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २१।

३ भारतीय दर्शन राधाकृष्णन् एस पृ ३२५।

४ देख जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ प २३।

५ सुत्तनिपात १।२२ तुलनीय धम्मपद ५७ २२९ २१ तथा जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ २१-२३।

अपेक्षार पर समाधि या श्रद्धा की तुलना सम्यक दर्शन से और प्रज्ञा की तुलना सम्यक ज्ञान से की जा सकती है। ऊपर उल्लेख किया गया है कि अष्टांग मार्ग के सम्यक-वाचा सम्यक-कर्मान्त और सम्यक आजीव का अन्तर्भाव शील में सम्यक व्यायाम सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि का चित्त श्रद्धा या समाधि में और सम्यक सकल्प तथा सम्यक दृष्टि का प्रज्ञा में होता है। यह भी लक्षित होता है कि जहाँ उत्तराध्ययन के सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान बौद्धो के क्रमश समाधि और प्रज्ञा स्कन्ध में आते हैं वहाँ बौद्धों का शील स्कन्ध उत्तराध्ययनसूत्र के सम्यक चारित्र में सरलता से अन्तभूत हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध और जैन-परम्पराए न केवल अपने साधन मार्ग के प्रतिपादन म बल्कि साधनत्रय के विषय में भी एक समान दृष्टिकोण रखती हैं।

## पचशील

सदाचार बौद्धधम की आधारशिला है। बौद्धधम में सदाचार को शील कहा जाता है। शील का पालन प्रत्यक बौद्धो के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति शीलों का पालन नहीं करता वह अपने को बौद्ध कहन का अधिकारी नही समझा जाता। शील से मन वाणी और काया ठीक होते हैं। सद्गुणो के धारण या शीलन के कारण ही उसे शील कहा जाता है। सक्षेप म शील का अर्थ है सब पापो का न करना पुण्य का सचय तथा अपन चित्त को परिशुद्धि रखना। बौद्ध त्रिशरण के अटल विश्वासी का शील ही मूलधन तथा शील ही मूल सबल है। इसलिए बौद्ध-सदाचार म आडम्बर को बिल्कुल स्थान नही दिया गया ह। भगवान् ने कहा है कि जिसम आकाक्षाएँ बनी हुई हैं वह चाहे नगा रह चाहे जटा बढाए चाहे कीचड लपेट चाहे उपवास करे चाहे जमीन पर सोय चाहे धल लपेटे और चाह उकडूं बठे पर उसकी शुद्धि नही आती। असली शुद्धि तो शील-पालन से होती ह। धम्मपद म शीलवान् व्यक्ति के गुणों को बतलाते हुए तथागत न कहा है— पुष्प चन्दन तगर या चमेली किसीकी भी सुगन्ध

१ सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसम्पदा।
स-चित्त परियोदपन एत बुद्धान सासन॥ धम्मपद १८३।

२ न नग्गचरिया न जटा न पङ्क।
नानासका थण्डिलसायिका वा।
रजो वजल्ल उक्कुटिकप्पधान।
सोधेन्ति मच्च अवितिण्णकङ्ख॥
धम्मपद १४१ तुलनीय उत्तराध्ययन ५।२१।

उल्टी हवा नहीं जाती किन्तु सज्जनों की सुगन्ध उल्टी हवा भी जाती है सत्पुरुष सभी दिशाओं में सुगन्ध बहाता है। चन्दन या तगर कमल या जूही इन सभी सुगन्धों से शील की सुगन्ध उत्तम है। तगर और चन्दन की जो गन्ध फैलती है वह अल्पमात्र है। किन्तु जो शीलवानों की गन्ध है वह देवताओं तक में फैलती है। जो वे शीलवान् निरालस हो विहरनेवाले यथार्थ ज्ञान द्वारा मुक्त हो गये हैं उनके मार्ग को मार नहीं पाता। शील के भौतिक लाभ चाहे जो भी हों पर उसका मुख्य लाभ आध्यात्मिक है। शीलवान् के मन में जो आत्मस्थिरता या आत्मशक्ति होती है वह दु-शील को सुलभ नहीं। शील सम्पूर्ण मानसिक ताप को शान्त कर देता है। अशान्त पुरुष सदा यही सोचा करते हैं कि उसने मुझे गाली दी मुझे मारा मुझे हराया मुझे लूट लिया। इस तरह सोचते-सोचते लोग अपने हृदय में वैररूपी आग जलाते रहते हैं। वैर का मूल कारण दु:शीलता ही है। वैराग्नि का शमन शील से ही हो सकता है। जो व्यक्ति शीलों का पालन नही करता दुराचारी हो अनेक प्रकार के पापकर्मों में ही लगा रहता है वह मानवता से च्युत समझा जाता है। उसकी दुर्गति होती है और वह जब तक सदाचारी नहीं बनता है तब तक निर्वाण-सुख को नही प्राप्त कर सकता। उसका जीवन निस्सार और हेय माना जाता है। भगवान् बुद्ध ने कहा है कि असंयमी और दुराचारी हो राष्ट्र का अन्न खाने से आग की लपट के समान तप्त लोहे का गोला खा लेना उत्तम है। इस प्रकार सदाचार के महत्त्व को जानते हुए सदाचारी बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

---

१ न पुप्फगन्धो पटिवातमेति न चन्दन तगरमल्लिका वा सतञ्च गन्धो पटिवातमेति
सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति ॥ धम्मपद ६५४।

चन्दन तगर वापि उप्पल अथवस्सिकी।
एतेस गन्धजातान सीलगन्धो अनुत्तरो ॥ वही ५५।

अप्पमत्तो अय गन्धो या च यो च सीलवत गन्धो-तगरचन्दनी।
वाति देवेसु उत्तमो ॥ वही ५६।

तेस सम्पन्न सीलान अप्पमाद विहारिन।
सम्मदञ्ञा विमुत्तान मारो मग्ग न विन्दति ॥ वही ५७।

२ अक्कोच्छि म अवधि म अजिनिमं अहासिमे।
ये तं उपनयहन्ति वेर तेसं न सम्मति ॥

वही ३।

३ सेय्यो अयोगुलो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो ॥

वही, ३०८।

जब कोई व्यक्ति बौद्धधर्म ग्रहण करता है तब उसे बुद्ध धर्म और संघ की शरण जाने के साथ ही पञ्चशील के पालन की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। पञ्चशील सदाचार के पाँच सार्वभौम नियम हैं। वे इस प्रकार है —

१ प्राणातिपात अर्थात् जीव हिंसा से विरति

२ मुसावाद या असत्य भाषण से विरति

३ अदिन्नादान या चोरी से विरति

४ परदारम्च या परस्त्रीगमन से विरति और

५ सुरामेरयपानञ्च अर्थात मद्यपान से विरति।

जो व्यक्ति इनका पालन करता है उसका आचरण पवित्र माना जाता ह। पंचशील का आरम्भ होता ह पानाति पाता वेरमणि से जिसका तात्पय है हिंसा से विरत रहना और कर्म तथा वाणी को सयमित रखना।

चूँकि पञ्चशील आचार के नैतिक नियम निर्धारित करते हैं अत इन्ह शिक्षा पद भी कहत हैं। क्योंकि ये गृहस्थमात्र के लिए आचरणीय ठहराय गय है इसलिए इन्हें गृहस्थशील भी कहत हैं।

सामान्य जन के लिए नित्य आचरणीय होने के कारण इनको नित्यशील भी कहते हैं। और क्योंकि पवित्र गुणसम्पन्न आय जन इसका अनुपालन करते हैं इसे आयकण्ठ भी कहा गया ह। नीच किञ्चित विस्तार से पञ्चशीलो म प्रत्येक का विवेचन किया गया है।

**१ प्राणातिपात विरमण**

अर्थात् अन्य जीवो की हिंसा से विरत रहना। जो व्यक्ति अन्य जीवों की हिंसा से नितान्त बचा रहता है वह मरणोपरान्त देवलोक को प्राप्त होता है। प्राणातिपात में प्राण और अतिपात दो शब्द हैं। प्राण शब्द से जीव का बोध होता है और अति पात का अर्थ शीघ्रता से गिरना अर्थात स˜वों के प्राणो का अतिशीघ्रता से या पृथक

---

१ यो पाणमतिपातति मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्न आदियति परदारञ्च गच्छति॥
सुरामरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधवमसो लोकस्मि मल खनतिअत्तनो॥

धम्मपद २४६ २४७

तथा—

अगुत्तरनिकाय ८।२५ बौद्धधर्म-दशन प २४।

होता है ।[1] इस प्रकार प्राणातिपात का अर्थ प्राणियों की हिंसा से है । मनुष्य पशु पक्षी या अन्य उद्भिज्जजीव जो प्राण से उपेत हैं उनका वध ही प्राणातिपात है । हिंसा का विरोध सभी धर्मों में किया गया है । धम्मपद में कहा गया है कि जहाँ-जहाँ से मन हिंसा से मुड़ता है वहाँ-वहाँ से दुःख अवश्य ही शान्त हो जाता है ।[2]

## २ अदत्तादान विरमण

अर्थात् दूसरो की सम्पत्ति के अपहरण से दूर रहना । वह व्यक्ति जो पर-सम्पत्ति के अपहरण से नितान्त दूर रहता है मरणोपरान्त देवलोक को प्राप्त होता है । बौद्ध और जैन दोनों परम्पराएँ इस मत से सहमत हैं कि भिक्षु को अपने स्वामी की अनुमति के बिना कोई भी वस्तु ग्रहण नही करनी चाहिए । विनयपिटक के अनुसार जो भिक्षु बिना दी हुई वस्तु ग्रहण करता है वह अपने श्रमण-जीवन से च्युत हो जाता है ।[3] संयुत्तनिकाय में कहा गया है कि यदि भिक्षु फल को सूँघता है तो भी चोरी करता है ।[4]

## ३ कामेसु मिच्छाचार विरमण

अर्थात कामाचार से विरत रहना । जो व्यक्ति दृढ़तापूर्वक कामाचार से विरत रहता है वह मरणोपरान्त देवलोक को प्राप्त होता है । बौद्ध एवं जैन दोनों परम्पराओं में श्रमण के लिए परस्त्रीगमन वर्जित है । विनयपिटक के अनुसार स्त्री का स्पर्श भी भिक्षु के लिए वर्जित माना गया है ।[5] बुद्ध ने भी इस सम्बन्ध में काफी सतर्कता बरतने का उपदेश दिया । यही कारण है कि बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश देने में अनुत्सुकता प्रकट की । अपने अन्तिम उपदेश मे भी बुद्ध ने भिक्षुओं को स्त्री-सम्पर्क से सावधान किया है । भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पहले आनन्द ने भगवान् से प्रश्न किया

---

१ अट्ठसालिनी ३।१४३ पृ ८ तथा देखें विभंग पृ ३८४ अर्थविनिश्चय-सूत्र पृ ३६ ।

२ यतो यतो हिंसमनो निवत्तति ततो सम्मति एव दुक्खं । धम्मपद ३९ ।

३ विनयपिटक पातिमोक्ख पराजिकधम्म २ तथा देखें अट्ठसालिनी ३।१४४ पृ ८१ विभंग पृ ८४ ।

४ संयुत्तनिकाय ९।१४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ३४४ ।

५ विनयपिटक पातिमोक्ख संघादिसेस धम्म २ ।

६ बौद्धधर्म के विकास का इतिहास पृ १५०-१५१ ।

कहा कि भगवन् ! स्त्रियों के साथ हमें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए ? भगवान् ने उत्तर दिया कि स्त्रियों को मत देखो। आनन्द ने फिर प्रश्न किया कि अगर वे दिखाई द तब हम उनके साथ कैसा व्यवहार करें ? बुद्ध ने पुन कहा कि हे आनन्द आलाप न करना चाहिए। आनन्द ने पुन पूछा कि उनके साथ यदि बातचीत का प्रसंग उपस्थित हो जाय तो क्या करें ? अन्त म बुद्ध ने यही कहा कि ऐसी स्थिति में भिक्षु को अपनी स्मृति को बचाकर रखना चाहिए। बौद्धधर्म म भिक्षु और भिक्षुणियों के पारस्परिक सन्दभ म जो नियम बनाये गय हैं उनमें भी इस बात का ध्यान रखा गया है कि भिक्षु और भिक्षुणियो का ब्रह्मचय स्खलित न होने पावे। विनयपिटक के अनुसार भिक्ष का एकान्त में भिक्षुणी के साथ बैठना अपराध माना गया है।

## ४ मृषावाद विरमण

अर्थात् असत्य भाषण से विरत होना। जैन-परम्परा की तरह बौद्ध-परम्परा म भी भिक्षु के लिए असत्य भाषण वर्जित है। भिक्षु न स्वय असत्य बोले न अन्य से असत्य बोलवाये न किसीको असत्य बोलने की अनुमति प्रदान कर। बौद्ध-परम्परा के अनुसार भिक्षु को सत्यवादी होना चाहिए। वह मिथ्या भाषण म न पड न किसीकी चुगली ही करे न कपटपूण वचन बोले। बुद्ध का वक्तव्य ह कि जो वचन सत्य हो परन्तु हितकारी न हो उसे व नही बोलते हैं लेकिन जो वचन सत्य हो वह प्रिय या अप्रिय होत हुए भी हितदृष्टि से बोलना हो तो बद्ध उसे बोलते हैं। विनयपिटक के अनुसार भिक्ष को असत्य वचन नही बोलना चाहिए तथा हमेशा शुद्ध उचित अथ पूण तर्कपूर्ण तथा म यवान् वचन का ही उपयोग करना चाहिए। जान-बझकर असत्य बोलना तथा अपमानजनक शब्दो का प्रयोग करना भिक्ष के लिए प्रायश्चित्त-योग्य दोष माना गया है। इतना ही नही गृहस्थ जीवन-सम्ब धी कार्यों म अनुमति हो एसी भाषा भी भिक्षु के लिए वर्जित है। इसलिए भिक्षु को हमशा ही कठोर वचन का परित्याग कर मृदु एव नम्र वचन ही बोलना चाहिए।

---

१ दीघनिकाय २।३।

२ विनयपिटक पातिमोक्ख पाचित्तियधम्म ३ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ३४५।

३ सुत्तनिपात २६।२२।

४ वही ५२।७९।

५ मज्झिमनिकाय अभयराजसुत्त।

६ विनयपिटक पातिमोक्ख पाचित्तियधम्म १ २।

७ सयुत्तनिकाय ४२।१ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ३४५।

प्राणातिपात, अदत्तादान और काममिथ्याचार इन तीन कर्मों से विरत होना कायिक कर्म है। धम्मपद में कहा गया है कि कायिक दुराचरण से बचे, काय से संयत रहे कायिक दुराचरण को छोड़ कायिक सदाचार का आचरण करे।[1] अभिध्या व्यापाद और मिथ्या दृष्टि से विरत होना मानसिक कुशल कर्म है। धम्मपद में कहा गया है कि मानसिक दुराचार से बचे मन से संयत रहे मानसिक दुराचरण को छोड़ मानसिक सदाचार का आचरण करे।[2]

५ सुरामेरयमद्य विरमण

अर्थात् सुरापान से विरत रहना। जो व्यक्ति दृढ़तापूर्वक सुरापान से विरत रहता है वह मरणोपरान्त देवलोक को प्राप्त होता है। बौद्ध भिक्षु तथा गृहस्थ दोनों के लिए ही सुरापान मद्यपान एवं नशीली वस्तुओं का सेवन वर्जित है। जैन-परम्परा म भी गृहस्थ एवं मुनि दोनो के लिए मद्यपान वर्जित है। जब तक कोई व्यक्ति इससे विरत नहीं होता है वह धर्म-मार्ग में प्रवेश पाने का अधिकारी नहीं है।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो व्यक्ति इनका पालन करता है उसका आचरण पवित्र माना जाता है। वह शीलवान् सर्वत्र पूजित होता है। देवता भी उसकी स्पृहा करते हैं भौतिक वातावरण में रहता हुआ भी वह पुण्यात्मा दिव्य सुख का अधिकारी समझा जाता है। उसका यश फैलता है और सब लोग उसका सम्मान करते हैं सदाचार के ये पाँच नियम ऐसे हैं जिन्हें पालन करनेवाला व्यक्ति देवताओं का भी पूज्य हो जाता है। दीघनिकाय के कूटदन्तसुत्त में भगवान् बुद्ध ने बतलाया है कि पञ्चशील का पालन हिंसामय यज्ञ से बहुत ही अधिक फलदायक है। वह अल्प सामग्रीवाला महान यज्ञ है। इस यज्ञ को करके व्यक्ति निर्वाण-सुख को प्राप्त कर लेता है। इससे व्यक्ति वास्तविक मनुष्यत्व को प्राप्त होता है जिसे प्राप्त करने के लिए देवता तक सदा उत्सुक रहते हैं। यह मनुष्य को देवता बनानेवाला नहीं प्रत्युत देवता को भी मनुष्यत्व प्राप्त कर निर्वाण-लाभ करने के लिए प्रेरित करनेवाला धर्म है।

---

१ कायप्पकोपं रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे॥

धम्मपद २३१।

२ मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया।
मनो दुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे॥

वही २३३।

३ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २, पृ ३४६।

बौद्ध-परंपरा में पचशील के अतिरिक्त अष्ट और दशशील का भी विधान है। अष्टशील का पालन प्रत्येक मास की अष्टमी पूर्णिमा और अमावस्या को किया जाता है। इनके पालन करने को ही उपोसथ व्रत कहा जाता है। ऐसे भी लोग हैं जो जीवनभर अष्टशील का पालन करते हैं। अष्टशील में पचशील के तीसरे नियम व्यभिचार न करन के स्थान पर ब्रह्मचर्य-पालन आ जाता है। इसके अतिरिक्त विकाल भोजन का त्याग माला-गन्धविलेपन और शृंगार की वस्तुओं का त्याग तथा ऊँची और महाशय्या के त्याग की भी प्रतिज्ञा करनी पडती है। दशशील में सदाचार के दो नियम और जुड जाते हैं नाच गाना मेला तमाशा आदि का त्याग तथा सोना चाँदी ग्रहण न करना। दशशीलो का पालन गृहत्यागी लोग ही करते हैं। जो इनका पालन करत हैं उन्हें श्रामणर कहते हैं। उन्हें किसी भिक्षु के पास विधिवत् इन नियमों के पालन की प्रतिज्ञा करनी पडती है। श्रामणर भिक्षु की प्रथमावस्था है। जब वह उपसम्पदा प्राप्त कर लेता है अर्थात् भिक्षु बन जाता है तब उसे विधिवत् पातिमोक्ख नियमो का पालन करना पडता है।

## पचमहाव्रत

बौद्धो के पचशील के समकक्ष जैनधम का पचमहाव्रत है। वास्तव में पच महाव्रत सम्पूर्ण श्रमणाचार की आधारशिला ह। पंचमहाव्रत ही श्रमण आचार का वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ से अनक क्रियाय विभिन्न नियमों उपनियमो के रूप म प्रसारित होती है अथवा सघटित होकर केन्द्ररूपी पचमहाव्रत की सुरक्षा और विकास के विस्तृत आयाम प्रस्तुत करती हैं। पचमहाव्रतो को श्रमण जीवनभर के लिए मन-वचन और काय से धारण करता है और इनकी सर्वांशत सुरक्षा करता हुआ निर्वाण की भूमिका तक पहुचने में सक्षम होता है। जैन-श्रावक की अपेक्षा जैन-श्रमण हिंसा आदि का पूर्णत त्याग नवकोटि से करता है। यहाँ उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर पचमहाव्रतो का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा ह। ये व्रत इस प्रकार है —

---

१ देख विनयपिटक महावग्ग १।५६।

२ उपाध्याय बलदेव भारतीय दर्शन प १५६।

३ जैन-आचार महता मोहनलाल प १३५।

४ अहिंस सच्च च अतेणग च।
तत्तो य बम्भ अपरिग्गह च।
पडिवज्जिया पच महव्वयाणि।
चरिज्ज धम्म जिणदेसिय विउ॥
उत्तराध्ययन २१।१२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६१।

१ सब प्रकार के प्राणातिपात से विरमण ( अहिंसा )
२ सब प्रकार के मृषावाद से विरमण ( सत्य )
३ सब प्रकार के अदत्तादान से विरमण ( अचौर्य )
४ सब प्रकार के यौन-सम्बन्धो से विरमण ( ब्रह्मचर्य ) और
५ सब प्रकार के धनादि संग्रह से विरमण ( अपरिग्रह महाव्रत ) ।

इन पाँच व्रतों का सूक्ष्म रूप से पालन करना महाव्रत कहलाता है और मुनि के लिए इनका पालन अनिवार्य है । गृहस्थ उपासक के लिए ये ही अणुव्रत के रूप में विहित है।

१ अहिंसा-महाव्रत

त्रस एव स्थावर जीवों को मन वचन काय से तथा कृत-कारित अनुमोदना से किसी भी परिस्थिति में दु खित न करना अहिंसा महाव्रत है । मन में दूसरे को पीडित करने की सोचना तथा किसीके द्वारा दूसरे को पीड़ित करने पर उसका समर्थन करना भी हिंसा है । अत ग्रन्थ में कहा गया है कि जो प्राणवध का अनुमोदन करते है वे भी सभी दु खों के फल भोगे बिना नहीं रह सकते हैं । भगवान् अरिष्टनेमि अपने विवाह के अवसर पर जब विवाह की खुशी म खाने के लिए मारे जानेवाले पशु-पक्षियों को देखते है तो कहते है कि यह परलोक मेरे लिए सुखकर नही है । क्योंकि अज्ञात में हुई हिंसा भी घातक ह अत प्रत्येक प्राणी को हिंसावृत्ति एव वैरभाव छोड़कर रक्षा करने को कहा गया है ।

---

१ जगनिस्सिएहिं भएहिं तसनामेहिं थावरेहिं च ।
नो तेसिमारभेदड मणसावयसा कायसा चेव ॥
उत्तराध्ययन ८।१ २५।२३ १२।३९ ४१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६१ तथा आगे ।

२ नहु पाणवह अणुजाणे मुच्चेज्ज कयाइ सव्व दुक्खाण ।
उत्तराध्ययन ८।८ ।

३ जइमज्झ कारणाएए हम्मिहिंति बहूजिया ।
न मे एय तु निस्सेस परलोगे भविस्सई ॥
वही २२।१९ ।

४ अज्झत्थ सव्वओ सव्वं दिस्स पाणे पियायए ।
नहणे पाणिणो पाणे भयवेराओ उवरए ॥
वही ६।७ ६।२ १३।२६ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ० २६१ ६२ ।

अहिंसा-व्रत के पालन करने के लिए यह भी आवश्यक है कि अपना अहित करनेवाले के प्रति भी क्षमाभाव रखना उसे अभयदान देना सदा विश्वमैत्री विश्व कल्याण की भावना रखना तथा वध करने को तत्पर होने पर भी उसके प्रति जरा भी रोष न करना ।[1] इसके अतिरिक्त गृह निर्माण अन्नपाचन शिल्पकला क्रय-विक्रय अग्नि जलाना आदि क्रियाय न तो स्वय करनी चाहिए और न दूसरे से करानी चाहिए क्योंकि इनके करने से सूक्ष्म जीवो की हिंसा का दोष लगता है।[2] साधु को भिक्षा लेते समय इन सब दोषो को बचाना आवश्यक बतलाया गया है।[3] मल-मूत्र आदि का त्याग करते समय भी सूक्ष्म जीवो की हिंसा न हो इसलिए बहुत नीचे तक अचित्त भूमि का निर्देश किया गया है।[4] इसीलिए ग्रन्थ में इस व्रत के पालन करने को अत्यन्त कठिन कहा गया है तथा गौतम को लक्ष्य करके प्रमादरहित रहने का उपदेश दिया

---

१ पुव्वि च इण्हि च अणागय च मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ ।
उत्तराध्ययन १२।३२ ।
महप्पसाया इसिणो हवन्ति नहुमुणी कोवपरा हवन्ति । वही १२।३१ ।
हओ न सजले भिक्खू मण पिनपओसए । वही २।२६ ।
मेत्तिं भूएसु कप्पए । वही ६।२ ।
हियनिस्से साए सव्वजीवाण । वही ८।३ १८।११ २१।१३ २।२३–२७ २ ११ १३।१५ १९।९ ९३ १५।१६ २ ।५७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६२ तथा आगे ।

२ नसय गिहाइ कुज्जाणव अन्नहि कारए ।
गिह कम्म समारम्भे भयाण दीसई वहा ॥ उत्तराध्ययन ३५।८ ।
पाण भूयदयटठाए न पय न पयावए ॥ वही ३५।११ ।
समलेट्ठुकचणे भिक्खू विरए कयविक्कए ॥ वही ३५।१३ ३५।८–१५ २१।१३ १५।१६ ९।१५ ।

३ उग्गमुप्पायण पढमे बीएसोहज्जएसण ।

गिण्हन्तो निक्खिवन्तो य पउजेज्जइमं विहि ॥ वही २४।१२ १३ ।

४ उच्चारं पासवणं खेल सिघाण-जल्लिय ।
आहार उवहिं देह अन्न वावि तहाविह ॥ वही २४।१५ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६३ ।

५ समया सव्वभूएसु सत्त मित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई जावज्जीवाए दुक्करं ॥
उत्तराध्ययन १९।२६ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६३ ।

ा है क्योंकि प्रमाद से विवेकज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है और जब तक विवेक न नहीं होगा तब तक अहिंसा का पालन करना सम्भव नहीं है। उत्तराध्ययन में हिंसा-व्रत के पालन करनेवाले को ब्राह्मण कहा गया है तथा इनके पालन न करने फल नरक की प्राप्ति बतलाया गया है। इस प्रकार इस व्रत का स्थान पंचमहाव्रतों प्रथम और श्रेष्ठ है।

सत्य महाव्रत

द्वितीय महाव्रत सर्व-मृषा-वाद विरमण है। क्योंकि असत्य भाषण आत्मा लिए पतन का कारण और प्राणातिपात का पोषक है जिससे अनेक दोषों का जन्म व पापकर्म का बन्ध होता है इसलिए श्रमण को प्रमाद क्रोध लोभ हास्य एव य से झूठ न बोलकर उपयोगपूर्वक हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिए यही सत्य हाव्रत ह। असभ्य वचन जो दूसरे को कष्टकर हो ऐसा भी नही बोलना ाहिए। इसमे भी अहिंसा महाव्रत की तरह कृतकारित अनुमोदना एव मन वचन ाय से झूठ न बोलने का अर्थ सन्निविष्ट है। अच्छा भोजन बना है अच्छी तरह से काया गया है इत्यादि प्रकार के सावद्य वचन तथा आज मैं यह कार्य अवश्य कर लूंगा अवश्य ही ऐसा होगा इस प्रकार की निश्चयात्मक वाणीबोलने का भी ग्रन्थ में निषेध । सत्य-महाव्रत के पालन करने को भी उत्तराध्ययन में कठिन बतलाया गया है।

---

१ समय गोयम। मापमायए। उत्तराध्ययन १ वाँ अध्ययन तथा ६।१३ ४।६–८ २।२२ २१।१४ १५ २६।२२ आदि।

खिप्प न सक्केइ विवगमेउ तम्हा समुट्ठाय पहायकाम।
समिच्च लोय समया महेसी अप्पाणरक्खी चरमप्पमत्तो।। वही ४।१ ।

२ तसपाण वियाणत्ता सगहेण यथावरे।
जो न हिंसइ तिविहेण त वय बम माहण।। वही २५।२३।

३ कोहा वाजइ वाहासालोहा वाजइ वा भया।
मुस न वयइ जो उत वय बम माहण।। वही २५।२४ तथा
उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६४ तथा आगे।

४ वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु। उत्तराध्ययन २१।२४।

५ मुस परिहरे भिक्खनय ओहारिणि बए।
भासा दोसं परिहरे मायं च वज्जए सया।।
वही १।२४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६५।
सुणिटिठए सुलटठेत्ति सावज्ज वज्जए मुणी।। उत्तराध्ययन १।३६।

६ निच्चकाल प्पमत्तण मुसावाय विवज्जण।
भासियव्व हियं सच्च निच्चा उत्तेण दुक्कर।। वही १९।२७।

उत्तराध्ययन में वचन बोलने की क्रमिक तीन अवस्थायें बतलायी गयी हैं।[1] इन तीनो अवस्थाओं म सत्य बोलन के क्रमश नाम भाव स य करण सत्य और योग सत्य मिलते हैं। इस तरह झठ बोलनेवाला एक झठ को छिपाने के लिए अ य अनेक झूठ बोलता है और हिंसा चोरी आदि क्रियाओं में प्रवृत्त होता हुआ सुखी नही होता है। सत्य बोलनेवाला जसा बोलता ह वसा ही करता है और प्रामाणिक पुरुष होकर सुखी होता है।

३ अचौर्य-महाव्रत

तृतीय महाव्रत की सज्ञा सव अदत्तादान विरमण है जिसके अन्तर्गत श्रमण कोई भी बिना दी हुई वस्तु ग्रहण नही करता। किसीकी गिरी हुई भूली हुई रखी हुई अथवा तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु को बिना स्वामी का आज्ञा के ग्रहण न करना अचौर्य महाव्रत है। मन वचन शरीर एव कृतकारित अनुमोदना से इस व्रत का पालन करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त जो वस्तु ग्रहण करे वह निरवद्य एव निर्दोष हो। अहिंसा-व्रत की रक्षा के लिए निरवद्य एव निर्दोष विशेषण दिया गया है क्योंकि

---

१ सरम्भ-समारम्भे आरम्भे य तहेवय।
वय पवत्त माण तु नियतज्जजय जई॥ उत्तराध्ययन २४।२३।

२ भावसच्चेण भावविसोहिं जणयइ। भावविसोहीए वट्टमाणे जीव अरहन्तपन्न-त्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अ भुट्ठेइ। अरहन्तपन्न-त्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अ मुट्ठित्ता परलोग धम्मस्स आराहएहवइ। वही २९।५१।
करणसच्चेण करण सत्ति जणयइ। करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाई तहा कारी यावि भवइ। वही २९।५२।
जोगसच्चेण जोग विसोहेइ। वही २९।५३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६५।

३ मोसस्स पच्छा यपुरत्थओ य पओगकाले य दुही दुरन्ते।
एव अदत्ताणि समाययन्तो रुवे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो॥
उत्तराध्ययन ३२।३१।

४ दन्त-सोहण माइस्स अदत्तस्स विवज्जण।
अणवज्जे सणिज्जस्स गण्हणा अ वदक्कर॥
वही १९।२८।
चित्तमन्तमचित्त वा अप्प वाजइ वा बहु।
न गण्हइ अदत्त जे त वय बम माहणं॥
वही २५।२५ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६७।

सावद्य एवं सदोष वस्तु के ग्रहण करने में हिंसा का दोष लगता है। सभी सचित्त वस्तुओं को ग्रहण करना साधु के लिए निषेध माना गया है। इसलिए सचित्त वस्तु के किसीके द्वारा दिये जाने पर भी उसे ग्रहण करना चोरी है। बतलाये गये व्रतो का ठीक से पालन न करना भी चोरी है। अचौर्य-व्रत से युक्त बहुत ही सुन्दर कथन उत्तराध्ययन में कहा गया है—धनधान्यादि का ग्रहण करना यह नरक का हेतु है। इसलिए बिना आज्ञा के साधु तृणमात्र पदार्थ को भी अंगीकार न करे। यह शरीर बिना आहार के रह भी नहीं सकता। इसलिए गृहस्थ के द्वारा अपने पात्र में जो भोजन उसे प्राप्त हो उसीका आहार करना चाहिए।

४ ब्रह्मचर्य-महाव्रत

कृत कारित अनुमोदनापूर्वक मनुष्य तियञ्च एव देव शरीर-सम्बन्धी सब प्रकार के मैथुन-सेवन का मन वचन काय से त्याग करना ब्रह्मचर्य-महाव्रत है। इसके १८ भेदों का सकेत मिलता है।

समाधिस्थान

उत्तराध्ययनसूत्र म ब्रह्मचय की रक्षा के लिए १ विशेष बातों का त्याग आवश्यक बतलाया गया है जिन्हें ग्रन्थ में समाधिस्थान का नाम दिया गया है। इन दस समाधिस्थानों में अन्तिम सग्रहात्मक समाधिस्थान को छोड़कर शेष ९ को टीकाकारो ने ब्रह्मचय की गुप्तियाँ ( सरक्षिका ) कहा है। चित्त को एकाग्र करने के लिए इनका विशेष महत्त्व होने के कारण इन्हें समाधिस्थान कहा गया है। ये समाधिस्थान डॉ सुदर्शनलाल जैन के द्वारा निम्नलिखित रूप में विभाजित हैं

---

१ आयाण नरय दिस्स नायएज्ज तणामवि।
दो गुन्छी अप्पणो पाए दिन्न भुजेज्ज ॥ उत्तराध्ययन ६।८।

२ दिव्व-माणुस तेरिच्छ जो न सेवइ मेहुण।
मणसा काय-वक्केण त वय बम माहु ॥ वही २५।२६।

३ बम्भम्मिनायज्झ यणेसु ठाणेसु यऽसमाहिए।
जे भिक्खू जयई निच्च से न अच्छइ मण्डले ॥ वही ३१।१४।

४ कयरे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेर समाहिठाणा पन्नता जे भिक्खू सोच्चा निसम्म सजम बहुले सवर बहुले समाहि बहुले गुत्ते गुत्तिन्दिए गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्त विहरेज्जा। वही १६।२ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ २६८।

५ उत्तराध्ययन १६ १ तथा उत्तराध्ययनसूत्र आत्माराम टीका पृ १३९१।

६ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २६८–२७३।

१ स्त्री आदि से सकीर्ण स्थान के सेवन का त्याग

जहाँ पर स्त्री पशु नपुसक आदि का आवागमन सम्भव है ऐसे स्थानों में शून्य घरो में और जहाँ पर घरो की सन्धियाँ मिलती हो ऐसे स्थलों म तथा राजमार्ग में अकेला साधु अकेली स्त्री के परिचय म न आवे । क्योकि इन उपर्युक्त स्थानों में साधु का स्त्री के साथ परिचय म आना जनता म अवश्य सन्देह का कारण बन जाता है । इसलिए इन उक्त स्थानो म सयमी पुरुष कभी न आवे । क्योकि जैसे बिल्लियों के स्थान के पास चूहो का रहना योग्य नही उसी प्रकार स्त्रियो के स्थान के समीप ब्रह्मचारी को निवास करना उचित नही । इसलिए मुनि को भी स्त्री पशु आदि से रहित एकान्त स्थान म ही निवास करना उपयुक्त ह ।

२ निर्ग्रन्थ साधु बार-बार स्त्रियों की कामजनक कथा न कहे

साधु का स्त्रियो की बार-बार कथा नही करनी चाहिए और ब्रह्मचय म रत भिक्षु को मन को आनन्द देनेवाली कामराग को बढानेवाली स्त्री-कथा को भी त्याग देना चाहिए ।

३ स्त्री आदि से युक्त शय्या और आसन का त्याग

निग्रन्थ को ब्रह्मचय की रक्षा के लिए स्त्रियो के साथ एक आसन पर बैठकर कथा वार्तालाप परिचय आदि न करते हुए आकीर्णता और स्त्री-जन से रहित स्थान म रहना चाहिए । क्योकि तत्काल वहाँ पर बैठने से स्मृति आदि दोष लगने की सम्भावना रहती है ।

४ कामराग से स्त्रियों की मनोहर तथा मनोरम इन्द्रियों का त्याग

ब्रह्मचारी भिक्षु को स्त्रियो के अग-प्रत्यग और सस्थान आदि का निरीक्षण करना तथा उनके साथ सुचारु भाषण करना और कटाक्षपूवक देखना आदि बातों को एव चक्षुग्राह्य विषयों को त्यागने के लिए कहा गया है । अत इस प्रकार के प्रसग

---

१ उत्तराध्ययन १६।१ पद्य भाग तथा १६।१ गद्य तथा ३२।१३ १६ ८।१९ २२।४५ १।२६ ।

२ वही ३२।१३ ।

३ वही ३६।१६ ।

४ वही १६।२ पद्य तथा गद्य ।

५ तम्हा खलु नो निग्गन्थे इत्थीहिंसद्धिं सन्निसेजागए विहरेज्जा । वही १६।५ गद्य ।

६ वही १६।५ गद्य ।

पस्थित होने पर वीतरागतापूर्वक शुभध्यान करना। स्त्रियो के रूप सौन्दर्य को खकर पुरुष को उसमें आसक्ति नही होनी चाहिए। इसीलिए ग्रन्थ में स्त्रियों को इकमत (दलदल) तथा राक्षसी कहा गया है।

। स्त्रियों के श्रोत्रग्राह्य शब्दों का निषेध

पंचम समाधिस्थान में स्त्रियों के कूजित रुदित हसित स्तनित क्रन्दित लाप आदि वचनो को जिनसे कामराग बढ़े न सुनना कारण कि इनसे मन की चलता में वृद्धि होती है और ब्रह्मचय में आघात पहुँचता है।

स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति और काम-क्रीडा का स्मरण न करें

स्त्रियो के पूवरति और क्रीडा की स्मृति करनेवाले निग्रन्थ ब्रह्मचारी के ह्मचय में शंका कांक्षा और सन्देहादि दोष उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है यम का नाश एव उन्माद की प्राप्ति होती ह तथा दीर्घकालिक भयकर रोगों का आक्रमण भी होता है।

सरस आहार-पानी तथा प्रणीत रस-प्रकाम का त्याग

ग्रन्थ में ब्रह्मचारी के लिए रसो का अत्यन्त सेवन वर्जित है। कहा गया है कि जैसे स्वादु फलवाले वृक्ष पर पक्षी आकर बैठते हैं और अनेक प्रकार से उसको कष्ट पहुँचाते हैं उसी प्रकार रससेवी (घी दूध आदि रसवान् द्रव्यों के सेवन से) पुरुष को कामादि विषय भी अत्यन्त दु खी करते हैं।

अत्यधिक भोजन का त्याग

जसे वायु के साथ मिलन से वन में लगी हुई अग्नि शीघ्र शान्त नही होती उसी प्रकार प्रमाण से अधिक भोजन करनेवाले ब्रह्मचारी की इन्द्रियाग्नि शान्त नही होती। अत खाने से यदि विकार की उत्पत्ति विशेष होती हो तो उसको त्यागकर ब्रह्मचय की रक्षा करनी चाहिए।

---

१ उत्तराध्ययन ३२।१५।

२ पङ्क भूयाओ इत्थिओ। वही २।१७ ८।१८।

३ वही १६।५ गद्य तथा पद्य।

४ वही १६।८ गद्य तथा पद्य और आगे ३२।१४।

५ वही ३२।१ ।

६ वही ३२।११।

७ वही २६।३५।

९ शरीर की विभूषा का त्याग

ब्रह्मचय म अनुराग रखनेवाले साध को शरीर की विभूषा का त्याग करना चाहिए। अत उसे उत्तम सस्कार करना शरीर का मण्डन करना केश आदि का सँवारना छोड देना चाहिए।

१ शब्दादि पाँचों प्रकार के कामगुणों का त्याग

ब्रह्मचय की रक्षा के लिए इस दसवें समाधिस्थान में ब्रह्मचारी को शब्द रूप गन्ध रस और स्पश इन पाँच कामगुणो का सदा परित्याग करने के लिए कहा गया है क्योंकि वे सब आ मगवेषी पुरुष के लिए तालपुट विष के समान हैं। इसलिए एकाग्र मनवाले साधु को समाधि की दढ़ता के लिए इन दुजय कामभोगों तथा शका के स्थानो को छोड देना चाहिए।

इस प्रकार सम्यकतया काया से स्पश करने से सर्वथा मैथुन से निवृत्तिरूप चतुथ महाव्रत का आराधन एव पालन होता है और देव दानव गन्धव यक्ष राक्षस एव किन्नर य सभी ब्रह्मचारी को नमस्कार करते हैं क्योकि वह दुष्कर ब्रह्मचय का पालन करता है।

५ अपरिग्रह-महाव्रत

धन धान्य भृत्य आदि जितन भी निर्जीव एव सजीव पदाथ हैं उन सबका मन वचन काय से निर्मोही होकर ममत्व का त्याग करना अपरिग्रह या अकिञ्चन महाव्रत कहलाता ह। अत साधु किसी खाद्य पदाथ का अशमात्र भी सग्रह न करे तथा चतुर्विध आहार म से किसी आहार का भी सग्रह करके रात्रि को न रख। वह सोने-चाँदी आदि को ग्रहण करने की मन से भी इच्छा न करे। इस तरह सभी प्रकार के धन धा यादि का त्याग करके तृणमात्र का भी सग्रह न करना अपरिग्रह है। अपरिग्रह को ही वीतरागता कहा गया है क्योकि जब तक विषयों से विराग नहीं होगा तब

---

१ उत्तराध्ययन १६।९ पद्य तथा गद्य।

२ वही १६।१ पद्य तथा गद्य।
विसतालउडजहा। वही १६।१३ गद्य।

३ सकटठाणाणि सव्वाणि वज्जेज्जा पणि हाणव। वही १६।१४ पद्य।

४ वही १६।१६ पद्य।

५ वही १९।३ तथा आगे उ २५।२७ ८।४ १२।९ १४।४१ ४९ २१।२१ २५।२८ ३५।३ १९ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २७८।

६ उत्तराध्ययन ६।१६ तथा ३५।१३।

तक जीव अपरिग्रही नहीं हो सकता है। विषयों के प्रति राग या लोभ-बुद्धि का होना ही परिग्रह है। उत्तराध्ययन में कहा गया है जैसे-जैसे लाभ होता है वैसे-वैसे लोभ होता है तथा लोभ के बढ़ने पर परिग्रह भी बढ़ता जाता है। यह वीतरागता अति विस्तृत सुस्पष्ट राजमार्ग है जिसके समक्ष अज्ञानमूलक जप-तप आदि सोलहवीं कला को भी पा नही सकता है।[1] जो इन विषयो के प्रति ममत्व नहीं रखता है वह इस लोक में दु खो से अलिप्त होकर आनन्दमय जीवन व्यतीत करता ह तथा परलोक में देव या मुक्ति-पद को प्राप्त करता है। परन्तु जो परिग्रह का त्याग नहीं करता ह वह पाप कर्मों को करके ससार में भ्रमण करता हुआ नरक में जाता है।

इस तरह अपरिग्रह से तात्पर्य यद्यपि पूर्ण वीतरागता से है परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत को इससे पृथक कर देने के कारण यह धन धान्यादि अचेतन द्रव्य और दास पशु आदि सचेतन द्रव्यों के त्यागरूप रह गया ह।

पंचमहाव्रत श्रमण-जीवन की रीढ़ तथा जैनधम के प्राण हैं। इन व्रतों का सम्यक पालन करनेवाला ही सच्चा श्रमण है। श्रमण धर्माचार मूलत अहिंसाप्रधान है इसलिए कहा जाता है कि पाँचों महाव्रत अहिंसास्वरूप हैं और वे अहिंसा से भिन्न नही हैं। रात्रि भोजन विरमण-व्रत भी अहिंसा-महाव्रत के अन्तगत ही आ जाता है फिर भी धर्माचार्यों ने इसे छठ व्रत के रूप में प्रतिपादित किया है। अशन पान खाद्य और स्वाद्य इन चार प्रकारों में किसी एक प्रकार का भी रात्रि में ग्रहण करना गर्हित समझा गया है।

इस प्रकार धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर उपर्युक्त तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम देखते हैं कि पचशील पचमहाव्रतो एव रात्रि भोजन निषध के अत्यन्त निकट हैं। दोनो परम्परायें उपर्यक्त कार्यों का मन वचन और काय तथा कृत कारित और अनुमोदित की कोटियो का विधान करती हैं। फिर भी दोनो ग्रन्थों में कुछ मौलिक अन्तर है जिसे जानना जरूरी है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार

---

१ उत्तराध्ययन १ ।३२।

२ वही १ ।३२।

३ कल अग्घइ सोलसि ॥ वही ९।४४।

४ वही २९।३ ३८ ३२।१९ २६ ३९ १४।४४ ४।१२ ८।४ ६।५ ७।२६ २७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २८ ।

५ आयाण नरय दिस्स। उत्तराध्ययन ६।८।

६ मेहता मोहनलाल जैनधर्म-दर्शन पृ ५१४।

७ जैन सागरमल जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २११।

भिक्षु न केवल कृत कारित और अनुमोदित हिंसा से बचते हैं वरन् वे औद्देशिक हिंसा से भी बचते हैं। जैन भिक्षु के लिए मन वचन और काय से हिंसा करना-करवाना अथवा हिंसा का अनुमोदन करना तो निषिद्ध ह ही लेकिन साथ ही यदि कोई भिक्षु के निमित्त से भी हिंसा करता है और भिक्षु को यह ज्ञात हो जाता है कि उसके निमित्त से हिंसा की गई है तो एसे आहार आदि का ग्रहण भी भिक्षु के लिए निषिद्ध माना गया ह। फिर भी बौद्ध और जैन-परम्परा म प्रमुख अन्तर यह है कि बुद्ध निमन्त्रित भिक्षा को स्वीकार करते थे जब कि जन श्रमण किसी भी प्रकार का आमन्त्रण स्वीकार नही करत थे। बुद्ध औद्देशिक प्राणीवध के द्वारा निमित्त मास आदि को तो निषिद्ध मानते थे लेकिन सामान्य भोजन के सम्बन्ध म व औद्देशिकता का कोई विचार नही करत थ। वस्तुत इसका मूल कारण यह था कि बुद्ध अग्नि पानी आदि को जीवन युक्त नही मानते थे। अत सामान्य भोजन के निर्माण म उन्हें औद्देशिक हिंसा का कोई दोष परिलक्षित नही हुआ और इसलिए निमन्त्रित भोजन का निषेध नही किया गया। सत्य महाव्रत के सन्दभ म दोनो परम्पराओ म मौलिक अन्तर यह ह कि बुद्ध अप्रिय सत्य वचन को हित बुद्धि से बोलना वर्जित नही मानत है जब कि जन-परम्परा अप्रिय सत्य को भी हित बुद्धि से बोलना वर्जित मानती है। अन्य शीलो के सम्बन्ध म सैद्धान्तिक रूप से बौद्ध और जैन-परम्परा म कोई मलभत अन्तर नही है फिर भी जैन-परम्परा म अशीलो का पालन जितनी निष्ठा और कठोरतापूवक किया गया उतना बौद्ध परम्परा म नही।

**धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर पुण्य पाप की अवधारणा**

पुण्य मनुष्य के चरित्र की श्रेष्ठता का सूचक है। इसके विपरीत पाप चरित्र के नतिक पतन का चिह्न है। इच्छापूवक कतव्य पालन अथवा सत्कम से मनुष्य के चरित्र के नतिक उत्कष म वृद्धि ही पुण्य है। नतिक नियमो के उल्लघन अथवा असत्कम से व्यक्ति के चरित्र से सम्बद्ध नतिक मूल्य का क्षय ही पाप है। पुण्य कतव्य पालन करके अर्जित नतिक योग्यता ह। जब व्यक्ति कतव्य से मुँह मोडता है तब उसकी नैतिक योग्यता का ह्रास होता ह। नतिक योग्यता के इस क्षय को पाप कहा जाता ह। धम्मपद में कहा गया ह पाप काय का न करना श्रेष्ठ है। पाप-काय पीछे दुःख देता ह पुण्य-काय करना श्रेष्ठ है जिसे करके मनुष्य दुःखी नही होता। पुण्य और पाप चरित्र से सम्बद्ध हैं। पुण्य भावात्मक नतिक योग्यता है जब कि पाप

१ नीतिशास्त्र का समीक्षात्मक अध्ययन गुलाम मुहम्मद याह्या खाँ पृ ५८।
२ अकत दुक्कत सेय्यो पच्छातपतिदुक्कत।
कतञ्च सुकत सेय्यो य कत्वा नानुतप्पति॥ धम्मपद ३१४।

निषेधात्मक। पाप पुण्य का अभाव नहीं है। पुण्य के अभाव का अर्थ है कि व्यक्ति ने जो कर्म किया है वह न सत् है और न असत्। जब व्यक्ति का आचरण नैतिक आदर्श के अनुकूल होता है तब वह पुण्य होता है किन्तु जब नैतिक आदर्श के प्रतिकूल होता है तब पाप होता है। धम्मपद का कथन है कि जिसका किया हुआ पापकर्म पुण्यकर्म से ढक जाता है वह इस लोक को वैसे ही प्रकाशित करता है जैसे कि बादलों से निकला हुआ चन्द्रमा। अत पुण्य चरित्र के उत्कर्ष का तथा पाप से चरित्र के क्षय का सकेत मिलता है।

पुण्य और पाप की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं। व्यक्ति के नैतिक और अनैतिक कर्म के अनुपात में ही उसकी नैतिक योग्यता की वृद्धि अथवा उसका क्षय होता है। व्यक्ति की नैतिक योग्यता की वृद्धि जब अधिक होती है तब वह अधिक पुण्य अर्जित करता है। इसके विपरीत व्यक्ति की नैतिक योग्यता म ह्रास भी होता है जिससे पाप की मात्राओ का सकेत मिलता है। धम्मपद म कहा गया है कि पापकर्म करनेवाला इस लोक म दु खी होता है और परलोक म जाकर भी अर्थात् वह दोनों ही लोको म दु खी होता है। वह अपने कुत्सित कर्म को देखकर शोक करता है और दु खित होता है जब कि पुण्यकर्म करनेवाला इस लोक म प्रसन्न रहता है और परलोक में जाकर भी अर्थात वह दोनो लोको में आनन्दित होता है और प्रमोद करता है।

धम्मपद भी नैतिक साधना की अन्तिम अवस्था म पुण्य और पाप दोनो से ऊपर की बात कहता है और इस प्रकार वह भी समान विचारो का प्रतिपादन करता है। धम्मपद में भगवान बुद्ध कहते हैं कि यदि मनुष्य पाप करता है तो उसे बार-बार न करे उस पाप म स्वच्छन्दतापूर्वक रत न होवे क्योंकि पाप का सचय दु ख कारी होता है। वह राख से ढँकी हुई अग्नि के समान मूर्ख को जलाता हुआ उसका पीछा करता है। इसलिए मनुष्य कल्याणकारी कार्य करने के लिए शीघ्रता करे और पाप से चित्त को निवारण करे क्योंकि पाप का सचय दु खकारी लेकिन पुण्य का

---

१ धम्मपद गाथा-सख्या १७३।

२ वही १५ १७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३३६।

३ वही १६ १८।

४ वही ११७।

५ वही ७१।

संयम सुखकारी होता है। इस प्रकार बौद्ध दर्शन का भी अन्तिम लक्ष्य शुभ और अशुभ से ऊपर उठना है।

बौद्ध लोग भी पुण्य और पाप म विश्वास करते थे। वे पूर्णरूप से कमवादी थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि जो जैसा कम करता ह उसे दूसरे जन्म में वैसे ही फल मिलते हैं। उन फलों की प्राप्ति से किसीको मुक्ति नही हो सकती। धम्मपद में कहा गया है कि जब तक पाप का फल नही मिलता तब तक पापी भी पाप को अच्छा ही समझता है किन्तु जब पाप का फल मिलता ह तब उस पाप दिखाई पडन लगते हैं। अतएव बुरे कर्म का फल बरा होना स्वाभाविक ही नही उनकी दृष्टि में अनिवार्य भी है। इसी प्रकार अच्छे कर्मों का फल अच्छा होता है। धम्मपद के अनुसार जब तक पुण्य का फल नही मिलता है तब तक पण्यात्मा भी पुण्य को बुरा समझता है किन्तु जब पुण्य का फल मिलता है तब उसे पुण्य दिखाई पडने लगते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि कौन कम अच्छ हैं और कौन बुरे। इस सम्बन्ध म धम्मपद म कहा गया है कि किया हुआ वह काय अच्छा नही होता जिसे करके मनुष्य को पश्चात्ताप होता है और जिसके परिणाम को आँसू बहाते हुए रोते हुए भोगना पडता है। बल्कि इसके विपरीत किया हुआ वह काय अच्छा होता ह जिसे करके मनुष्य को सन्ताप नहीं होता है और जिसके परिणाम को विश्वासपूवक प्रसन्न मन से भोगता ह। अतएव मनुष्य पापो को विष के समान परित्याग कर द।

जैन-दशन में सभी कम अथवा क्रियाय समान रूप से बन्धनकारक नही हैं। उसमें दो प्रकार के कम मान गये हैं—एक को कम और दूसरे को अकम कहा गया है। समस्त साम्प्रदायिक क्रियाय कम की कोटि म आती हैं और ईर्यापथिक क्रियाय अकर्म की कोटि म आती है। नतिक दशन की दृष्टि से प्रथम प्रकार के कम ही नैतिकता के क्षत्र म आते हैं और दूसरे प्रकार के कर्म नतिकता के क्षत्र से परे ह। लेकिन नतिकता के क्षत्र म आनवाले सभी कम भी एक समान नही होते है। उनम से कुछ शुभ और कुछ अशुभ होते ह। जन परिभाषा में इन्ह क्रमश पुण्यकम और पापकम कहा जाता है। इस प्रकार जैन दशन का पुण्यकर्म नैतिक कम है और पापकर्म

---

१ धम्मपद ११८।

२ वही गाथा-सख्या ११९ ६९ १३६ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३३५।

३ धम्मपद १२ १२२।

४ वही ६७।

५ वही ६८।

६ विस जीवितुकामो व पापानि परिवज्जये ॥ वही १२३।

अनैतिक कर्म है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार तत्त्व ९ हैं जिनमें पुण्य और पाप स्वतन्त्र तत्त्व हैं। तत्त्वार्थसूत्र में पुण्य और पाप को नहीं गिनाया गया है। लेकिन यह विवाद महत्त्वपूर्ण नहीं क्योंकि जो परम्परा उन्हें स्वतन्त्र तत्त्व नहीं मानती है वह भी उनको आस्रव तत्त्व के अन्तर्गत मान लेती है। यद्यपि पुण्य और पाप मात्र आस्रव नहीं है वरन् उनका बन्ध और विपाक भी होता है। अत आस्रव के शुभास्रव और अशुभास्रव ये दो विभाग करने से काम नहीं बनता बल्कि बन्ध और विपाक में भी दो दो भेद करने होंगे। इस कठिनाई से बचने के लिए ही पुण्य एव पाप को स्वतन्त्र तत्त्वों के रूप में गिन लिया गया है।

फिर भी जैन विचारणा निर्वाण माग के साधक के लिए दोनों को हेय और त्याज्य मानती है क्योंकि दोनो ही बन्धन के कारण हैं। अतएव नतिक जीवन की पर्णता पुण्य-पाप से ऊपर उठ जाने म है। शुभ ( पुण्य ) और अशुभ ( पाप ) का भेद जब तक बना रहता है नतिक पूर्णता नही आती। अशुभ पर पूर्ण विजय के साथ ही व्यक्ति शुभ से भी ऊपर उठकर शुद्ध दशा म स्थित हो जाता है। उत्तराध्ययनसूत्र मे कहा गया है कि असत प्ररूपणा और हिंसादि पापकम में प्रवृत्ति इन दोनों का फल नरक की प्राप्ति है। परन्तु जो जीव असत् प्ररूपणा और हिंसा आदि पापकर्म से पराङ्मुख होकर सत्चारित्ररूप आयधर्म का आराधन करते हैं व देवलोक म जाते हैं।

पण्य वह है जिसके कारण सामाजिक एव भौतिक स्तर पर समत्व की स्थापना होती है तथा मन शरीर और बाह्य परिवेश म सन्तुलन बनाना पण्य का कार्य है। उत्तराध्ययनसूत्र म कहा गया है कि इस अशाश्वत जीवन मे पण्य को न करनेवाला जीव मृत्यु के निकट पहुचा हुआ बडा सोच करता है कि अहो ! मैंने कोई पण्योपाजन नही किया और मृत्यु के पश्चात् परलोक में पहुँचकर अभीष्ट सुख की प्राप्ति न करके पन परम दु खी होता है कि अहो मैंने कोई सत्कर्म किया होता तो इस जन्म में सुखी होता।

नैतिक जीवन की दृष्टि से वे सभी कम जो स्वाथ घणा या अज्ञान के कारण दूसरे का अहित करने की दृष्टि से किय जाते हैं पापकर्म हैं। सामान्य तौर की दृष्टि से जिस विचार एव आचार से अपना और पर का अहित हो और जिससे अनिष्ट

---

१ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३३१ साथ में देखें उत्तराध्ययनसूत्र २८।१४ तत्त्वार्थसूत्र २।४।

२ उत्तराध्ययनसूत्र १८।२५।

३ वही १३।२१ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३३३–३४१।

फल की प्राप्ति हो वह पाप ह । इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के दुर्विचार और दुर्भावनाएँ भी पापकम हैं । उत्तराध्ययन म कहा गया है कि जो पुरुष औद्दशिक क्रीतकृत निस्यपिंड और अनेषणीय आहार लेने अथवा खान म किसी प्रकार का भी सकोच नहीं करता किन्तु अग्नि की तरह सवभक्षी बन रहा ह वह परुष पापकम का आचरण करता हुआ यहाँ से मरकर नरकादि अशुभ गतियों को प्राप्त होता ह ।

पण्य और पाप की इस सैद्धान्तिक अवधारणा के आधार पर आचार्यों ने शरीर वचन और मन की प्रवृत्तियो को शभ और अशुभ के रूप म वर्गीकृत किया है और उन्हें पुण्य या पापबध का कारण कहा है । भगवान महावीर ने कहा है कि पुण्य और पाप इन दोनो के क्षय से मुक्ति मिलती ह । जीव शभ और अशुभ कर्मों के द्वारा ससार में परिभ्रमण करता है ।

इस प्रकार धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर पुण्य और पाप का तुलनात्मक अध्ययन करन पर पता चलता ह कि बौद्ध-दशन म राग द्वेष और मोह से युक्त होन पर ही कम को बधनकारक माना जाता ह और राग द्वष और मोह से रहित कम को बन्धनकारक नही माना जाता । बौद्ध-दशन राग द्वेष और मोहरहित अहत् के क्रिया व्यापार को बन्धनकारक नही मानता है ऐसे कर्मों को अकृष्ण-अशुक्ल या अव्यक्त कम भी कहा गया है जब कि जैन-दशन के अनुसार जो क्रिया या व्यापार राग द्वेष और मोह से युक्त होता है वह बन्धन म डालता ह इसलिए वह कम है और जो क्रिया व्यापार राग-द्वष और मोह से रहित होकर कतव्य या शरीर निर्वाह के लिए किया जाता है वह ब धन का कारण नही ह अत अकम है । जिन्ह जैन-दशन म ईर्यापथिक क्रियाए या अकम कहा गया ह उन्ह बौद्ध-परम्परा अनुपचित अव्यक्त या अकृष्ण अशुक्ल कम कहती ह और जिन्हें जन-परम्परा साम्परायिक क्रियाए या कर्म कहती है उन्हें बौद्ध पर परा उपचित कम या कृष्ण-शुक्ल कम कहती है । इसके अतिरिक्त बौद्ध और जैन दशन मे पुण्यविषयक विशेष अन्तर यह ह कि जन-दशन म सवर निजरा

---

१ उत्तराध्ययनसूत्र २ ।४७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३४६ ।

२ दुविह खवेऊण य पुण्णपाव निरगण सव्वओ विप्पमुक्केते ।
उत्तराध्ययन २१।२४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३३७-३८ ।

३ एवं भव-ससारे ससरइ सुहासुहेहि कम्मेहि । उत्तराध्ययन १ ।१५ ।

४ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ३४८ ।

और पुण्य में अन्तर किया गया है किन्तु बौद्ध-दर्शन में ऐसा स्पष्ट अन्तर नहीं है। उत्तराध्ययन में सम्यक दर्शन ( श्रद्धा ) सम्यक ज्ञान ( प्रज्ञा ) और सम्यक चारित्र ( शील ) संवर और निर्जरा के अन्तर्गत है जब कि धम्मपद म धम संघ और बुद्ध के प्रति दृढ़ श्रद्धा शील और प्रज्ञा ( कुशल कम ) के अन्तर्गत ह।

## यज्ञ एव कर्मकाण्ड की आलोचना

प्राचीन बौद्ध और जैन-साहित्य में अनेक स्थलों पर वैदिक यज्ञों के उल्लेख या सविस्तार वणन ह। विभिन्न प्रकार के यज्ञों की विभिन्न प्रकार के पुरोहितों की और यज्ञ के अनेक उपकरणों क्रियाओ की चर्चा है। सामान्य रूप से बौद्ध और जैन दोनों ही परम्पराय वदिक यज्ञो की आलोचक थी। व यज्ञ म होनेवाली हिंसा की प्रबल विरोधि थी ब्राह्मण पुरोहितो की धनलिप्सा की आलोचक थी और उनका ब्राह्मण कमकाण्ड की इस मान्यता म पूण अविश्वास था कि यज्ञकम से किसी उच्च लोक की प्राप्ति होती है अथवा आध्यात्मिक प्रगति होती है। धम्मपद की कुछ गाथाओ मे स्पष्ट रूप से यह मनोभाव व्यक्त किया गया है

एक ओर यदि मनुष्य प्रतिमास हजारों की दक्षिणा देकर सौ वर्षों तक यज्ञ करे और दूसरी ओर यदि वह परिशुद्ध मनवाले एक ही व्यक्ति का क्षणभर पूजन करे तो सौ वर्षों तक किए गए यज्ञ से वह पूजन श्रेष्ठ है।

एक ओर यदि मनुष्य सौ वर्षों तक वन म अग्नि की परिचर्या करे और दूसरी

---

१ स्टडीज इन दी ओरिजिन्स ऑफ बद्धिज्म पाण्डय गोविन्दचन्द्र पृ २७४ बौद्ध दशन तथा अन्य भारतीय दशन भाग २ प ७३९ सुत्तनिपात भिक्ष धमरत्न ५।३ ( पुण्णकमाणवपुच्छा ) दीघनिकाय १।५ ( कटदन्तसुत्त ) प ५३–५५ सुत्तनिपात ५।९ ( नन्दमाणवपुच्छा ) जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज जैन जगदीशचन्द्र पृ २२७ २२८ विपाकसूत्र ५ पृ ३३ आवश्यकचर्णि पृ ३२४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ४ ६–४ ९।

२ मासे मासे सहस्सेन यो यजेथ सत सम।
एकञ्च भावितत्तान मुहुत्तमपि पूजय।
सायव पूजना सेय्यो य चे वस्ससत हुत॥

धम्मपद गाथा-सख्या १ ६।

और यदि वह परिशुद्ध मनवाले एक ही व्यक्ति का क्षणभर पूजन करे तो वर्षों तक किए गए यज्ञ से वह पूजन श्रेष्ठ है।

पुण्य की अभिलाषा करता हुआ मनुष्य लोक म वर्षभर जो कुछ यज्ञ और हवन करता है तो भी वह सरल वृत्तिवाले पुरुष के लिए की गयी श्रेष्ठ अभिवादना के चौथाई भाग के बराबर नही है।

उत्तराध्ययनसूत्र म भी उपयुक्त के समानान्तर सामग्री प्राप्त होती है

ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा हे क्षत्रिय ! तुम विपुल यज्ञ करा कर श्रमण और ब्राह्मणो को भोजन कराकर दान देकर भोग भोगकर और यज्ञ करके फिर श्रमण बन जाना। इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को इस प्रकार कहा जो मनुष्य प्रतिमास दस लाख गायों का दान करता है उसको भी सयम ही श्रेय है। फिर भले ही वह किसीको कुछ भी दान न करे।

वस्तुत बौद्ध और जन दोनो ही परम्पराओ ने यज्ञ कम और ब्राह्मण की अपने दृष्टिकोण से नवीन परिभाषा प्रस्तुत की। धम्मपद के ऊपर उद्धत सन्दर्भो में ही श्रेष्ठ पजा या यज्ञ बया ह इस प्रकार की परिभाषा निहित है। उसका अन्तिम वर्ग सच्चे ब्राह्मण की परिभाषा से सम्बन्धित है जिसम आचरण से शुद्ध निष्पाप तपस्वी तथा ज्ञानी व्यक्ति को ही वास्तविक ब्राह्मण कहा गया है। उत्तराध्ययन

---

१ यो च वस्ससतजन्तु अग्गि परिचरे वने।
एकञ्च भावितत्तान मुहुत्तमपि पूजये।
साञ्ञेव पूजना सेय्यो य चेवस्ससत हुत ॥ धम्मपद गाथा सख्या १ ७।

२ य किञ्चियिट्ठ च हुत च लोके
सवच्छर यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि त न चतुभागमेति
अभिवादना उज्जगतेसु सेय्यो ॥ वही १ ८।

३ जइत्ता विउले जन्नेभोइत्ता समणमाहणे।
दच्चा भोच्चा य जिट्ठाय तओ गच्छसि खत्तिया ॥
एयमट्ठ निसामित्ता हेउकारण चोइओ।
तओनमी रायरिसी देविन्द इणमब्बवी ॥
जो सहस्स सहस्साण मासे मासे गव दए।
तस्सावि सजमो सेओ अदिन्तस्स विकिचण ॥
उत्तराध्ययन ९।३८–४ ।

में भी विस्तार से ब्राह्मण की कर्मानुसारी परिभाषा है। और उस ग्रन्थ में जैन दृष्टिकोण से उत्तम यज्ञ की कल्पना की गयी है जिनमें जंगम और स्थावर जीवों की बलि दी जाती है उन्हें श्रौत द्रव्य यज्ञ कहते हैं। जैसे अश्वमेध वाजपेय ज्योतिष्टोम आदि। ये यज्ञ बहुत खर्चीले पड़ते थे अत साधारण जनता इन यज्ञों को नहीं कर सकती थी। स्मृति से प्रतिपादित यज्ञो को स्मार्त यज्ञ कहते हैं। दोनों का विधान अलग-अलग है। दोनो म मुख्य भेद बलि की प्रथा को लेकर है। स्मार्तयज्ञों में बलिदान को जीव हिंसा समझकर निषिद्ध कम माना गया है। इनमें हिंसा नहीं होती है अपितु इनका सम्पादन धृत धान्य आदि से होता है। इन यज्ञों में याजक की भावना हिंसा करने की नही रहती है फिर भी जो स्थावर जीवो की हिंसा इस यज्ञ की व्यवस्था में होती है वह नगण्य है। अत इन यज्ञों का विरोध नहीं किया गया है। भावयज्ञ को उत्तराध्ययन में सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। इस यज्ञ के सम्पादन में बाह्य किसी सामग्री की आवश्यकता नही पडती है। कोई भी इस यज्ञ को कर सकता है। उत्तराध्ययन में इस यज्ञ के विभिन्न नाम हैं जो अपनी सार्थकता लिए हुए हैं जैसे—यमयज्ञ अहिंसा यज्ञ सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य और आकिञ्चनभाव। अज्ञानमूलक पशु-हिंसा-प्रधान

---

१ देखिए धम्मपद का छब्बीसवाँ ब्राह्मणवग्ग तथा उत्तराध्ययन का पचीसवाँ यज्ञीय प्रकरण। विस्तृत विवेचन इसी अध्याय में आगे किया गया है।

२ वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जईय
अन्न पभय भवयाणमेय ॥ उत्तराध्ययन १२।१ तथा
जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४९५ ४९६।

३ अन्वेमुते महाभाग।
न ते किंचि न अच्चिमो।
भुजाहि सालिम कूर
नाणावजण-सजुयं ॥ उत्तराध्ययन १२।३४।

४ सुसवुडो पचहिं संवरेहिं
इह जीवियं अणवक खमाणो।
वोसटठकाओ सुइचत्तदेहो।
महाजय जयई जन्नसिट्ठ ॥ वही १२।४२।

५ जायाई जम जन्नमि। वही २५।१।

६ वही १२वाँ एव २५वाँ अध्ययन।

७ उत्तराध्ययनसूत्र आत्माराम टीका पृ ११२१–११२५ तक।

यज्ञों की ओर से लोगों की चित्तवृत्ति को हटाने के लिए यज्ञ की व्याख्या की गयी है जिसे यमयज्ञ के नाम से उत्तराध्ययन में कहा गया ह । इस यज्ञ को वही कर सकता है जो हिंसादि पापों से सवृत्त शरीर म ममत्व और कषायो में प्रवृत्ति से रहित होकर सयत ह । इसम वैदिक कर्मकाण्डी यज्ञ की तरह जाति का कोई महत्त्व नहीं है । इस यज्ञ को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की तरह शूद्र भी कर सकते हैं जिसे चाण्डाल-कुलोत्पन्न हरिकेशी मुनि जितेन्द्रिय और प्रधान गुणो से युक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता ह । चित्त और सम्भूत नामक जीव भी पवजन्म म चाण्डालकुलोत्पन्न होकर इस यज्ञ को करके क्रमश मोक्ष और चक्रवर्ती पद को प्राप्त करत ह । जिस तरह पुरुष इस यज्ञ को करन के अधिकारी हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी इस यज्ञ को करके परमार्थ ( मोक्ष ) को प्राप्त कर सकती ह जसे राजीमती ने प्राप्त किया । इस तरह इस यज्ञ को सभी जीव कर सकते हैं । अब प्रश्न उठता ह कि इस भावयज्ञ को कैसे करना चाहिए । इसके उपकरण कौन कौन ह । इस विषय म प्रस्तुत ग्रन्थ में बहुत सुन्दर वणन किया गया है ।

---

१ उत्तराध्ययन २५।१ १२।४२ ।

२ वही १२।४२ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ४९७

३ सोवागकुल सभूओ गुणुत्तरधरो मुणी ।
हरिएसबलो नाम आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥ त्तराध्ययन १२।१ ।

४ वही तेरहवाँ ( चित्र सम्भूतीय ) प्रकरण ।

५ वही बाईसवाँ ( रथनमीय ) प्रकरण ।

६ केत जोई ? के व त जोइठाण ?
कात सुया ? कि व त कारिसग ?
एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू ।
कयरण होमेण हुणासि जोइ ?
तवो जोई जीवो जोइठाण
जोगा सुया सरीर कारिसग ।
कम्मा एहा सजमजोग सत्ती
होम हुणामी इसिण पसत्थ ।
के ते हरए ? के य ते सन्तितित्थे ?
कहिंसि हाओ व रय जहासि ?
आइक्खणसजय । जक्ख पहया ।

इस तरह इस भावयज्ञ को करनेवाला याजक तपरूपी अग्नि को जीवात्मारूपी अग्निकुण्ड में शरीररूपी करीषाङ्ग से प्रज्वलित करके कर्मरूपी स्रुवा ( आहुति देने का पात्र ) से हवन करे। संयम व्यापाररूपी शान्तिपाठ को पढ़े तथा शुक्ल लेश्या की तरह निर्मल आत्मारूपी जल से युक्त ब्रह्मचर्यरूपी शान्ति तीर्थ म स्नान करे।

**धम्मपद औरउ त्तराध्ययनसूत्र में वर्णव्यवस्था**

बौद्ध और जैन-परम्पराओं का प्राचीन भारतीय ब्राह्मण वर्ण-व्यवस्था के प्रति क्या दृष्टिकोण था इसकी भी झलक धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र मे मिलती है। धम्मपद में इस प्रकार की सामग्री तो अधिक नही है परन्तु ब्राह्मण वर्णादि के उल्लेख स्पष्ट ही ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। प्राचीन बौद्ध-साहित्य में अन्यत्र इस विषय म प्रचुर सामग्री है और अनेक विद्वानो न उनका सकलन और अनुवाद किया ह। उस युग म भी समाज का विभाजन चातुर्वर्ण पर आधृत था—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण के लिए धम्मपद में एक स्वतन्त्र वग ही है। यह बात और ह कि तत्कालीन जीवन म वर्ण-व्यवस्था ऊंच-नीच की भावना से ग्रस्त होकर समाज को जजर कर रही थी। यही कारण है कि बौद्ध-ग्रन्थो में वर्ण-व्यवस्था

इच्छामो नाउ भवओ सगासे ॥
धम्मे हरए बम्भे सन्तितित्थे
अणाविले अत्तपसन्नलेसे।
जहिंसिण्हाओ विमलो विसुद्धो
सुसीइभूओ पजहामि दोस ॥
एय सिणाण कुसलेहि दिट्ठ
महासिणाण इसिण पसत्थ।
जहिंसिण्हाया विमल विसुद्धा
महारिसी उत्तमठाण पत्ते ॥ उत्तराध्ययन १२।४३–४७।

१ फिक रिचर्ड सोशल आर्गनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम पृ ८५ २५१ ३२१ ३२२ सिंह मदनमोहन बुद्धकालीन समाज और धर्म पृ २२ मज्झिमनिकाय जिल्द २ पृ ८४ १४८ दीघनिकाय जिल्द १ पृ ९ ९१ १ ३ सुत्तनिपात १।७।२१ ३।९।५७ अगुत्तरनिकाय १ प १९ उदान १।५ महता एन रतिलाल प्री बुद्धिस्ट इण्डिया पृ २४५ बौद्धधम के विकास का इतिहास पाण्डेय गोविन्दचन्द्र पृ २७–३१ बुद्धिस्ट इण्डिया रीज डेविड्स टी डब्ल्यू बुद्धिस्ट इण्डिया पृ ५ –५५ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ १७८ १७९।

की कड़ी भर्त्सना की गई है जन्म के स्थान पर कर्म को प्रमुखता दी गई है तथा उनके पारस्परिक भेद भाव को कम करने की चेष्टा की गई है। धम्मपद में कहा गया है कि माता की योनि से उत्पन्न होने के कारण किसीको ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।[1] यदि वह धन-सम्पन्न है तो केवल भोवादी है। बुद्ध ब्राह्मणों के श्रेष्ठत्व को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि कोई भी मनुष्य नैतिक विकास के आधार पर श्रेष्ठ या निकृष्ट होता है न कि जाति या व्यवसाय के आधार पर। भगवान् बुद्ध की उपर्युक्त धारणा का स्पष्टीकरण मज्झिमनिकाय के अस्सलायनसुत्त में मिलता है जिसमें भगवान बुद्ध ने जाति भेद सम्बन्धी मिथ्या धारणाओं का निरसन कर चारों वर्णों के मोक्ष या नैतिक शुद्धि की धारणा की प्रतिस्थापना की है। इस प्रकार विदित होता है कि बौद्धकाल में वर्णव्यवस्था को निर्धारित करने का आधार मनुष्य का कर्म उसका आचार विचार तथा उसका सात्त्विक-नैतिक जीवन था।

जैनधर्मसम्मत वर्णव्यवस्था आत्मानुशासन पर केन्द्रित है। ईश्वरवाद के घेरे से हटकर पुरुषार्थवाद कर्मवाद और समानतावाद के आँचल में पली-पुसी जैन-संस्कृति और उसकी समाज-व्यवस्था एक क्रान्तिकारी दर्शन लिए हुए है। वैदिकयुगीन जन्मत वर्णव्यवस्था के विरोध में कर्मत समाजवादी व्यवस्था प्रस्तुत करना उसका प्रमुख सिद्धान्त है। उत्तराध्ययनसूत्र के पचीसवें अध्ययन की महामुनि की कथा किस जैन श्रावक से भूली है। ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ जयघोष नाम का एक याज्ञिक ब्राह्मण था। उस समय एक ब्रह्मचारी महामुनि श्रमण भ्रमण करते-करते वाराणसी नगरी में पहुंचे और बाहर एक उद्यान में ठहर गए। उस समय उस पुरी में विजयघोष नाम का वेदपारगत ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था। उस यज्ञ में वह मुनि भिक्षा के लिए गया। उस साधु को देखते ही याज्ञिक ने भिक्षा देने से इन्कार कर दिया और कहा कि जो वेदपारगत याज्ञिक और ज्योतिष-शास्त्र को जाननेवाले ब्राह्मण हैं उन्हींको यहाँ से भिक्षा मिल सकती है। वह महामुनि इस प्रकार का उत्तर पाकर न क्रुद्ध ही हुआ और न प्रसन्न ही। उसने कहा कि तुम वेद यज्ञ धर्म और परमात्म तत्त्व को समझते ही नहीं हो। यदि जानते हो तो बताओ। वह याज्ञिक ब्राह्मण मुनि के प्रश्न का उत्तर

---

१ न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं मत्ति सम्भवं
भोवादि नाम सो होति सचेहोति सकिञ्चनो।
धम्मपद ३९६ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ १७९।

२ अस्सलायनसुत्त ( मज्झिमनिकाय २।५।३ ) पृ ३९ ।

देने में असमर्थ था। उसने हाथ जोड़कर कहा महामुनि! वेद यज्ञ धर्म और परमात्म तत्त्व को मुझे बताओ। परमानन्द को किस प्रकार पाया जा सकता है? यह बताकर मेरा संशय दूर करो। परमात्म-तत्त्व का वर्णन करते हुए महामुनि ने कहा कर्म से ब्राह्मण कर्म से क्षत्रिय कर्म से वैश्य और कर्म से ही जीव शूद्र होता है। केवल सिर मुड़ाने से श्रमण ओंकार का जप करने से ब्राह्मण जंगल में वास करने से मुनि और कुश चीवर धारण करने से तपस्वी नहीं होता अपितु समता से श्रमण ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण ज्ञान से मुनि तथा सम्यक ज्ञानपूर्वक तप करने से तपस्वी होता है। महामुनि ने कहा कि इस प्रकार उत्तम गुणों से युक्त जो वास्तव में द्विजोत्तम हैं वे ही परमात्म-तत्त्व को समझते हैं। इसी प्रकार की कथा ग्रन्थ के बारहवें अध्ययन में भी आती है। यह कथा हरिकेशी मुनि की है। हरिकेशी मुनि का जन्म एक चाण्डाल-कुल में हुआ था। तपस्या के प्रभाव से वे एक प्रसिद्ध महर्षि बने। वे भी महामुनि की तरह जब भिक्षा के लिए यज्ञ-मण्डप में गये तो याज्ञिकों ने उनका तिरस्कार किया और भिक्षा देने से इन्कार किया। याज्ञिको की दृष्टि में वे भिक्षा के पात्र ही न थे। उनकी दृष्टि में यज्ञमण्डप के भिक्षापात्र बनने के लिए ब्राह्मण-कुल में जन्म लेना परमावश्यक था। जब हरिकेशी मुनि ने भिक्षापात्र का वास्तविक स्वरूप बताया तो वह उन्हें कटु लगा और शक्ति म मत्त वे महामुनि को मारने लगे। तत्काल यक्षों ने मुनि की रक्षा की और मारनेवालो को उचित दण्ड दिया। इस प्रकार मुनि के तपस्तेज का चमत्कार देखकर सब लोग हैरान रह गए और कहा तप की विशेषता साक्षात् दिखाई देती है और जाति की विशेषता कहीं दिखाई नही देती और चाण्डाल का पुत्र होकर भी हरिकेशी मुनि तपश्चर्या के प्रभाव से इतनी बडी ऋद्धि को प्राप्त हुआ है। इस प्रकार जैन ग्रन्थों में भी जाति-पाँति के भेदभाव और ऊँच-नीच पर आधृत वर्ण-व्यवस्था की कटु आलोचना की गयी है। इस प्रकार शास्त्रीय ऐतिहासिक तथा अन्य प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि अनादिकाल से ही जैनधर्म में वर्ण-व्यवस्था की मर्यादा कर्ममूलक ही

---

१ अहिंसा पुव्वसयोग णाइसंगे य बम्भवे।

॥

वइ स्से कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणो॥

उत्तराध्ययन २५।२९-३३।

२ सक्खं सुदीसइ तवो विसेसो
न दी सई जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्ते हरिएस साहू
जस्सेरिस्साइडिढ महाणुभागा॥

वही १२।३७।

रही है जन्ममूलक नहीं। श्रेष्ठ का आधार वर्ण या व्यवसाय नहीं वरन् नैतिक विकास है। वर्ण परिवर्तनीय है। नैतिक साधना का द्वार सभी के लिए खुला हुआ है। चारों ही वर्ण श्रमण-संस्था में प्रवेश पाने के अधिकारी हैं।

तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि बौद्ध और जैनधर्मों में वर्ण-व्यवस्था प्रारम्भ से ही जन्म के आधार पर नहीं अपितु योग्यता पर अवलम्बित मानी जाती थी। उनके अनुसार जो मनुष्य विद्या सत्य सदाचार अध्ययन और आध्यात्मिक विद्या में उत्कृष्ट योग्यता प्राप्त करता है वही सच्चा ब्राह्मण है जो वीरता के काम में निपुण है वह क्षत्रिय है जो वाणिज्य और शिल्पकला में प्रख्याति प्राप्त किये है वह वैश्य है और जो सेवाभाव में अपना जीवन लगाता है उसे शूद्र कहा जा सकता है। दोनों धर्मों के सिद्धान्त किसी भी व्यक्ति को दैवयोग से शूद्रकुल में उत्पन्न होने के कारण आजन्म नीच कार्य करने को बाध्य नहीं करते थे। मानव-समाज का संगठन योग्यता और उत्कृष्टता के सिद्धान्तों पर अवलम्बित था। देशकाल और परिस्थिति के परिवर्तन के कारण बौद्ध और जैन दोनों धर्मों में अनेक विचार अवश्य उत्पन्न होते गये किन्तु दोनों के अन्तःस्थल में एक ही संस्कृति की झलक पूर्ववत् ही विद्यमान है।

**धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर सच्चे ब्राह्मण का स्वरूप**

बौद्ध और जैन-परम्परा ने सदाचरण को मानवीय जीवन में उच्चता और निम्नता का प्रतिमान माना है अर्थात् सदाचरण को ही ब्राह्मणत्व का प्रतीक बताया गया है। धम्मपद के छब्बीसवें वर्ग एवं उत्तराध्ययनसूत्र के पचीसवें अध्ययन में ब्राह्मण कौन है और उसके क्या लक्षण हैं इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए सविस्तार वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम ब्राह्मण शब्द के महत्त्व का वर्णन है। वस्तुतः ब्राह्मण जाति कुल स्थान विशेष के कारण नहीं हो सकता है क्योंकि वह केवल मानव-गुणों का प्रतीक मात्र है। भगवान् बुद्ध तथा महावीर के अनुसार जिसने अपने जीवन में मानव गुणों का सम्यक् विकास किया है वही ब्राह्मण कहा जा सकता है। इस अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कतिपय विशेष पदों का प्रयोग किया गया है जो आचार-परिशुद्धि चित्त-परिशुद्धि विचार परिशुद्धि व्यवहार परिशुद्धि तथा आध्यात्मिक उपलब्धि से सम्बन्धित हैं। इस पृष्ठभूमि में ब्राह्मण की जो अवधारणा विकसित होती है उसे निम्नलिखित क्रम से दर्शाया जा सकता है।

सच्चा ब्राह्मण अग्नि के समान लोगों के द्वारा वन्दनीय और पूजनीय होता है तथा तेजस्विता धारण करनेवाला होता है। जो किसीमें आसक्ति नहीं रखता तथा हर्ष एवं शोक से रहित और स्वाध्याय में रत है वही सच्चा ब्राह्मण कहलाने का

१ धम्मपद गाथा-संख्या ३९२ उत्तराध्ययन २५।१९।

अधिकारी है क्योंकि उसमें शास्त्रोक्त ब्राह्मणत्व के सभी गुण विद्यमान हैं। ठीक इसी प्रकार साधन-सामग्री के द्वारा जिस आत्मा ने मलरूप बाह्य और राग-द्वेषरूप अन्तरंग काल को दूर करके अपने को सर्वथा निर्मल बना लिया है उसीको यथार्थ रूप में ब्राह्मण कहा गया है क्योंकि इसके अन्तर्गत ब्राह्मणत्व के सम्पादक तप का अनुष्ठान इन्द्रियों का दमन व्रतों का पालन और पूर्ण समता ये चारों गुण विद्यमान हैं। त्रस अथवा स्थावर किसी भी जीव को मन वचन और शरीर के द्वारा जो कष्ट नही पहुचाता और कष्ट देने के लिए किसीको प्रेरणा नहीं करता और यदि कोई कष्ट देवे तो उसको भला नही समझता। तात्पर्य यह है कि तीन योग और तीन कारणों से जो अहिंसा-धर्म का पालन करता है वही सच्चा ब्राह्मण कहलाने का अधिकारी है।[1] ब्राह्मणत्व के स्वरूप का निरूपण करने के साथ-साथ इस बात को भी ध्वनित किया गया है कि क्रोध मान माया लोभ हास्य और भय आदि के कारणों से ही मनुष्य झूठ बोलते हैं। कोई क्रोध के आवेश में आकर असत्य बोल जाता है किसीको लोभ के वशीभूत होने पर असत्य बोलने के लिए बाधित होना पडता है तथा भय के कारण एव हास्य के कारण भी अनेक पुरुष झूठ बोलते देखे जाते हैं परन्तु जो व्यक्ति इन उक्त कारणो के उपस्थित होने पर भी झूठ नही बोलता वास्तव में सच्चा ब्राह्मण वही ह। ससार म जितने भी पदाथ हैं उनको सचित्त ( सजीव चेतनावाले ) और अचित्त ( निर्जीव चेतनारहित ) इन दो भागों म बाँटा गया है। तात्पर्य यह है कि बिना दिये किसी वस्तु का ग्रहण करना चोरी है। इसलिए कोई भी वस्तु क्यों न हो जब तक उसका स्वामी उसको लेने की आज्ञा न दे देवे तब तक उसको लेने की शास्त्र आज्ञा नही देता। अर्थात् जो व्यक्ति बिना दिये किसी वस्तु को ग्रहण नही करता उसे सच्चा ब्राह्मण कहा गया है। कामविषयक मानसिक चिन्तन और वाणी द्वारा कामोद्दीपक विषयों का निरूपण करना भी ब्रह्मचारी के लिए त्याज्य है। कारण कि जिसके अन्त करण म काम-सम्बन्धी वासना विद्यमान है और जो अपनी वाणी के द्वारा काम वद्धक सामग्री का सुन्दर शब्दों में वणन करते हैं व पूर्णरूप से ब्रह्मचय का पालन करने वाले नही कहे जा सकते। अपितु जिसने मथुन का परित्याग कर दिया है रति और अरति को छोड जो शा त और क्लेशरहित है वही पूर्ण ब्रह्मचारी सवलोक विजयी

१ धम्मपद ४१ ४११ ४१६ उत्तराध्ययन २५।२ २१।
२ धम्मपद ३९५ ४ उत्तराध्ययन २५।२२।
३ धम्मपद ४ ५ ४ ६ उत्तराध्ययन २५।२३।
४ धम्मपद ४ उत्तराध्ययन २५।२४।
५ धम्मपद ३९ ४ ९ उत्तराध्ययन २५।२५।

धीर तथा उसीको सच्चा ब्राह्मण कहा गया है। जैसे कमल कीचड से उत्पन्न होकर जल के ऊपर ठहरता है और जल के द्वारा वृद्धि को प्राप्त करता हुआ भी जल से उपलिप्त नहीं होता है ठीक इसी प्रकार जो कामभोगों से उत्पन्न और वृद्धि को प्राप्त करके भी उनमें उपलिप्त नही होता उसीको सच्चा ब्राह्मण कहा गया है।

इस प्रकार मूल गुणो के द्वारा ब्राह्मणत्व का निरूपण किया गया। अब उत्तर गुणों से भी उसका वणन किया जा रहा है। लोलुपता से रहित अर्थात् रसों में मूर्च्छा न रखनेवाला भिक्षावृत्ति से जीवन-यात्रा चलानेवाला गृह और मठादि से रहित द्रव्यादि का परित्यागी और गृहस्थों से अधिक परिचय न रखनेवाला आचार सम्बन्धी इन आचरणीय गुणो से युक्त व्यक्ति को ही ब्राह्मण कहा गया है। केवल सिर मुडा लेने से कोई व्यक्ति श्रमण नहीं बन सकता जब तक उसमें श्रमणोचित गुण विद्यमान न हो और न ही कोई पुरुष मात्र ॐकार अर्थात ॐ भूर्भुव स्व इत्यादि गायत्री मन्त्र के उच्चारण कर लेने मात्र से ब्राह्मण हो सकता है। अपितु ब्राह्मणोचित गुणों का धारण करना आवश्यक ह। इसी प्रकार केवल वन में निवास कर लेने मात्र से मुनि और वल्कल आदि के पहन लेने से कोई तपस्वी भी नही हो सकता। तात्पर्य यह है कि ये सब बाहरी आडम्बर तो केवल पहचान के लिए ही हैं। इनसे काय सिद्धि का कोई सम्बन्ध नही। कार्य सिद्धि का सम्बन्ध तो अन्तरग साधनो से ही है। राग द्वेष आदि से अलग होकर जिसके आत्मा म समभाव की परिणति हो रही हो वह श्रमण है। इसी प्रकार मन वचन और शरीर से ब्रह्मचय को धारण करनेवाला ब्राह्मण कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार ज्ञान से मुनि होता है अर्थात जो तत्त्व विद्या में निष्णात हो वह मुनि है। इसी भाँति तप का आचरण करनेवाला तापस है। इच्छा के निरोध को तप कहते हैं अर्थात् जिसने इच्छाओं का निरोध कर दिया ह वह तपस्वी है। इस प्रकार देखा जाता है कि गुणों से ही पुरुष श्रमण ब्राह्मण मुनि और तपस्वी हो सकता है न कि बाहर के केवल वेषमात्र से। इस प्रकार इन धर्मों के आराधन से यह जीव स्नातक हो जाता है और कर्मों के बन्धन से सवथा मक्त हो जाता है।

---

१ धम्मपद ४१८ उत्तराध्ययन २५।२६।

२ धम्मपद ४ १ उत्तराध्ययन २५।२७।

३ धम्मपद ४ ४ उत्तराध्ययन २५।२८।

४ धम्मपद २६४ २६६ २६८ २७ ३९३ उत्तराध्ययन २५।३१।

५ धम्मपद २६५ २६९ उत्तराध्ययन २५।३२।

६ जैनमत म स्नातक नाम केवली का है और बौद्ध-मत में बुद्ध को स्नातक माना गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र आत्माराम टीका पृ ११३३।

तात्पय यह है कि अहिंसा आदि महाव्रतों के यथाविधि अनुष्ठान से यह आत्मा केवल ज्ञान की प्राप्ति करता हुआ सब प्रकार के कर्मों का समूल घात कर देता है। वही सच्चा ब्राह्मण है।

इस प्रकार ब्राह्मण के जो लक्षण बताये गये हैं वास्तव में वही यथार्थ हैं। अर्थात् इन लक्षणो से लक्षित या इन गुणों से युक्त जो व्यक्ति है उसीको ब्राह्मण कहना चाहिए। दोनों ग्रन्थों म ब्राह्मणत्व के यथावत् स्वरूप को बहुत ही अच्छी तरह से प्रदर्शित किया गया है। अपने और पर के आत्मा का उद्धार करने में कौन पुरुष समथ हो सकता है इसका उत्तर प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है। अहिंसा और सत्य आदि जितने भी ब्राह्मणत्व के सम्पादक गुण हैं उन गुणों से युक्त जो आत्मा है वही अपने और पर के उद्धार करने में समर्थ है और इसीलिए वह द्विजों में श्रेष्ठ है। इसके विपरीत जिस आत्मा में उक्त गुण विद्यमान नहीं हैं वह वास्तव में वेदवित यज्ञार्थी और धम का पारगामी भी नहीं है। जैसे कीचड से कीचड की शुद्धि नही हो सकती उसी प्रकार हिंसा आदि क्रूर कर्मों के आचरण से आत्मा की शुद्धि भी नही हो सकती। इसीलिए सच्चा ब्राह्मण बनने तथा स्व पर का उद्धारक बनने के लिए पूर्वोक्त गुणों का धारण करना नितान्त आवश्यक है। दोनो ग्रन्थों में सच्चे ब्राह्मण के स्वरूप का जो विवरण मिलता है उनम वैचारिक साम्यता के साथ ही साथ स्पष्ट शाब्दिक साम्यता भी है।

**धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र के आधार पर भिक्षु का स्वरूप**

धम्मपद के पचीसवें भिक्खुवग्ग तथा सभिक्ख नामक उत्तराध्ययनसूत्र के पन्द्रहवें अध्ययन म भिक्षुओं के ही गुणों का यत्किंचित् उल्लेख किया गया है और बतलाया गया है कि वास्तविक भिक्षु कौन ह ?

भिक्षु के लिए पालि में भिक्खु शब्द व्यवहृत है जिससे तात्पय है गृहत्यागी भिक्षा से जीवन निर्वाह करनेवाला परिव्राजक। इस प्रकार जैन एवं बौद्ध दोनो परम्पराओं में भिक्षु-जीवन को पवित्र बनाये रखने के लिए विभिन्न नियमो का विधान है। धम्मपद के अनुसार भिक्षु उसे कहते हैं जो अपने हाथ पाँव और वाणी को वश में रखता है जो भली प्रकार सयमी है जो आत्मिक विचारों में आनन्द मनाता है जो स्थिरचित्त एकान्तसेवी तथा सन्तोषी है। जो अपनी वाणी को वश म रखता है जो बुद्धिमत्ता तथा शान्ति से बोलता है जो धर्म और उसके अथ की शिक्षा देता है उसके वचन मीठे होते हैं। जो धम के अनुसार चलता है धम म आनन्द मनाता है धर्म का मनन करता है धर्म के अनुसार चलता है वह भिक्षु सत्य धम से कभी नही हटेगा।

---

१ धम्मपद ४२२ उत्तराध्ययन २५।३४।

जो वस्तु भिक्षु को मिले उसका वह तिरस्कार कभी न करे दूसरों के साथ कभी ईर्ष्या न करे। जो भिक्षु दूसरों के साथ ईर्ष्या करता है उसे मानसिक शान्ति कभी नहीं मिल सकती। जो भिक्षु थोड़ी वस्तु मिलने पर भी उसका तिरस्कार नही करता जिसका जीवन पवित्र है और जो आलसी नही है ऐसे भिक्षु की देवता भी स्तुति करते हैं। जो भिक्षु अपने-आपको नाम और रूप म नही समझता और जो नाशवान् पदार्थों पर शोक नही करता वही सच्चा भिक्षु है। जिस भिक्षु का आचरण दयापूण है जो बौद्ध धर्म में आनन्द मानता ह वह भिक्षु सब सस्कारों के नाश होने से सुख और परमशान्ति रूप निर्वाण को प्राप्त होता है। भिक्षु इस जीवनरूपी नौका को खाली कर खाली होने से इसकी गति तेज हो जायगी विषय विकार और घृणा को दूर कर देन से त निर्वाण-पद का प्राप्त करेगा। पाँच इन्द्रियो (सत्काय दष्टि विचिकित्सा शीलव्रत परामश कामराग और व्यापाद) के विकारो को दूर कर पाँचो (रूपराग अरूपराग मान औद्धत्य औ अविद्या) विकारो को त्याग पाँचो (श्रद्धा वीय स्मृति समाधि और प्रज्ञा) विकारो से ऊपर उठ जो भिक्षु पाँचों बन्धनो स छट गया है उसे प्रवाह से सुरक्षित कहत ह। आग उ होने कहा हे भिक्षु! मनन कर प्रमादी मत बन। भोगो की ओर अपन मन के घोड मत दौडा ताकि तुझ अपने प्रमाद के कारण नरक की आग में जलते समय दु ख दु ख कहकर चिल्लाना न पड। ज्ञान के बिना ध्यान सम्भव नही ध्यान बिना ज्ञान सम्भव नही। जिसके पास ज्ञान और ध्यान दोनो ह वह निर्वाण के बिल्कुल निकट है। जो भिक्षु विषय विकारो से रहित निमल शरीर म प्रवेश करता है जिसका मन शान्त ह वह जिस समय धम के मम का अनुभव करता है तो उसे अलौकिक आनन्द मिलता है। ज्योही वह पचभौतिक शरीर के कारण और नाश पर विचार कर लेता ह योही उसे निर्वाण-पद के अधिकारियो के बराबर आनन्द और सुख मिलता ह। इन्द्रियो का निग्रह सन्तोष धर्मानुसार सयम पवित्र और अप्रमत्त जीवनवाले मित्रो का संग सबके प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार अपन कतव्यो म परिपूर्ण रहनेवाला भिक्षु सब प्रकार के दु खो से छट जाता है। जिस भिक्षु ने अपने शरीर जबान और मन का सयम कर लिया है जो स्थिरचित्त ह जिसन ससार की प्रलोभनाओं को त्याग दिया है वह शान्त कहलाता ह। हे भिक्षुओ! अपने पुरुषार्थ से अपने-आपको चैतन्य कर स्वय अपनी परीक्षा कर जब त आत्मरक्षित रहेगा और मेधावी होगा तो सुखी रहेगा। भगवान् बुद्ध के धम म मग्न आनन्द से पूर्ण भिक्षु कामनाओ से रहित शान्ति के धाम निर्वाण-पद का प्राप्त कर बादलो से मुक्त चन्द्रमा की तरह इस ससार को प्रकाशित करता है।[1]

इसी प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र म भी आदश भिक्षु-जीवन का परिचय वर्णित

१ धम्मपद गाथा-सख्या ३६१–३८२।

है। सर्वप्रथम भिक्ष के कर्तव्यों का दिग्दर्शन किया गया है। इसीलिए भिक्षु के निम्न लिखित कर्तव्य बतलाये गये हैं। यथा—तत्त्वार्थ में पूर्ण श्रद्धा रखनेवाला कपट से रहित होकर क्रियानुष्ठान करनेवाला निदानरहित संसारियों के परिचय का त्यागी विषयों की कामना को छोड़कर मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाला और अज्ञात कुलों की गोचरी करनेवाला अर्थात् जो इन पूर्वोक्त नियमो के पालन करनेवाला हो वह भिक्षु कहलाता है। अब भिक्ष के स्वरूप का वर्णन उसके गुणों द्वारा किया जा रहा है जैसे जो राग और द्वेष से रहित संयम में दृढ़तापूर्वक विचरनेवाला असंयम से निवृत्त शास्त्रज्ञ आत्मरक्षक बुद्धिमान् परीषहजयी समदर्शी और रक्षचित्त अचित्त एवं मिश्रित रूप किसी पदार्थ पर भी ममत्व न रखनेवाला हो वही सच्चा भिक्ष है। कठोर वचन और प्रहार को जानकर समभाव से सहे सदाचरण में प्रवृत्ति करे सदा आत्मगुप्त रहे जो अव्यगमन से संयममार्ग म आनेवाले कष्टों को समभाव से सहन करता है वही भिक्ष ह। तात्पर्य यह ह कि भिक्षु-पद की सार्थकता शान्तिपूर्वक कष्टों के सहन करने मे है केवल वेश भूषा धारण करने म नही। शय्या और आसन यदि इच्छानुकल न मिले तो भी अर्थात् निस्सार शय्या आसन और भोजन आदि का उपयोग करके शीत उष्ण तथा दंस मशक आदि परीषहो के उपस्थित होने पर भी जो मुनि व्याकुल नही होता तथा हर्ष और विषाद को प्राप्त नही होता किन्तु धैर्यपूर्वक सब परीषहो को सहन कर लेता ह वही भिक्ष ह। जो पूजा-सत्कार नही चाहता वन्दना प्रशसा का इच्छुक नही है वह सयती सुव्रती तपस्वी आत्मगवषी आदि गुणों से जो विभषित ह वह भिक्ष कहलाता है। अब भिक्ष के जीवन म सयम के विघात करनेवाले पदार्थों के ससग का निषध किया गया ह। इस प्रकार के स्त्री-पुरुषों की सगति को जो तपस्वी सदा के लिए छोड देता ह क्योकि इनके ससर्ग से आ मगुणो की विराधना होने की सम्भावना ह तथा जो कुतूहल को प्राप्त नही होता क्योकि इससे मोहनीय कर्म का बन्ध होता है। एसे विचारो का सर्वथा याग करनेवाला साधु भिक्षु कहलाता है। भिक्षु के मुख्य कर्तव्यों का वर्णन करने के साथ ही साथ उसको अपनी जीवनयात्रा के लिए जिन कामो का निषेध है उसका भी वर्णन किया गया है कि साधु निम्नलिखित विद्याओं के द्वारा शरीर यात्रा चलाने अर्थात् आहार पानी आदि की गवेषणा न करे यथा—छेदन विद्या स्वर विद्या भूकम्प अन्तरिक्ष स्वप्न-लक्षण दण्ड वास्तु अंग विचार पशु-पक्षियों की बोली जानना इन विद्याओं से जो अपनी आजीविका नहीं करता वही भिक्ष है। जो मन्त्र जड़ी बूटी विविध वैद्य प्रयोग वमन विरेचन धूम्र योग आँख का अजन स्नान आतुरता माता पितादि की शरण और चिकित्सा इन सबको ज्ञान से हेय जानकर छोड देते हैं क्षत्रिय मल्ल उग्रकुल राजपुत्र ब्राह्मण भोगिक और विविध प्रकार के शिल्पी इनकी प्रशंसा और पूजा नहीं करता इनकी सदोषता

जानकर त्याग देता है वही भिक्षु है। जो दीक्षा लेने के बाद या पहले गृहस्थों को देखा हो परिचय हुआ हो उनके साथ इहलौकिक फल की प्राप्ति के लिए विशेष परिचय नहीं करता वही भिक्षु है। गृहस्थ के यहाँ आहार पानी शय्या आसन तथा अनेक प्रकार के खादिम-स्वादिम होते हुए भी वह नहीं दे और इनकार कर दे तो भी उस पर द्वेष न करे वही निग्रन्थ भिक्षु है। गृहस्थों के यहाँ से आहार-पानी और अनेक प्रकार के खादिम-स्वादिम प्राप्त करके जो बाल-वृद्धादि साधुओं पर अनुकम्पा करता है मन वचन और काया को वश म रखता है ओसामण जौ का दलिया ठण्डा आहार काँजी का पानी जौ का पानी और नीरस आहारादि के मिलने पर जो निन्दा नहीं करता तथा प्रान्तकुल में गोचरी करता है वही भिक्षु ह। लोक में देव मनुष्य और तिर्यञ्च-सम्बन्धी अनेक प्रकार के महान भयोत्पादक श ब्द होत हैं उन्हे सुनकर जो चलित नहीं होता वही भिक्षु ह। लोक म प्रचलित अनेक प्रकार के वादो को जानकर जो विद्वान् साधु आत्महित म स्थिर होकर सयम म दृढ़ रहता ह और परीषहो को सहन करता ह तथा सब जीवो को अपने समान देखता हुआ उपशान्त रहकर किसीका बाधक नहीं बनता वही भिक्षु है। अशिल्पजीवी गृहरहित मित्र और शत्रु से रहित जितेन्द्रिय सवथा मुक्त अल्पकषायी अ पाहारी परिग्रहत्यागी होकर जो एकाकी राग-द्वषरहित विचरता है। अर्थात् इस प्रकार के उक्त गुण जिस व्यक्ति मे विद्यमान हो उसे ही भिक्षु मुनि और सच्चा यागशील भिक्षु कहा जाता है।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता ह कि दोनो ही ग्रन्थो के अनुसार जो व्यक्ति विषयो से निरासक्त होकर एकमात्र मुक्ति-लाभ के लिए भिक्षु बना है उसका जीवन सामाजिक सुख-सुविधाओ से मा यताओं एव धारणाओ से एकदम भिन्न होता है। सबसे प्रथम वह निभय होता ह। वह किसीसे कभी डरता नहीं है। न सम्मान और प्रतिष्ठा से इतराता है। उसके मन म अमीर और गरीब का भद भी नहीं होता है। वह निरन्तर एकरस अपनी साधना की मस्ती म और स्व की खोज में लगा रहता है। वह उन लोगों से दूर रहता है जिनसे उसके लक्ष्य की पति म बाधा आती हो। वह व्यथ के लोक-व्यवहार और सम्पर्क से सवथा अलग रहकर सीमित सयमित और जागृतिपर्ण जीवन जीता है। इस प्रकार का जीवन जीनेवाला भिक्षु होता है। निन्दा और स्तुति से मुक्त राग और द्वेष से उपरत विशिष्ट सर्वोत्तम स्वलक्ष्य की दिशा में ही उसके जीवन की मगलयात्रा होती ह। भिक्षु के सयमी जीवन की यह वास्तविक सहिता है। ●

---

१ उत्तराध्ययनसत्र १५।१–१६। उदधृत जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ ३८६।

अध्याय ५

# धम्मपद में प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक धारणाएँ और उनकी उत्तराध्ययन में प्रतिपादित मनोविज्ञान से तुलना

प्रस्तुत अध्याय में धम्मपद और उत्तराध्ययन में प्रतिपादित मनोवैज्ञानिक धारणाओं का अध्ययन किया गया है और इसी सन्दर्भ में आत्मा-जीव चित्त का स्वरूप अप्रमाद कषाय तृष्णा अहिंसा आदि के विषय में बौद्ध और जैन-मान्यताओं का तुलनात्मक विवेचन है।

बौद्धधर्म का रूप मनोवैज्ञानिक है। धर्म मनोविज्ञान बनकर बौद्ध-साधना म आया है यह बौद्धधर्म की एक बडी विशेषता है। प्राचीन वैदिक धर्म बाह्यपरक था। उसमें देवताओ की उपासना थी प्रारम्भ में जिनका स्वरूप प्रकृति की शक्तियों के प्रतीक रूप म था। बाद में उपनिषदो के युग में अन्दर की खोज प्रारम्भ हुई। उसी परम्परा का प्रवर्तन हम बुद्ध के विचार में मिलता है परन्तु जहाँ उपनिषदो में गवेषणा का स्वरूप तात्त्विक है भगवान् बुद्ध ने मनुष्य के आन्तरिक व्यक्तित्व का विश्लेषण मानवीय दृष्टिकोण से किया है। उपनिषद परमसत्य की खोज करते हैं और बुद्ध शासन में मनुष्य के चित्त और चेतसिक शक्तियो की खोज इस उद्देश्य से की गयी है कि वे कहाँ तक मनुष्य की विमुक्ति में सहायक हैं। इसी अर्थ म उपनिषदों के मनोविज्ञान को तात्त्विक और बौद्ध-मनोविज्ञान को मानवीय कहा गया है। सश्लेषणात्मक दृष्टि दोनों म प्राय समान है।

## बौद्ध-दर्शन मे चित्त का स्वरूप

साधारण रूप से जिसे हम जीव कहते हैं बौद्ध लोग उसीके लिए चित्त शब्द का प्रयोग करते हैं। चित्त की सत्ता तभी तक है जब तक इन्द्रिय तथा ग्राह्य विषयों के परस्पर घात प्रतिघात का अस्तित्व है। ज्योंही इन्द्रियो तथा विषयो के परस्पर घात प्रतिघात का अन्त हो जाता है त्योंही चित्त की भी समाप्ति हो जाती है। यह कल्पना केवल स्थविरवादियों तथा सर्वास्तिवादियों को ही मान्य नही है अपितु योगाचार-मत में भी चित्त नित्य स्थायी स्वतन्त्र पदार्थ विशेष नही है। इस मत में चित्त ही नि सन्दिग्ध एकमात्र परमतत्त्व है परन्तु इतने पर भी उसकी स्वतन्त्र सत्ता नही रहती। प्रत्येक चित्त प्रतिक्षण सर्वदा परिवर्तित होता रहता है और कार्य कारण के नियमानुसार नवीन रूप धारण करता रहता है बौद्धधर्म में चित्त मन

---

१ बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन भाग १ पृ ४९१।

विज्ञान प्राय समानार्थी शब्द हैं। जो सचय करता है वह चित्त है ( चिनोति )। मनस् की व्युत्पत्ति बौद्ध ग्रन्थो म मा धातु से बतलायी जाती ह। मा का अथ है मापना जोखना किसी वस्तु के विषय में निश्चय करना। यह मन है क्योंकि यह मनन करता है ( मनुते )। अत जब हमें चित्त की निणयात्मक प्रवृत्ति रखनेवाले अश पर प्रधानता देनी रहती है तब हम मन का प्रयोग करते हैं। विज्ञान इन दोनो की अपेक्षा पुराना शब्द ह। चित्त वस्तुओं के ग्रहण में जब प्रवृत्त होता ह तब उसकी सज्ञा विज्ञान है ( विशेषेण ज्ञायते अनेनेति विज्ञानम् )। यह विज्ञान है क्योंकि यह अपने आलम्बन को जानता है। चित्त मन तथा विज्ञान के उक्त लक्षणों से यह स्पष्ट है कि इनके ( व्युत्पत्ति से किये जानेवाले ) लक्षण भले ही भिन्न भिन्न हो किन्तु तीनो शब्द एक ही अर्थ को व्यक्त करते हैं।

## जैन दर्शन मे मन का स्वरूप

जैन दृष्टिकोण के अनुसार जो मनन करना अथवा जिसके द्वारा मनन किया जाता है वह मन है। मन भी एक प्रकार का द्र य ह। मन के द्वारा ही सुख-दु ख आदि की अनुभूति होती है। आत्मा स्वय किसी वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान नही प्राप्त करती। इसम मन अथवा मनस का सहयोग आवश्यक है। जब इन्द्रियो को सवदन होता है तब इसका प्रत्यक्ष ज्ञान आ मा को मन के माध्यम से होता ह। दूसरे श दो म इन्द्रियो और आत्मा के बीच की कडी मन ह। मन के मा यम से ही जीवात्मा प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है। किसी विशेष इन्द्रिय द्वारा किसी वस्तुविशेष का ज्ञान तब तक नही होता जब तक मन का आधार नही मिलता। मन इन्द्रिय विशेष से प्राप्त ोने वाले वस्तु विशेष का ज्ञान आत्मा तक पहुचाता ह। इस प्रकार मन के माध्यम से वस्तु का प्र यक्ष ज्ञान होता ह। इसके अतिरिक्त विचार और भाव-सम्ब धी अनुभव भी आत्मा को मन के ही द्वारा होते हैं। सोच विचार करना आ मा का नही मन का काय है। इस प्रकार जन मनोविज्ञान यह मानता है कि आ मा समस्त अनुभवो का आधार है और मन अनुभव प्राप्त करन का माध्यम है।

---

१ बौद्धधम-दशन प ३३३।

२ वही।

३ अभिधमकोश २। ४

४ मन मनन मन्यते अनेन वा मन ।
जन-दशन मनन और मीमासा पृ ४८७।

५ मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रूपरेखा पृ ५१६ ।

## बौद्धधर्म में चित्त का संयम

जो कुशल या अकुशल धर्मों का सचय करता है उसे चित्त कहते हैं। चित्त को भगवान बुद्ध ने सबसे अधिक सूक्ष्म तत्त्व माना है। उनका कथन है कि मन सभी प्रवृत्तियो का अगुआ है मन उसका प्रधान है वे मन से ही उत्पन्न होती है। यदि कोई दूषित मन से वचन बोलता है या काम करता है तो दुःख उसका अनुसरण उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कि चक्का-गाडी खीचनेवाले बैलो के पैर का। जिस प्रकार मन के ऊपर सयम रखना चाहिए उसी प्रकार सभी इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए। जो स्वच्छ मन से भाषण एव आचरण करता है सुख उसका उसी प्रकार अनुगमन करता ह जिस प्रकार कभी साथ न छोडनेवाली छाया। धम्मपद में कहा गया ह कि वर से वर कभी शान्त नही होते अतएव द्रोह व वैर का सवथा परित्याग करके मत्री की भावना मन म रखकर शत्रु से भी अवैर व्यवहार करना चाहिए। मन क सब प्रकार के दोष या मल को धो डालना चाहिए। ध्यान भावना का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए क्योकि उसके अभाव म मन में राग घुस आता है। प्रमाद को त्यागकर राग द्वेष और मोह को छोडकर अनासक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए।

### जन-दशन में मन का सयम

डॉ सागरमल जैन का कथन है कि जन-दशन में मन मुक्ति के माग का प्रवेश-द्वार है। वहाँ केवल समनस्क प्राणी ही इस मार्ग पर आगे बढ सकते हैं। अमनस्क प्राणियो को तो इस राजमाग पर चलने का अधिकार ही प्राप्त नहीं है। सम्यग्दष्टि केवल समनस्क प्राणियो को ही प्राप्त हो सकती है और वे ही अपनी साधना के द्वारा मोक्षमाग की ओर बढने के अधिकारी हैं। सम्यग्दशन को प्राप्त करने के लिए तीव्रतम क्रोधादि आवेगो का सयमन आवश्यक है क्योकि मन के द्वारा ही आवेगों का संयमन सम्भव है। इसीलिए कहा गया ह कि सम्यग्दशन की प्राप्ति के लिए की जानवाली ग्रन्थ भेद की प्रक्रिया में यथाप्रवृत्तिकरण तब होता है जब मन का योग होता है।[3]

---

१ मनो पुब्बङ्गमाधम्मा मनोसेट्ठा मनोमया।

ततो न सुखमन्वेति छाया व अनपायिनी॥

धम्मपद १ २ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८१।

२ न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन। धम्मपद ५।

३ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८२।

उत्तराध्ययनसूत्र में महावीर कहते हैं कि मन की समाधि से एकाग्रता की प्राप्ति होती है और जब एकाग्रता की प्राप्ति हो गयी तब यह जीव ज्ञान के पर्यायों को प्राप्त करता है अर्थात् मति श्रुति आदि ज्ञानों को तथा ज्ञान की अन्य शक्तियो को प्राप्त कर लेता है। तात्पय यह है कि उसका ज्ञान अति निमल हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान के पर्यायों को प्राप्त करके यह जीव सम्यक्त्व को विशुद्ध कर लेता है क्योंकि ज्ञान के निमल होने से उसके अन्त करण में शका आदि दोषो की उत्पत्ति नही होती तथा सम्यक्त्व की विशुद्धि होने पर मिथ्यात्व का विनाश अवश्यम्भावी है इसलिए यह जीव सम्यक्त्व की विशुद्धि के साथ ही मिथ्यात्व का विनाश भी कर डालता है। इस प्रकार अज्ञान का निवतन और सत्य दृष्टिकोण की उपलब्धि जो निर्वाण की अनिवाय शर्त है बिना मन शुद्धि के सम्भव नही है। अत जैनधम में मन मुक्ति का आवश्यक हेतु है। शुद्ध सयमित मन निर्वाण का हेतु बनता है जब कि अनियन्त्रित मन ही अज्ञान अथवा मिथ्यात्व का कारण होकर प्राणियों के बन्धन का हेतु है। धम्मपद मे कहा गया है कि कुमाग पर लगा हुआ चित्त सर्वाधिक अहितकारी और सन्मार्ग पर लगा हुआ चित्त हितकारी है। जो इसका सयम करेंगे व मार के बन्धन से मुक्त हो जायगे।

यह प्रश्न उठता है कि मन को ही बन्धन और मुक्ति का कारण क्यों माना गया ? बन्धन के कारण राग द्वष मोह आदि मनोभाव आत्मिक अवश्य माने गये हैं लेकिन बिना चेतन सत्ता के य उत्पन्न नही होते हैं। इसलिए यह कहा गया है कि मन ही बन्धन और मुक्ति का कारण है। बौद्ध और जैन-दशन इस बात से सहमत हैं कि

---

१ मणसमाहारणयाएण एगग्गजणयइ।
एगग्ग जणइत्तानाणपज्जवे जणयइ।
नाणपज्जवे जणइत्ता सम्मत्त विसोहेइ मिच्छत्त च निज्जरेइ।
उत्तराध्ययन २९।५७ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ४८१।

२ दिसो दिस यन्त कयिरा वेरी वापन वेरिन।
मिच्छापणि हित चित्त पापियो न ततो करे॥
न तमाता पिता कयिरा अञ्ञे वापि च नातका।
सम्मापणिहित चित्त सेय्यसो न ततो करे॥
धम्मपद ४२ ४३।

३ ये चित्त सञ्ञमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारबन्धना। वही ३७।

४ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८५।

बन्धन का कारण अविद्या है। प्रश्न यह है कि इस अविद्या का वास-स्थान क्या है? अविद्या का वास-स्थान मन को ही माना जा सकता है जो जड़-चेतन की योजक कड़ी है। अत मन में ही अविद्या निवास करती है और मन का निवर्तन होने पर शुद्ध आत्मदशा में अविद्या की सम्भावना किसी भी स्थिति म नही हो सकती है। इस प्रकार हम देखत हैं कि बौद्ध और जैन-दर्शनों का केन्द्रबिन्दु मन है। मन को नैतिक जीवन के लिए अत्यधिक महत्त्वपूण माना गया है। उनके अनुमार मन ही नैतिक उत्थान और नतिक पतन का महत्त्वपूण साधन है। इसीलिए दोनों दर्शनों में मन के संयम के ऊपर जोर दिया गया है।

भारतीय दर्शन में इच्छा निरोध या वासनाओं के दमन का स्वर काफी मुखरित हुआ है। डॉ जैन के अनुमार बौद्ध और जैन-दर्शन के अधिकांश विधि-निषेध इच्छाओ के दमन से सम्बन्धित हैं। इच्छाए तृप्ति चाहती हैं और तृप्ति बाह्य साधनों पर निभर है। यदि बाह्य परिस्थिति प्रतिकल हो तो अतृप्त इच्छा मन में ही क्षोभ उत्पन्न करती ह और इस प्रकार चित्त-शान्ति या आध्यात्मिक समत्व भग हो जाता है। अत यह माना गया कि समत्व के नैतिक आदश की उपलब्धि के लिए इच्छाओं का दमन करना अत्यन्त आवश्यक है।[1] मन ही इच्छाओं एव सकल्पों का उत्पादक है अत इच्छा निरोध का अथ मनोनिग्रह भी मान लिया गया है। धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र मे भी इच्छा-निरोध और मनोनिग्रह के प्रत्यय को स्वीकार किया गया है धम्मपद म कहा गया है कि यह चित्त अत्यन्त ही चचल है इस पर अधिकार कर कुमाग से इसकी रक्षा करना अत्यन्त कठिन है। इसकी वृत्तियों को कठिनता से ही निवारण किया जा सकता है अत बुद्धिमान् इसे एसे ही सीधा करे जैसे इषुकार (बाण बनानवाला) बाण को सीधा करता है। यह चित्त कठिनता से निग्रहित होता है अत्यन्त शीघ्रगामी और यथेच्छ विचरण करनेवाला है इसलिए इसका दमन करना ही श्रेयस्कर है दमि किया हुआ चित्त सुखवर्धक होता है। मन को समझना आसान नही यह अत्यन्त चालाक है। दूरगामी एकाकी विचरण करनेवाले

---

१ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८७।

२ फन्दनं चपलं चित्त दुरक्खं दुन्निवारय।
उजु करोति मेधावी उसुकारो व तेजनं॥ धम्मपद ३३।

३ दुन्निग्गहस्सलहुनो यत्थकाम-निपातिनो।
चित्तस्सदमथो साधु चित्तदन्तं सुखावह॥ वही ३५ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८८।

४ सुदुद्दस सुनिपुण यत्थकाम निपातिनं।
चित्त रक्खेथ मेधावी चित्तं गुत्त सुखावहा॥ धम्मपद ३६।

निराकार गुहाशायी स्वभाववाले मन का जो सयम करता है वही सांसारिक बन्धनों से मुक्त होता है। व्यक्ति अपना स्वामी आप है भला दूसरा कोई उसका स्वामी क्या होगा ? अपने को ही अच्छी तरह दमन कर लेने पर वह दुर्लभ स्वामी अर्थात् निर्वाण को प्राप्त करता है। उत्तराध्ययनसूत्र मे कहा गया ह कि यह मन दुष्ट अश्व है जो कि बड़ा रौद्र और उन्मार्ग म ले जानेवाला ह अत साधक सरम्भ ( मैं इसको मार दूँ ऐसा मन मे विचार करना ) समारम्भ ( किसीको पीडा देने के लिए मन में सकल्प करना तथा किसीका उच्चाटनादि के लिए ध्यान करना ) और आरम्भ ( अत्यन्त क्लेश से परजीवो के प्राण हरण करन के लिए अशुभ ध्यान का अवलम्बन ) में प्रवृत्त होते हुए इस मन का निग्रह करे क्योंकि मन की एकाग्रता में सयम स्थापित करने से चित्त का निरोध होता है और जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती ह। धम्मपद म भी कहा गया है कि पहले तो यह चित्त जहाँ चाहे वहाँ गया लेकिन अब मं इस चित्त को वैसे ही काब म रखगा जसे अकुशधारी हाथीवान मस्त हाथी का। बुद्ध का कथन है कि असस्कृत चित्त म राग प्रवेश कर लेता ह लेकिन सुसस्कृत चित्त म राग प्रवेश नही कर सकता। भगवान म ावीर कहत ह कि मनोगुप्ति से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता ह। इसलिए इन्द्रियो के समनोज्ञ विषयो म मन को कभी भी सलग्न न करे। आधुनिक मनोविज्ञान भी इ छाओ के दमन एव मनोनिग्रह को मानसिक समत्व का हेतु न मानकर उसके ठीक विपरीत उसे चित्त विक्षोभ का कारण मानता है।

१ दूरङ्ग मएकचर असरीर गुहासय। धम्मपद ३६।
२ वही १६।
३ मणो साहसिओभीमो दुट्ठस्सोपरिधावई।
त सम्म निगिण्हामिधम्मा सिक्खाएकथग ।। उत्तराध्ययन २३।५८।
४ सरम्भ-समारम्भे आरम्भे य तहेवय।
मण पवत्तमाण तु नियत्त जजयजई ।। वही २४।२१ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अ ययन भाग १ प ४८८।
५ एगग्गमण सनिवेसणा एण चित्त निरोह करइ ।। उत्तराध्ययन २९।२६।
६ धम्मपद ३२६।
७ यथागार दुच्छन्न वुटिठ समति विज्झति।
एव अभावित चित्त रागो समति विज्झति ।।
यथागार सुच्छन्न वुटठिन समति विज्झति।
एव सुभावित चित्त रागो न समति विज्झति ।। वही १३ १४।
८ मणगुत्तयाएण जीवे एगग्ग जणयइ।
उत्तराध्ययन २९।५४।

दमन निग्रह निरोध आज की मनोवैज्ञानिक धारणा में मानसिक सन्तुलन को भङ्ग करनेवाले माने गये हैं।

अतएव जैन-दृष्टि में विकास का सच्चा मार्ग वासनाओ का दमन करना नही बल्कि उसका क्षय करना है। जैन-दृष्टिकोण के अनुसार औपशमिक माग वह माग है जिसम मन की वृत्तियों या निहित वासनाओं को दबाकर साधना के क्षेत्र म आगे बढ़ा जाता है। इच्छाओं के निरोध का माग ही औपशमिक मार्ग है। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में यह दमन का मार्ग है। बौद्ध दशन में वासनाओं के दमन का मार्ग और वासनाओ के भोग का मार्ग दोनों ही बुद्ध की दृष्टि में साधना के सच्चे मार्ग नही हैं। भगवान् बुद्ध ने जिस मध्यम माग का उपदेश दिया उसका आशय यही था कि साधना में दमन पर जो अत्यधिक जोर दिया जा रहा था उसे कम किया जाय। बौद्ध-साधना का आदश तो चित्त शान्ति है जब कि दमन तो चित्त-क्षोभ या मानसिक द्वन्द्व को ही जन्म देता है।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि मन व्यक्ति के अन्तर म एक प्रकार का साधन है जिसके द्वारा वह अपन बाह्य ससार को ग्रहण करता है। मन एक प्रकार की इन्द्रिय नही वरन् इसे एक चेतना के रूप में स्वीकार किया जाता है। यदि यह एक इन्द्रिय के समान होता तो शरीर म इसके लिए कोई निश्चित स्थान पाया जाता। इसलिए मन को जैन-मनोवैज्ञानिक अनिन्द्रिय मानते ह। डॉ मो नलाल महता न अपनी पुस्तक जैन-मनोविज्ञान म यह स्पष्ट किया है कि मन एक प्रकार की चेतन क्रिया ह जो आत्मप्रेरित होती है और जिसके द्वारा आत्मा का सम्बन्ध तथा काय व्यवहार ससार म होता ह। मन के विषय में दार्शनिको म बडा मतभेद ह। सामान्यत यह माना जाता है कि मन की सहायता से आत्मा को ज्ञान होता है। नयायिको ने तो मन को आत्मा की भाँति एक स्वतन्त्र द्रव्य माना है।

बौद्ध-परम्परा में मन के सन्दर्भ म गहन चिन्तन किया गया ह। मनोपुब्बगमा धम्मा और फन्दन चपल चित्त जसे वाक्य मन के स्वरूप को भलीभांति स्पष्ट करते हैं। मन की वृत्ति चपला के समान चचल बता देने से आधुनिक मनोविज्ञान की परिभाषा

---

१ ज इन्दियाणं विसया मणन्ना नते सभाव निसिरे कयाइ।
न या मणुन्नेसुमण पि कुज्जा॥ उत्तराध्ययन ३२।२१।

२ जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४८९।

३ बोधिचर्यावतार भमिका पृ २ ।

४ जैन साइकोलाजी मेहता मोहनलाल पृ ११४–११७।

के समकक्ष अभिधर्म खड़ा हो जाता है। यहाँ मन का सम्बन्ध दृष्टि से भी सम्बद्ध है। सत् असत् कर्मों की उत्पत्ति का कारण यही दृष्टि अथवा भाव है। इसी दृष्टि अथवा भाव से समस्त मानसिक क्रियाय उत्पन्न होती हैं जिनका अध्ययन आज की परिभाषा में हम मनोविज्ञान के अन्तगत करत ह। मन इन्द्रियों की भाँति पौदगलिक है। मन के द्वारा आत्मा बाह्य पदार्थों के विषय म विचारता है। यह मन दो प्रकार का होता है—एक द्र य मन दूसरा भाव मन। द्रव्य मन शरीर के अन्दर खिले हुए आठ पत्तों वाले कमल के आकार का होता है। यह द्रव्य मन गुण-दोष के विचार की ओर उन्मुख आत्मा की सहायता करता ह। आत्मा म विचारन की शक्ति एव प्रवृत्ति को भाव मन कहते ह। द्रव्य मन पुद्गल के परमाणओ से निर्मित होन से पौद्गलिक है तथा भाव मन पुद्गल की अपेक्षा से होने से पौद्गलिक है। इसको सर्वार्थग्राही इन्द्रिय अनिन्द्रिय अन्त करण तथा सूक्ष्म इन्द्रिय कहत ह।

इस प्रकार उपयक्त तथ्यो को देखने से पता चलता है कि धम्मपद तथा उत्तरा ध्ययनसूत्र म वर्णित मन के विषय म दोनों का दृष्टिकोण लगभग समान है। इसके अतिरिक्त बौद्ध-दशन उनका काफी गहन विश्लेषण भी प्रस्तुत करता ह। बौद्ध दशन का मनोवज्ञानिक विधान और उसके प्रकाश म उसकी आचार-तत्त्व की व्याख्या निश्चय ही अ यन्त अनूठी ह जिसके समग्र विवेचन म दोनो का सार निहित ह।

### अप्रमाद

सामा यतया समय का अनुपयोग या दुरुपयोग न करना अप्रमाद है। धम्मपद तथा उत्तराध्ययनसूत्र मे अप्रमाद का विशद विवेचन प्राप्त होता है। धम्मपद के अप्प मादवग्ग म अप्रमाद को अमृतपद ( निर्वाण ) कहा गया ह। कहत ह कि इस वग की पहली गाथा को सुनकर सम्राट अशोक बौद्ध हुआ था। इस वग म बारह गाथाय हैं जिनम अप्रमाद को निर्वाण का साधक तथा प्रमाद को मृत्युपद कहा गया है।[1] आर्यों के कतव्य क्षत्र म तत्पर उत्साह या उद्योग म प्रवीण बुद्धिमान् दूरदर्शी तथा दृढ प्रयत्नवाले धैयवान व्यक्ति सर्वोत्तम क याणस्वरूप निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

---

१ जनधम-दशन पृ २५५ तथा भगवती सूत्र १३।७।४९४।

२ धम्मपद भिक्षरक्षित की भमिका पृ ४।

३ अप्पमादो अमतपद पमादो मच्चुनोपद।
अप्पमत्तान मीयान्त य पमत्ता यथामता ॥ धम्मपद २१।

४ वही २२ २३ तुलनीय उत्तराध्ययन ३२।२।
नाणस्स सव्वस्सपगासणाए अ नाण-मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स यसखएण एगन्तसोक्ख समवेइमोक्ख ॥

आत्मोन्नति करनेवाला ध्यानशील पवित्र कर्मवाला मनुष्य जो विचारपूर्वक कार्य करता है सयतेन्द्रिय धर्मजीवी तथा उत्साही है उसका यश बढ़ता है। मेधावी मनुष्य उत्थान उत्साह सयम और दमन के द्वारा अर्हत-पद अर्थात निर्वाण को प्राप्त करता है जब कि दुर्बुद्धि एव अविवेकी मनुष्य आलस्य में लगे रहते हैं। प्रमाद से रहित कामभोगों से अलिप्त ध्यानशील अप्रमत्त व्यक्ति अतुल सुख को प्राप्त करता है। इसलिए प्रमत्तो म अप्रमत्त होकर तथा सोये हुओ म जागृत होकर सद्बुद्धिवाला व्यक्ति उसी प्रकार आग बढ जाता ह जसे कमजोर घोड को छोडकर द्रुतगामी घोडा। जब बुद्धिमान् उत्साह या उद्योग के द्वारा आलस्य को जीत लेता है तब वह अर्हत-पद प्राप्त कर शोक सन्तप्त प्रजा को वैसे ही देखता ह जैसे पवत शिखर पर चढा हुआ कोई बुद्धिमान आदमी नीच तलहटी में खडे हुए मूर्खों को। आलस्यरहित होने से ही इन्द्र देवताओ में श्रेष्ठता को प्राप्त हुए इसलिए सभी लोग उत्साह की प्रशसा तथा आलस्य की निन्दा करते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्साह म तत्पर तथा आलस्य म भय देखन वाला व्यक्ति सूक्ष्म और स्थल सभी प्रकार की बराइयों को दूर कर निर्वाण को प्राप्त करता है।

जैनधम में प्रमाद को कमबन्ध का पाँचवाँ कारण माना गया है। आगमो म कहा गया है कि प्रमादी व्यक्ति को ही भय होता है अप्रमादी व्यक्ति को भय नही होता। छठे गुणस्थान तक प्रमाद होता है अर्थात् श्रावक और साधु बन जाने पर भी प्रमाद पीछा नही छोडता। इसलिए छठे गुणस्थान का नाम प्रमत्त सयम है। सातवें गुण ठाणे का नाम अप्रमत्त सयम है। ऐसी अप्रमत्त स्थिति बहुत थोडे समय ही

---

१ उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्स च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्सयसोभिवड्ढति ॥ धम्मपद २४।

२ वही २५ २६।

३ मापमादमनुयुञ्जेथ माकामरतिसन्थव।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुल सुख ॥ वही २७।

४ वही २९ तुलनीय उत्तराध्ययन ४।६।

५ पमाद अप्पमादेन यदानुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह असोको सोकिनिपज।
पब्बतट्ठो व भमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥ धम्मपद २८।

६ अप्पमादेनमघवादेवान सेट्ठत गतो।
अप्पमाद पससन्ति पमादो गरहितो सदा ॥ वही ३ ।

७ वही ३१ ३२।

रहती है। फिर व्यक्ति प्रमादवाले नीचे के गुणस्थानो में आ जाता है। प्रमाद पाँच प्रकार का बतलाया गया है। कही ८ व १५ का भी। प्रमाद के पाँच प्रकार है — मद्य विषय कषाय निद्रा और विकथा।

१ मद्य

आसक्ति भी आ मचतना को कुण्ठित करती ह इसलिए प्रमाद कही जाती है।

२ विषय

पाँचो इ द्रयो के विषयो का सेवन।

३ कषाय

क्रोध मान माया और लोभ य चार प्रमख मनोदशाए जो अपनी तीव्रता और म दता के आधार पर १६ प्रकार की हाती हैं कषाय कही जाती है। इन कषायो के जनक हास्यादि प्रकार के मनोभाव उपकषाय है। कषाय और उपकषाय के भेद मिलकर २५ होते ह।

४ निद्रा

अधिक निद्रा लेना निद्रा समय का अनुपयोग ह।

५ विकथा

जीवन के साध्य और उसके साधना माग पर विचार न करत हुए अनावश्यक चर्चा( करना। विकथाए चार प्रकार की —(१) रा य-सम्बन्धी (२) भोजन सम्ब धी (३) स्त्रियो के रूप सौन्दय सम्ब धी और (४) देश-सम्ब धी। इस तरह प्रमाद के अ तगत विषय और कषाय को स मलित कर लेन से कमब ध का वह मख्य कारण बन जाता ह। इसलिए प्रमाद से बच रहन और अप्रमत्त साधना करने का विधान किया गया है। अप्रमत्त अर्थात जागरूकता आ मजागरण और प्रमाद अर्थात् आ म विस्मृति बेभान और आलस्य की अवस्था। आ मो नति के लिए सबसे पहले जागरूकता की आवश्यकता होती ह। महावीर का जीवन अप्रमत्त था। वे सतत आत्म-जागरण मे लीन रहते थे।

उत्तराध्ययनसूत्र म समय मात्र भी प्रमाद न करन का जा महान् सन्देश भगवान् महावीर ने दिया ह वह साधको के लिए पुन पुन स्मरणीय है। इस ग्रन्थ के दसव

---

१ उत्तराध्ययन नियक्ति १८ ।

२ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ३६१।

वही।

अध्ययन की ३६ गाथाओं में अन्तिम पंक्ति बार-बार यही दोहराई गई है कि समय गोयममापमायए। गौतम स्वामी जैसे महान् व प्रधान गणधर को सम्बोधित करते हुए समय मात्र भी प्रमाद न करने का जो सन्देश दिया गया है वह वास्तव में समस्त प्राणियों के लिए है। यहाँ गौतम का नाम तो उपलक्षण मात्र है। लेकिन अन्तिम गाथा में यह जरूर कह दिया गया है कि अथ और पद से सुशोभित एव सुकथित बुद्ध (पूर्णश) की अर्थात भगवान महावीर की वाणी को सुनकर राग-द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि गति को प्राप्त हुए। इससे पहले कि ३६ गाथाओं में जो प्रमाद न करने का महान् प्रबोध दिया है उसका कुछ अश नीचे दिया जा रहा है।

जिस प्रकार वृक्ष में लगा हुआ पत्ता कुछ समय के बाद अपनी हरियाली को त्याग करके सफद और पीला होता हुआ एक दिन वृक्ष से सदा के लिए अलग हो जाता ह उसी प्रकार यह जीव भी न्यनाधिक आयुमर्यादा को पूरी करके इस वतमान शरीर का सदा के लिए त्याग करने म विवश हो जाता है। तात्पय यह है कि मानव-जीवन बहुत चचल एव अस्थायी है। पता नही कि यह किस वक्त जवाब दे दे। अत विचार शील पुरुषो को अपन साधुजनोचित धार्मिक कृत्यों म कभी प्रमाद नही करना चाहिए। जो प्रमादी जीव हैं वे समय का दुरुपयोग करन से अन्त म बहुत पश्चात्ताप करते हैं परन्तु समय के अतिक्रमण के बाद पश्चात्ताप निरथक है।

कुशा के अग्र भाग पर टिका हुआ ओस का बि्दु उज्ज्वल मोती की-सी शोभा का धारण किये हुए होता है उसी प्रकार इस शरीर पर जब यौवन का चक्र आता है तब इसका सौ्दय भी अपूव ही दिखायी देता ह परन्तु जैसे ओस के बिन्दु की स्थिति स्व पकाल की होती ह उसी प्रकार यह जीवन भी सवथा अचिरस्थायी है। जिस प्रकार ओस के बि्दु का सौन्दर्य उसके पतन के साथ ही विनष्ट हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य जीवन के साथ ही इस सौन्दय का भी अन्त हो जाता ह अर्थात् कुशाग्रल न जल बिन्दु के समान क्षणमात्र स्थायी यह मनुष्य जीवन है इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को धर्मानुष्ठान म क्षणमात्र भी प्रमाद का सेवन नही करना चाहिए।

जीवो की आयु दो प्रकार की है एक निरुपक्रम दूसरी सोपक्रम। जो किसी बाहर के निमित्त से न टूटे किन्तु अपनी नियत मर्यादा को पण करके समाप्त हो वह निरुपक्रम आयु ह तथा जो किसी बाह्य निमित्त के मिलने से अपनी नियत मर्यादा को पण किय बिना बीच म ही टट जावे उसे व्यवहारनय की अपेक्षा से सोपक्रम आयु कहते हैं। ससार म निरुपक्रम आयुवाले जीव तो स्व्प हैं विशेष सख्या तो सोपक्रमी

१ उत्तराध्ययन १ ।१।

२ वही १ ।२।

जीवों की ही है। अत इस सोपक्रम आयुवाले जीवो को लक्ष्य में रखकर भगवान् कहते हैं कि ह गौतम ! आयु बहुत कम है और उसम भी अनेक प्रकार के विघ्न हैं अर्थात आयु को बीच में ही तोड देनेवाले अनेकविध आतक शस्त्र जल अग्नि विष भय और शोक आदि अनक विघ्न विद्यमान हैं। पता नही कि किस समय इन उपद्रवों के द्वारा इस जीवन का अन्त हो जावे। इसलिए पवज मो की अर्जित की हुई कमरज को त इस जीवन म अपने आ मा से पथक कर दे और इस काम में समयमात्र भी प्रमाद न कर। यही इसके दूर करने का उपाय है। इस सारे कथन का अभिप्राय यह है कि मनुष्य ज म का प्राप्त होना अ यन्त कठिन ह। यदि यह मिल गया तो इसको सफल करन के लिए अहर्निश धमकृ यो के आचरण म त पर रहना चाहिए और क्षणभर भी प्रमाद म नही खोना चाहिए। प्रमाद की बहुलता से यह जीव अपन शुभाशभ कर्मों के द्वारा पथिवी आदि कायस्थिति म अथवा ज म मरणरूप ससारचक्र म परिभ्रमण करता ह। प्रमाद कर्मब ध का कारण ह और कमब ध के द्वारा ही यह जीव अनक प्रकार के ऊच-नीच कर्मों का ब ध करता है तथा मनुष्य-गति की प्राप्ति म प्रतिबन्ध करनेवाले कर्मों का उपाजन करता ह। तात्पय यह ह कि शास्त्रकारों ने ससार परिभ्रमण का हतु प्रमाद को कहा है अत प्रमाद का सवथा परित्याग करना चाहिए। शरद ऋतु का जल जिस प्रकार अत्यन्त शीतल निमल और मनोहर होता ह परन्तु च द्र विकासी कमल कीचड से उत्पन्न होकर और जल के द्वारा वृद्धि पाकर उससे पथक रहता है अर्थात् उसम लिप्त नही होता उसी प्रका तुम्हारा स्नेह भी अ यन्त निमल होने से धमराग ह पर तु उस प्रशस्त राग का भी तरे को परित्याग कर देना चाहिए क्योकि प्रशस्त राग भी पु यबन्ध का कारण होन से मुमक्षु पुरुष को त्याग करने योग्य ह इसलिए सवप्रकार के स्नेह से रहित होन के वास्त तर को सदैव प्रमाद रहित होना चाहिए। मनुष्य-ज म आयकुल परिपूर्ण इन्द्रियाँ उत्तम धम-श्रवण और श्रद्धा प्राप्त होना दुलभ है। इसलिए त्यागे हुए मित्र ब ध और धनसमूह को पुन प्राप्त करने के प्रयत्न का निषध किया गया है। अर्थात जब इनको हेय समझकर एक बार इनका परित्याग कर दिया तो फिर दूसरी बार उनको प्राप्त करने की जघन्य लालसा करना किसी प्रकार से भी उचित नही ह। इस प्रकार की जघन्य लालसा आत्मा को सवथा अध पतन की ओर ले जानेवाली ह। अत इस त्यागवृत्ति को दृढ रखने के लिए ममक्षजनो को सदा ही अप्रमत्त रहना चाहि ।

१ उत्तराध्ययन १ ।३।

२ वही १ ।१५।

३ वही १ ।२८ तुलनीय धम्मपद २८ ।

४ उत्तराध्ययन १ ।४ ६ १७ १८ १९।

इसी प्रकार उत्तराध्ययनसूत्र के चतुर्थ अध्ययन म प्रमाद के त्याग और अप्रमाद के सेवन का सुन्दर उपदेश है। प्रमाद का त्याग किस विचार को लेकर करना चाहिए इस विषय का वणन इस गाथा में प्रस्तुत है—ससार की टटी हुई प्राय हरएक वस्तु किसी न किसी प्रकार से जोडी जा सकती है किन्तु टटा हुआ जीवन किसी प्रकार के यत्न से भी साधा नही जा सकता। यहाँ तक कि इन्द्र महेन्द्र आदि भी टटी हुई आयु का सन्धान नही कर सकते। इसलिए धम के अनुष्ठान म कभी प्रमाद नही करना चाहिए। जो जीव प्रमत्त हैं प्रमादी है हिंसक है सावद्य कर्मों का अनुष्ठान करनेवाले हैं और इन्द्रियों के वशीभूत हैं वे मृत्यु के समय किसकी शरण म जायगे किसका आश्रय ग्रहण करग इस बात का विवेकीजनों को अवश्य ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार धम के आचरण म समय की प्रतीक्षा कभी नही करनी चाहिए अपितु प्रमादरहित होकर शीघ्र से-शीघ्र उसमे प्रवृत्त हो जाना चाहिए। प्रमादी जन अपने किए हुए कर्मों के फल को भोगने के समय धन से अपनी रक्षा नही कर सकते। अर्थात् अपन कमजन्य दु ख से धन के द्वारा उन्ह छुटकारा नही मिल सकता। तब परलोक म तो उससे किसी प्रकार की सहायता की आशा ही करना व्यथ ह। इसलिए लोक और परलोक दोनों म ही कर्मजन्य दु ख की निवत्ति म धन से किसी प्रकार की भी सहायता नही मिल सकती तथा प्रमादी पुरुष अपन घोर अज्ञान के कारण यायोचित माग को भलकर कुमाग का अनुगामी होता हुआ अधिकाश दु ख ही दु ख उठाता है। इस प्रकार स्वय अप्रमत्त रहकर जीवन व्यतीत करने का आदेश उत्तराध्ययन म किया गया है। प्रमाद म निद्रा तथा अप्रमाद म जागरण है। दूसर शब्दो म निद्रा मृत्यु और जागरण जीवन ह इसलिए आशुप्रज्ञावाला ज्ञानी साधक सोते हुए लोगो म भी प्रतिक्षण जागता रह। प्रमाद का एक क्षण के लिए भी विश्वास न करे। समय भयकर है शरीर दुबल है अत भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमादी होकर विचरण करना चाहिए। यद्यपि भारण्ड नामवाला पक्षी आजकल प्रसिद्ध नही ह और न ही वह आजकल कही पर देखने म आता है। मा यतानुसार इस पक्षी का और सब आकार तो अन्य पक्षियो की भाँति ही होता है परन्तु उसकी दो गदन होती है। वह सदा एक ही मुख से खाता है और यदि कभी प्रमादवश वह दोनो मुखो से खाने लग जाता है तो मर जाता है। अत वह इसी भय से कभी प्रमा नहीं करता किन्तु सदा अप्रमत्त रहता है। इसी प्रकार प्रमाद के वशीभत हुआ साधु भी अपन सयम से पतित हो जाता है। अत सयमशील पुरुष को

१ उत्तराध्ययन ४।१।

२ वही ४।५।

३ वही ४।६।

भी प्रमाद की सवप्रकार से उपेक्षा करते हुए अप्रमत्त रहकर ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। इसीम उसका कल्याण ह।

प्रज्ञाशील साधक को अपनी साधना म किंचित मात्र भी प्रमाद नही करना चाहिए। अप्रमत्त होकर विचरनवाला मुनि शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है। सम्यग् दृष्टि आत्मा कभी भी प्रमाद न करे। चतुर वही ह जो प्रमाद का कभी भी सेवन नही करता। धीर साधक महूतमात्र भी प्रमाद न करे। जो साधक एक बार अपन कर्तव्य पथ पर उठ खडा हुआ ह उसे फिर प्रमाद का सेवन नही करना चाहिए। अनन्त जीव प्रवाह म मानव जीवन को बीच का एक सुअवसर जानकर बद्धिमान साधक प्रमाद नही करता। प्रमाद को कम आस्रव और अप्रमाद को अकम सवर कहा गया ह। ज्ञानी कभी भी प्रमाद नही करत। इसम मेरा ही कल्याण ह ऐसा विचार कर प्रमाद का सेवन न कर। इस प्रकार प्रमाद का मल कारण राग और द्वष है। अत आत्मरक्षा म सावधान रहनवाला साध अप्रमत्त रहकर अपन सयम माग म विचरण करे। इसी प्रकार जन विचारणा के समान बौद्ध विचार ा म भी प्रमाद आस्रव का कार । है। धम्मपद म प्रमाद को आस्रव का कारण कहा गया ह। बद्ध कहते है जो कर्तव्य को छोडता ह और अकत य को करता ह एसे मलयक्त प्रमादियो के आस्रव बढत है।

उत्तरा ययनसूत्र के बत्तासव अध्ययन म प्रमाद के याग का उपदेश है। द्रव्य और भाव से प्रमाद दो प्रकार का ह। मदिरा आदि पदार्थों का सेवन द्रव्य प्रमाद है और निद्रा विकथा और कषाय विषयादि भाव प्रमाद ह। इस अध्ययन म द्रव्य प्रमाद का याग करन पर भाव से प्रमाद के याग का वर्णन किया गया ह। जसे श्री ऋषभ देव और वधमान स्वामी ने प्रमाद का याग किया उसी प्रकार सब प्राणियो को प्रमाद का याग करना चाहिए। यद्यपि अप्रमत्त गुणस्थान की स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्तमात्र ह तथापि अन्त करण के सकल्पो से अप्रमत्तभाव की अनेक बार प्राप्ति हो सकती है। प्रमा के कारण यह प्राणी अन त ससारचक्र म निर तर परिभ्रमण करता रहता है इसलिए प्रमाद सवथा त्याज्य है।

इस प्रकार उपयक्त तथ्यो को दखन से पता चलता ह कि उत्तराध्ययनसूत्र में प्रमाद को कम आस्रव और अप्रमाद को अकम सवर कहा गया है जब कि ध मपद में प्रमाद को मृत्यु य तथा अप्रमाद का निर्वा। कहा गया ह। इसलिए ज्ञानी कभी भी प्रमाद नही करत। इसम मरा ही कल्याण है एसा विचार कर प्रमाद का सेवन नही करना चाहिए। प्रमाद के होन से मनुष्य मख और अप्रमाद के होन से पण्डित कहा

१ उत्तराध्ययन ४।१ ।

२ धम्मपद २९३।

३ द्रष्टव्य उत्तराध्ययनसूत्र ३२वाँ अध्ययन।

आता है। धम्मपद के अप्पमादवर्ग में ही केवल अप्रमाद का वर्णन मिलता है जब कि उत्तराध्ययनसूत्र के चौथे दसवें तथा बत्तीसवें अध्ययन में प्रमाद तथा अप्रमाद का वर्णन मिलता है। इसलिए प्रमाद अर्थात आत्म विस्मृति बेभान और आलस्य की अवस्था को छोडकर अप्रमत्त अर्थात जागरूकता तथा आत्मजागरण की अवस्था से साधना करने का विधान किया गया है।

कषाय

आत्मा को मलिन करनेवाली समस्त भावना वासना कुवृत्तियाँ कषाय में गर्भित है। क्रोध मान माया और लोभरूपी भावनाय सबसे अधिक अनिष्ट व अशुभ हैं। इनके तीव्र उदय होने पर मनुष्य उन्मत्त की भाँति भ्रा न होकर घोर पाप करने पर उतारू हो जाता ह। अत जैन-परम्परा म इन चार भावनाओ को कषाय को सज्ञा दी गई है। यदि किसी मनुष्य को इन चारो कषायो म से किसी एक भो क्राध आदि कषाय का तीव्रतम ( अनन्तानुबन्धी कर्म प्रकृति ) उदय हो तो उसको सम्यक दशन की प्राप्ति नही हा सकती और यदि वह पहले से सम्यक ही हो तो उसका सम्यक दशन भी नष्ट होन लगता ह। इन कषायो के तीव्रतम उदय होत हुए प्राणी आत्मतत्त्व का यथाथ समझकर उस पर श्रद्धा नही कर सकता। अत आत्म अभिलाषी के लिए आवश्यक है कि इन कषायों पर नियन्त्रण रख।

जन-ग्रन्थो म कषाय ( क्रोध मान माया और लोभ ) का बहुत सु दर चित्रण ह। धम्मपद म भी कषाय श द का प्रयोग दो अर्थों में किया गया ह। पहला तो उसका प्रयोग जन परम्परा के समान दूषित चित्तवृत्ति के अथ म ह तथा दूसरा सन्यस्त जीवन के प्रतीक गरुए वस्त्रो के अथ म ह। भगवान बुद्ध कहत हैं जो यक्ति कषायों ( राग द्वष आदि ) को त्याग बिना काषाय वस्त्रो ( गेरुए वस्त्रो ) को पहनता ह अर्थात स यास धारण करता ह वह सयम के यथाथ स्वरूप से पतित व्यक्ति काषाय-वस्त्रों ( सन्यास-माग ) का अधिकारी नही ह। लेकिन जिसन सभी दुराचरणों को वमन किये हुए अपवित्र पदाथ की भाँति त्याग दिया ह सदगणो म अच्छी तरह सलग्न है तथा आत्मसयम और सत्य से युक्त है वह निश्चित रूप से काषाय वस्त्रो ( सन्यास-माग ) का अधिकारी ह। धम्मपद म कषाय श द के अ तगत कौन-कौन दूषित वृत्तियाँ आती हैं

१ जैन-दशन मनन और मीमासा प ५५५।

२ अनिक्कसावोकासाव योवत्थ परिदहिस्सति।
अपेतो दमसच्चेन न सो कासाव मरहति॥
यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतोदमसच्चेन सवे कासाव मरहति॥ धम्मपद ९ १ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५ ९।

इसका स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। क्रोध मान माया और लोभ को बौद्ध विचारणा म दूषित चित्तवृत्ति के रूप म उल्लेख किया गया है तथा नतिक आदश की दृष्टि से उनको त्यागन का उल्लेख किया गया ह। धम्मपद म कहा गया है कि जो मनष्य अपने कतव्य को नही करते तथा अकतव्य को करत ह एसे बढ हुए मलवालो और प्रमत्तो के आस्रव ( चित्त के मल ) बढत है लेकिन सदव कत य करनेवाले अकर्तव्य का सेवन नही करत ऐसे स्मृतिमान और बद्धिमानो के चित्तमल अस्त ( नाश ) को प्राप्त हो जात है। बद्ध कहत हैं उसने मुझ गाली दी उसन मुझ पीटा उसने मुझ पराजित किया उसने मरी लट-पाट की इस प्रकार की प्रतिशोध की भावनाओ को जो आश्रय देत है उनकी शत्रता कभी शा त नही होती। लेकिन जो एसा मन म नही बनाय रखत ह उनका वर शा त हो जाता ह। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि इस नश्वर ससार म वैर से वर कभी शान्त नही होत अपितु प्रेम से ही शान्त होते है। इसलिए क्रोध को छोड दो अभिमान का त्याग कर दो समस्त सयोजनो को तोड दो। जो पुरुष नाम तथा रूप म आसक्त नही होता अर्थात लोभ नही करता जो अकिंचन ह उस पर क्लेशो का आक्रमण नही होता। जो उठत हुए क्रोध का उसी तरह निग्रहित कर लेता है जैसे सारथि घोड को वही स च्चा सारथि ह अर्थात नैतिक जीवन का सच्चा साधक वही ह शेष सब तो मात्र लगाम पकडनवाले ह। इस प्रकार बौद्ध-दशन इन अशुभ चित्तवत्तियो का दूर कर साधक को इनसे ऊपर उठान का स देश देता ह।

कषाय जैनधम का पारिभाषिक श द है। जो कष और आय इन दो श दो के मेल से बना ह। कष का अथ ह ससार तथा आय का अर्थ आगमन होता है

१ धम्मपद २९२ २९३।

२ वही ३।

३ वही ४।

४ वही ५।

५ कोध जहे विप्पजहे य मान

सन्नोजन स बमतिक्कम य।

त नामरूपस्मि असज्जमान

अकिञ्चन नानुपतन्ति दक्खा॥

यो वे उप्पतित कोध रथ भ त व वारये।

तमह सारथि ब्रूमि रस्मि गाहो इतरो जनो॥

धम्मपद २२१ २२२।

अथवा जिससे जीव पुन -पुन जन्म-मरण के चक्र में पडता है वह कषाय है। सम्पूर्ण संसार वासना से उत्पन्न कषाय की अग्नि म जल रहा है। इसलिए शान्ति मार्ग के कर्णधार साधक के लिए कषाय का त्याग आवश्यक है। जैन-ग्रन्थों में साधक को कषायो से सर्वथा दूर रहने के लिए कहा गया है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि साधु को अपना मन क्रोध मान माया और लोभ में कभी नही लगाना चाहिए क्योकि शब्दादि गुणस्पर्शों के यही कारण हैं। अगर इन चारो पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो शब्दादि मोहगुणो का आत्मा पर कोई प्रभाव नही पडता। ये शब्दादि गुण तो उन आत्माओ के लिए कष्टप्रद या आवश्यक होत हैं जिनके लिए उक्त चारो कषाय उदय में आये हुए हों। अत इन चारो कषायो पर विजय प्राप्त कर लेन से मोह के गुणों पर सहज में ही विजय-लाभ हो सकता ह और इन पर विजय प्राप्त करने का सहज उपाय यह है कि इनके प्रति किसी प्रकार का राग-द्वेषमूलक क्षोभ नही करना चाहिए। राग और द्वेष य दो ही मुख्य कषाय हैं। क्रोधादि चारो कषाय इन्ही दो के अन्तगत हैं एव माया और लोभ का राग में अन्तर्भाव है अत इनको जीत लेने से मोह के सभी गुण और क्रोधादि सभी कषाय सुतरा ही पराजित हो जाते हैं। इसलिए ग्रन्थ म कहा गया है कि इन कषायो के परित्याग से इस जीवात्मा को वीतरागता की प्राप्ति होती है अर्थात कषायमुक्त जीव राग द्वेष से रहित हो जाता है। राग-द्वेष से मुक्त होन के कारण उसको सख और दु ख म भद भाव की प्रतीति नही होती अर्थात सख की प्राप्ति होने पर उनको हष नही होता और द ख म वह किसी प्रकार के उद्वग का अनुभव नही करता किन्तु सुख और दु ख दोनों का वह समान बुद्धि से आदर करता है। तात्पय यह ह कि उसके आत्मा म समभाव की परिणति होने लगती है। समभाव से भावित हो जाना ही कषाय-त्याग का फल है।

कषाय कमबन्ध का चौथा कारण ह। प्राणीमात्र के प्रति समभाव का अभाव या राग द्वेष को कषाय कहा जाता है। इसी समभाव के अभाव एव राग-द्वेष से उत्पन्न होने के कारण क्रोध मान माया और लोभ को भी कषाय कहा जाता है।

---

१ अभिधान राजेन्द्र कोश खण्ड ३ प ३९५ उद्धत जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४९९।

२ रक्खज्जकोह विणएज्ज माण माय न सेवे पयहेज्जलोह।

उत्तराध्ययन ४।१२।

३ कसायपच्चक्खाणण वीयरागभाव जणयइ।
वीयरागभावपडिवन्ने ति यण जीवे समसुहदुक्खे भवइ॥

वही २९।३७।

कषाय चार प्रकार के होते है—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्याना वरण एव सज्वलन। जिस कषाय के प्रभाव से जीव को अनन्त काल तक भव भ्रमण करना पडता है उसे अनन्तानुबन्धी कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उदय से देशविरतिरूप प्रत्याख्यान प्राप्त नही होता उसे अप्रत्याख्यानावरण कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उदय से सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान प्राप्त नही होता उसे प्रत्याख्यानावरण कषाय कहा जाता है। जिस कषाय के उत्पन्न होन पर साधक अल्प समय के लिए मात्र अभिभत होता है उसे सज्वलन कषाय कहत हैं। चार प्रकार के कषायों म हर एक के चार विभाग होने से कुल १६ विभाग होते है। इसके अतिरिक्त उपकषाय या कषायप्रेरक भी माने गये हैं जिनकी सख्या ७ या ९ ह—हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा (घणा) और वद (स्त्री पुरुष और नपसकलिङग)। वेद को स्त्री विषयक मानसिक विकार पुरुष विषयक मानसिक विकार तथा उभय विषयक मानसिक विकार के भेद से तीन भद कर देन पर नो-कषाय के ९ भद हो जाते हैं।

उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार उक्त १६ कषाय और ९ नो-कषाय का सम्बन्ध सीधा व्यक्ति के चरित्र से ह। नतिक जीवन के लिए इन वास ाओ एव आवगो से ऊपर उठना आवश्यक ह क्योंकि जब तक यक्ति इनसे ऊपर नही उठगा तब तक वह नतिक प्रगति नही कर सकता। जन ग्र थो म इन चार प्रमुख कषायो को चडाल चौकडी कहा गया है। इसम अन तानुब धी आदि जो विभाग ह उनको सदव ध्यान म रखना चाहिए और हमशा यह प्रयत्न करना चाहिए कि कषायो म तीव्रता न आय क्योकि अन तानुब धी क्रोध मान माया और लोभ के होन पर साधक अनन्त काल

१ कमग्र थ १।३५ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ५ १। जनधम दर्शन प ४६५।

२ सोलसविहभएण कम्म तु कसायज।
सत्तविह नवविह वा कम्म च नोकसायज॥

उत्तराध्ययन ३३।११।

३ वही ३३।११ टीका आ माराम ने प १५३४ पर इसके विषय म निम्न गाथा उदधृत की है—
कषायसहवर्तित्वात् कषायप्रेरणादपि।
हास्या दिनवकस्योक्ता नोकषायकषायत॥

४ जन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५ ६।

तक संसार-परिभ्रमण करता है और सम्यग्दृष्टि नहीं बन पाता है। इसलिए ग्रन्थ में कहा गया है कि क्रोध मान माया और लोभ का पूर्णतया निग्रह करना चाहिए। क्योंकि क्रोधादि कषायों के वशीभूत और इन्द्रियों के पराधीन हुआ यह आत्मा धर्म से पराङ्मुख रहता है उसको धर्म म स्थित करने के लिए प्रथम क्रोधादि चारों कषायों को जीतने की और पाँचों इन्द्रियों का निग्रह करने की आवश्यकता है। जिस समय कषायों का त्याग और इन्द्रियों का निग्रह हो जाता है उस समय यह आत्मा स्वयमेव परभाव को त्यागकर स्वभाव में रमने लगता है।

अत आवश्यक है कि सामाजिक जीवन की शुद्धि के लिए प्रथम प्रकार की वृत्तियों का त्यागकर जीवन म दूसरे प्रकार की प्रतिपक्षी वृत्तियो को स्थान दिया जाये। इस प्रकार वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही जीवन की दृष्टियों से कषायजय आवश्यक है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है क्रोध से जीव नीच गति में जाता है मान ( गव अहकार ) से अधमगति पाता है माया ( छल-कपट ) से सद्गति का विनाश होता है और लोभ इस लोक तथा परलोक में भय को देनेवाला है। इसलिए कामभोगो का सेवन और सकल्प दोनो ही महान अनिष्ट के देनेवाले हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि कषायो पर विजय कैसे प्राप्त की जाय ? पहली बात यह ह कि तीव्र कषायोदय म तो विवेक-बुद्धि प्रसुप्त ही हो जाती है अत विवेक बुद्धि से कषायो का निग्रह सम्भव नही रह जाता दूसरे इच्छापूवक भी उनका निरोध सम्भव नही क्योंकि इच्छा तो स्वत उनसे ही शासित होने लगती है। इसलिए ग्रन्थ में कहा गया है कि इन कषायो पर विजय प्राप्त करन के लिए क्रोध मान माया और लोभ में उपयुक्तता होनी चाहिए। अर्थात् भाषण करते समय इन उपर्यक्त दोषो के सम्पक का पूरे विवेक से ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि इनके कारण ही असत्य बोला जाता है अर्थात क्रोधादि के वशीभत होकर सत्यप्रिय मनुष्य भी असत्य बोलने को तैयार हो जाता है अत कषायो पर विजय प्राप्त करने के लिए इनका ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

---

१ कोह माण निगिण्हित्ता माय लोभ च सव्वसो।

उत्तराध्ययन २२।४७।

२ अहे वयइ कोहेण माणण अहमागई।
माया गई पडिग्घाओलोभाओ दुहओभय॥

वही ९।५४।

३ कोहेमाणे य मायाए लोभेय उवउत्तया। वही २४।९ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ प ५ ६५ ७।

## क्रोध

मोहनीय कर्म के उदय से जो अप्रीतिरूप द्वेषमय परिणाम उत्पन्न होता है वह क्रोध है। यह एक मानसिक किन्तु उत्तेजक आवेग है। उत्तेजित होते ही व्यक्ति भावाविष्ट हो जाता है। उसकी विचार-क्षमता और तर्क-शक्ति लगभग शिथिल हो जाती है। इसलिए उत्तराध्ययन में कहा गया है कि अपने आप पर भी क्रोध न करे।[1] समभाव को विस्मृत होकर आक्रोश में भर जाना दूसरो पर रोष करना क्रोध है। इसलिए क्रोध नही करना चाहिए क्योंकि क्रोध विजय से जीव को क्षमागुण की प्राप्ति होती है और क्षमा से क्रोधजन्य कर्म का बन्ध नही होता तथा पूर्वसंचित कर्मों का विनाश हो जाता है।[2] जैन-दार्शनिकों ने आवेग की तीव्रता एवं मन्दता के आधार पर क्रोध को चार वर्गों में विभाजित किया है। प्रथम प्रकार के क्रोध की तुलना पर्वत की चट्टान में पडी दरार से की गयी है जो किसीके प्रति एक बार उत्पन्न होने पर जीवनपर्यन्त बनी रहती है और कभी समाप्त नही होती। दूसरे प्रकार की तुलना पृथ्वी में पडी दरार से की गयी है जिसे पाटना उतना कठिन नहीं होता। तीसरे प्रकार की तुलना थल में पडी एक रेखा से की गयी है जिसे मिटाना अत्यधिक आसान है। अन्तिम प्रकार की तुलना पानी मे खींची गयी रेखा के समान बतायी गयी है जिसे मिटाना और भी आसान है।[3]

## मान

जिस दोष से नमने की वृत्ति न हो जाति कुल तप आदि के अहङ्कार से दूसरे के प्रति तिरस्कार की वृत्ति हो वह मान है। अहङ्कार करना मान है। अहङ्कार कुल बल ऐश्वर्य बुद्धि जाति ज्ञान आदि किसी भी विशेषता का हो सकता है। मनुष्य मे स्वाभिमान की प्रवृत्ति जब दम्भ या प्रदर्शन का रूप ले लेती है तब मनुष्य अपने गुणो एवं योग्यताओ का बढ-चढ़े रूप में प्रदर्शन करने लगता है और इस प्रकार उसके अन्तःकरण में मानवृत्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। तब उसे अपने से बढ़कर या अपनी बराबरी का गुणी व्यक्ति कोई दिखाई ही नही देता। उत्तराध्ययनसूत्र में

---

१ अप्पाणं पि न कोवए।

उत्तराध्ययन १।४०।

२ कोहं विजएणं खन्ति जणयइ कोहवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

वही २९।६८।

३ मेहता मोहनलाल जैन साइकोलाजी पृ १२४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५०१।

गर्व अथवा अहङ्कार को त्यागने के लिए कहा गया है तथा बताया गया है कि मान को जीतने से जीव मृदु स्वभाववाला हो जाता है। इस मृदुता-गुण को प्राप्त करने वाला जीव मानजन्य कर्मों का बन्ध नहीं करता अर्थात् मान करने से जिन कर्मों का बन्ध होता है वह उसका दूर हो जाता है और इसके अतिरिक्त पूर्व में बाँधे हुए कर्मों का भी क्षय कर देता है। अहंभाव की तीव्रता और मन्दता के अनुसार मान के भी चार भेद है —

१ पत्थर के खम्भे के समान जो झुकता नही अर्थात जिसमे विनम्रता नाममात्र को भी नही है।

२ हड्डी के समान कठिनता से झुकनेवाला अर्थात जो विशेष परिस्थितियों मे बाह्य दबाव के कारण विनम्र हो जाता है।

३ लकडी के समान थोडे से प्रयत्न से झुक जानेवाला अर्थात् जिसके हृदय में विनम्रता तो होती है लेकिन जिसका प्रकटन विशेष स्थिति में ही होता है।

४ बेत के समान अत्यन्त सरलता से झुक जानेवाला अर्थात् जो आत्मगौरव को रखते हुए भी विनम्र बना रहता है।

## माया

विचार और प्रवृत्ति मे एकरूपता का अभाव माया है इसलिए इसका त्याग करना चाहिए। क्योकि माया की विजय से जीव को सरलता की प्राप्ति होती है और सरलता से युक्त हुआ जीव माया वेदनीय कर्म का बन्ध नही करता तथा पूर्वसंचित कर्मों का भी क्षय कर देता है अत मुमुक्षुजनो को मायाचार का त्याग और सरलता के अगीकार मे अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। जैन-दार्शनिकों ने माया के चार प्रकार

---

१ माणविजएण मद्दव जणयइ माणवेयणिज्ज कम्म न बन्धइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ। उत्तराध्ययन २९।६९।

२ माय च वज्जए सया। वही १।२४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५ २।

३ माया विजएण उज्जुभाव जणयइ माया
वेयणिज्ज कम्म न बन्धइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ॥
उत्तराध्ययन २९।७ ।

४ जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५ २।

बताये हैं। यथा—अतीव कुटिल जसे बाँस की जड भैंस के सीग के समान कुटिल गोमूत्र की धारा के समान कुटिल तथा बाँस के छिलके के समान कुटिल।

## लोभ

मोहनीय कम के उदय से चित्त म उत्पन्न होनेवाली तृष्णा या लालसा लोभ कहलाती है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार समग्र जागतिक दु खो का मूल कारण तृष्णा है। ग्रन्थ म अज्ञान और मोह के बीच म जिन अन्य दो कारणो का गिनाया गया है उनमें तृष्णा और लोभ प्रमुख हैं। परन्तु तष्णा और मोह रागात्मक मोह की ही विभिन्न अवस्थाय हैं। ग्रन्थ में तृष्णा का भयकर फल देनवाली लता कहा गया है तथा मोह का कारण तष्णा और तष्णा का कारण भी लोभ बतलात हुए मोह और तष्णा में बीजाङकुर का सम्बन्ध बतलाया गया ह जिस प्रकार बलाका पक्षी की उत्पत्ति अण्ड से और अण्ड की उत्पत्ति बलाका से होती है उसी प्रकार मोह की उत्पत्ति तृष्णा से और तृष्णा की उत्पत्ति मोह से होती ह। मोह और तष्णा में बीजाङकुर की तरह सम्बन्ध बतलात हुए भी आग लिखा ह जिसे मोह नही उसन दु ख का अ त कर दिया जिसे तृष्णा नही उसन मोह का अन्त कर दिया जिसे लोभ नही उसने तृष्णा को नष्ट कर दिया तथा जिसके पास कोई सम्पत्ति नही अर्थात् जो अकिंचन ह उसन लोभ का भी अन्त कर दिया। यहाँ पर तष्णा का कारण लोभ बतलाया गया है।

इस प्रकार हम देखत हैं कि उत्तराध्ययनसूत्र म क्रोध मान माया और लोभ आदि आवेगो को वयक्तिक आ यात्मिक विकास एव सामाजिक सम्बन्धो की शुद्धि की दष्टि से अनुचित माना गया ह। साराश यह कि मनोवृत्तियो के चारो रूप जिन्ह जैन विचारणा कषाय कहती है निकृष्ट माने गये ह और नैतिक एव आध्यात्मिक विकास के लिए इनका परित्याग करना आवश्यक बतलाया गया है। ग्रन्थ में कषाय शब्द का प्रयाग अशुभ मनोवृत्तियो के अथ म हुआ है। इस प्रकार साधक को अपने जीवन में उपयुक्त कषायो को स्थान नही देना चाहिए क्योकि इससे उसकी साधना या चारित्र धम का नाश हो जाता है। जब तक चित्त म सूक्ष्मतम क्रोध मान माया

---

१ कमग्रन्थ १।२ उदधत जैन साइकोलाजी प १२५।

२ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५ ३।

३ भवतण्हा लयाव त्ता भीमाभीमफलोदया।

उत्तराध्ययन २३।४८।

४ वही ३२।६।

५ वही ३२।८।

और लोभ रहते हैं साधक अपने लक्ष्य निर्वाण की प्राप्ति नहीं कर सकता। इसलिए साधक को सूक्ष्मतम कषायों को भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार यह देखा जाता है कि कषायों में जहाँ क्रोध मान आदि को एक या अधिक सद्गुणों का विनाशक कहा गया है लोभ सभी कषायों में निकृष्टतम है क्योंकि वह रागात्मक है और राग या आसक्ति ही समस्त असत वृत्तियों की जनक है। धम्मपद में भी क्रोध अभिमान माया और लोभ आदि आवेगों को वैयक्तिक आध्यात्मिक विकास एवं सामाजिक सम्बन्धों की शुद्धि की दृष्टि से अनुचित माना गया है। यद्यपि धम्मपद में कषायों का ऐसा चतुर्विध वर्गीकरण नहीं मिलता फिर भी कषायों के रूप म जिन अशुभ मनो वृत्तियो का चित्रण उत्तराध्ययन में है उन सभी का उल्लेख धम्मपद में भी मौजद है।

## तृष्णा

यह प्रसिद्ध बौद्ध मान्यता है कि दु ख की उत्पत्ति का कारण है तृष्णा अर्थात विषयों की प्यास। यह तृष्णा बारम्बार प्राणियो को उत्पन्न करती है (पौनर्भविका) विषयो के राग से युक्त ह तथा उन विषयों का अभिनन्दन करनेवाली है यहाँ और वहाँ सवत्र अपनी तृप्ति खोजती रहती है। सक्षप में दु खसमुदय का यही स्वरूप है। तृष्णा की उत्पत्ति और स्थिति के विषय में भगवान् ने भिक्षुओ को बोध कराया कि जो लोक में मनुष्य का प्रिय सात (अनुकल) है वही पर यह तृष्णा उत्पन्न होने पर उत्पन्न होती है स्थित होने पर स्थित होती है। चक्षु लोक में प्रिय सात है यही यह तृष्णा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार श्रोत्र घ्राण जिह्वा काय और मन इन्द्रियाँ रूप शब्द आदि उनके विषय तथा इन्द्रिय और उनके अपने विषयों के साथ जो संस्पर्श होते हैं उनकी अनुकलता या प्रतिकलता देखकर चित्त को दु ख या सुख होता है। यही इन्द्रिय-सस्पर्शजा वेदना कही जाती है। यहीं तृष्णा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार लोक में जो प्रिय है वही यह तृष्णा उत्पन्न होती है। यदि विषयों के पाने की प्यास हमारे हृदय में न हो तो हम इस ससार म न पडें और न दु ख भोगें। तृष्णा सबसे बड़ा बन्धन है जो हमें ससार तथा ससार के जीवों से बाँधे हुए है। विद्वान् पुरुष लोहे लकड़ी तथा रस्सी के बन्धन को दृढ़ नहीं मानते। वस्तुतः दृढ़ बन्धन है मणि कुण्डल पुत्र तथा स्त्री आदि में अनुरक्त होना है। तृष्णा ससार के मनुष्यों को उसी प्रकार

---

१ जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ५११।

२ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३ ३१।

३ नत दलह् बन्धनमाहुधीरा यदायसं दारुजं बब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा॥ धम्मपद ३४५ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २३६ २३७।

फँसाये रखती है जिस प्रकार मकडी अपने ही जाल बुनती है और अपने ही उसीमें बँधी रहती है। वे लोग तृष्णा से नाना प्रकार के विषयो मे राग उत्पन्न करते हैं और इन्ही राग के बन्धन म जो उनके ही द्वारा उत्पन्न किये हुए हैं अपने को बाँधकर दिन रात बन्धन का कष्ट उठाते हैं। इसलिए ज्ञानी पुरुष उस बन्धन को जो नीचे की तरफ ले जानेवाला है और खोलने म कठिन है मजबत कहते हैं। ऐसे बन्धन को काट देने के बाद मनुष्य चिन्ताओ से मुक्त हो इच्छाओ और भोगो को पीछे छोड ससार को त्याग देत ह। ससार के प्राणी तीन प्रकार की तृष्णाओं में फसे हुए हैं—

१ कामतृष्णा

जो तृष्णा नाना प्रकार के विषयो की कामना करती है।

२ भवतृष्णा

भव—ससार या जन्म। इस ससार की स्थिति बनाय रखनवाली यही तृष्णा है। इस ससार की स्थिति के कारण हमी हैं। हमारी तृष्णा ही इस ससार को उत्पन्न किए हुए ह। ससार के रहन पर ही हमारी सुखवासना चरिताथ होती है। अत इस ससार की तृष्णा भी तृष्णा का ही एक प्रकार है।

३ विभवतृष्णा

विभव का अथ है उच्छद ससार का नाश। ससार के नाश की इच्छा उसी प्रकार दु ख उत्पन्न करती है जिस प्रकार उसके शाश्वत होने की अभिलाषा।

यही तृष्णा जगत के समस्त विद्रोह तथा विरोध की जननी है। इसीके कारण राजा राजा से लडता है क्षत्रिय क्षत्रिय से ब्राह्मण ब्राह्मण से माता पुत्र से और लडका भी माता से आदि। समस्त पापकर्मों का निदान यही तृष्णा है। चोर इसीलिए चोरी करता है कामुक इसीके लिए परस्त्री-गमन करता है धनी इसीके लिए गरीबों को चसता है। यह ससार तृष्णामलक ह। तृष्णा ही दु ख का कारण है। तृष्णा का समुच्छेद करना प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है। भगवान बुद्ध कहते हैं कि तृष्णा के नष्ट हो जाने पर सभी बन्धन अपने-आप नष्ट हो जाते हैं। तृष्णा दुष्पूर्ण है। वे कहते हैं

---

१ ये रागरत्तानुपतन्ति सोत सय कत मक्कट कोवजाल।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा अनपेक्खिनो सब्ब दुक्ख पहाय ॥

धम्मपद ३४७।

२ वही ३४६ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २३६।

३ दीघनिकाय द्वितीय भाग पृ २३ –३३।

कि चाहे स्वर्ण-मुद्राओं की वर्षा होने लगे लेकिन उनसे भी तृष्णायुक्त मनुष्य की तृप्ति नहीं हो सकती। तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है तृष्णा से भय उत्पन्न होता है लेकिन तृष्णा से मुक्त व्यक्ति के पास न तो भय है न ही शोक। धम्मपद में कहा गया है कि प्रमत्त पुरुष की तृष्णा लता की भाँति बढ़ती है। जैसे बन्दर फल की आकांक्षा से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदता फिरता है इसी प्रकार मनुष्य तृष्णा के वशीभूत होकर जन्म के चक्कर में भ्रमता है। इस जगत् में जिस किसी पुरुष को यह विकराल और विषभरी तृष्णा अपने वश में कर लेती है उसके दुःख विरण घास की तरह बढ़ जाते हैं लेकिन जो पुरुष इसको वश में कर लेता है उसके दुःख कमल के पत्ते पर की पानी की बूंद की तरह गिर जाते हैं। भगवान् बुद्ध का सन्देश है कि तृष्णा को समूल उखाड़ डालो क्योंकि जो उसीरा घास की सुगन्धि लेना चाहता है उसे चाहिये कि वह विरण घास को अवश्य उखाड़ दे ताकि शैतान नरकुल घास को धीरे-धीरे बहा ले जानेवाली धारा की तरह नष्ट न कर डाले। जैसे कटा हुआ वृक्ष अपनी जड़ के सुरक्षित रहने के कारण बराबर सुदृढ़ बना रहता है इसी प्रकार जब तक तृष्णा के पाप के कारणों को न मिटा दिया जाय तब तक जन्म-मरण का यह दुःख बार-बार भोगना पड़ेगा। तृष्णा के मारे हुए मनुष्य जाल में फँसे हुए खरगोश की तरह इधर उधर दौड़ते हैं। इस कारण भिक्षु को स्वयं निर्विकारी बनने का प्रयत्न करते हुए तृष्णा को दूर भगाना चाहिए। भवसागर को पार करने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य सामने की पीछे की

---

१ नकहापणवस्सेन तित्तिकामेसु विज्जति।
अप्पस्सादा दुखाकामा इति विन्नाय पण्डितो॥

धम्मपद १८६।

तुलनीय उत्तराध्ययन ९।४८।
सुवण्ण-रुप्पस्स उ पव्वयाभवे सियाहु के
नरस्स लुद्धस्सनतेहिं किंचिइच्छा
उ आगाससमा अणन्तिया॥

२ धम्मपद २१६।

३ वही ३३४ तथा ३४४ तथा जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २३६।

४ धम्मपद ३३५ तथा ३३६।

५ वही ३३७।

६ वही ३३८।

७ वही ३४२ ३४३।

और बीच की तृष्णाओं को त्याग दे यदि तेरा मन विषय से सर्वथा मुक्त है तो तू जन्म और मरण के चक्र में प्रवेश नहीं करेगा।[1]

आसक्ति का ही दूसरा नाम लोभ है और लोभ समग्र सद्गुणों का विनाशक है। जैन विचारणा के अनुसार तृष्णा एक ऐसी खाई है जो कभी भी पाटी नहीं जा सकती।[2] दुष्पूरतृष्णा का कभी अन्त नहीं आता। उत्तराध्ययनसूत्र में इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि धन के संग्रह से भी तृष्णा की शान्ति होना दुर्घट है। लोभी पुरुष के आगे यदि सोने चाँदी के कैलाश पर्वत के समान असंख्य ढेर भी लगा दिये जावें तो भी उसकी तृप्ति नहीं होती वह इससे भी अधिक के लिए ललचाता है। यह तृष्णा आकाश की भाँति अनन्त है इसकी धन-धान्यादि से कभी पूर्ति नहीं हो सकती। अतएव नीतिकारों का कथन है कि यह तृष्णा हजारों लाखों और करोड़ों से तो क्या? साम्राज्य देवत्व और इन्द्रत्व-पद की प्राप्ति पर भी सन्तुष्ट नहीं होती। जैसे जैसे धन की वृद्धि होती है वैसे-वैसे तृष्णा भी बढ़ती जाती है। इसलिए धन से तृष्णा की पूर्ति होना दुर्घट है।[3] लेकिन जब तक तृष्णा शान्त नहीं होती तब तक दुःखों से मुक्ति भी नहीं होती। दूसरे शब्दों में जैन दार्शनिकों की दृष्टि से तृष्णा दुःख की पर्यायवाची ही बन गयी है। यह तृष्णा ही संग्रह वृत्ति का मूल है।[4]

परिग्रह या संग्रह-वृत्ति सामाजिक हिंसा है। जैन आचार्यों की दृष्टि में समग्र परिग्रह हिंसा से प्रत्युत्पन्न है क्योंकि बिना हिंसा के संग्रह असम्भव है। व्यक्ति संग्रह के द्वारा दूसरों के हितों का हनन करता है और इस रूप में संग्रह या परिग्रह हिंसा का ही एक रूप है। ग्रन्थ में कहा गया है कि संसार के पदार्थों में तृष्णा की पूर्ति करने की सामर्थ्य नहीं है। इसके विपरीत ये तो तृष्णा को शमन करने के स्थान में उसके वर्धक हैं। जिस प्रकार अग्नि की ज्वाला घृत डालने से शान्त होने के बजाय तीव्र होती है

१ धम्मपद ३४८।

२ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २३५।

३ कसिणं पि जो इमं लोयं पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।
तेणावि से न संतुस्से इइ दुप्पूरए इमे आया॥
उत्तराध्ययन ९।४८ तथा ८।१६।

४ जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई।
दो मासकयं कज्जं कोडीए वि न निट्ठियं॥ वही ८।१७।

५ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २३५।

उसी प्रकार संसार के पदार्थों से घटने के स्थान म तृष्णा बढ़ती है । यदि किसी लोभी पुरुष को धन-धान्य चाँदी-सोना और हाथी घोड़े आदि से परिपूर्ण सारा भूमण्डल भी दे दिया जावे तो भी उसकी तृष्णा शान्त होने के बजाय कुछ और अधिक प्राप्त करने के लिए दौड़ेगी । इसलिए बुद्धिमान् विचारशील पुरुष को इन धन धान्यादि पदार्थों के संग्रह का व्यामोह छोड़कर केवल तपोनुष्ठान की ओर ही प्रवृत्त होना चाहिए । आत्मा के साथ लिप्त हुआ तृष्णारूप मल तप के बिना दूर नहीं हो सकता । इसलिए सांसारिक पदार्थों के द्वारा कोशपूर्ति की कुत्सित अभिलाषा का त्याग करके तपोनुष्ठान में ही निरन्तर प्रवृत्त होना उचित है । इसके अतिरिक्त तृष्णा को शल्य के समान कहा गया है । अर्थात जिस प्रकार शरीर के अग में प्रविष्ट हुआ शल्य सारे शरीर में तीव्र वेदना उत्पन्न कर देता है उसी प्रकार कामभोगासक्त चित्त भी पुरुष को रात दिन शल्य की भाँति पीडित करता है । ये कामभोग विष के समान हैं । जिस तरह मधुमिश्रित विष खाने म मधुर और परिणाम में अतिदारुण दु ख देनेवाला होता है उसी तरह ये कामभोग ( तृष्णा ) भी शुरू में तो बड़े ही प्रिय लगते हैं लेकिन इनका परिणाम विष से भी अधिक भयकर होता है । ये कामभोग दृष्टि विष सप के समान हैं । जैसे वह सप फण उठाकर नाचता हुआ तो प्रिय लगता है और शरीर के किसी अग को छते ही प्राणो को हरनेवाला हो जाता है वैसे ही ये कामभोग भी देखने में अति रमणीय प्रतीत होते ह परन्तु इनका थोड़ा-सा स्पश भी आत्मा के लिए महान् अनर्थकारी होता है । अत मुमुक्ष पुरुष को इन कामभोगों का सेवन तो क्या स्मरण भी नही करना चाहिए ।

जो पुरुष तृष्णा के वशीभूत हो चौर्यकम में प्रवृत्त है तथा रूप में अत्यन्त मूर्च्छित हो रहा है वह लोभ के दोष से असत्य भाषण और छल-कपट की वृद्धि करता है अर्थात् लोभ के वशीभूत होकर जो उसने परवस्तु का अपहरण किया है उसको छिपाने के लिए छल करता है तथा झठ बोलता है । अतएव तृष्णा के क्षय करने से आत्मा में समता-गुण की प्राप्ति होती है अर्थात् वह इनसे विरक्त होती हुई इनमें किसी प्रकार की आसक्ति नहो रखती तथा मध्यस्थ भाव को प्राप्त हुई वह आत्मा शब्दादि विषयो के सम्बन्ध में यह भी विचार करती है कि जितने भी शब्दादि विषय हैं वे सब निरपराध हैं । इस प्रकार की सद्विचारणा से उस आत्मा की काम भोगादि में बढी हुई तृष्णा भी क्षीण हो जाती है । इस प्रकार तृष्णा के कर्मविपाक का वणन

---

१ उत्तराध्ययन ९।४९ ।

२ वही ९।५३ तुलनीय मज्झिमनिकाय ३।१।५ ।

३ उत्तराध्ययन ३२।३ तथा देखिए—३२।४२ ४३ ५६ ६९ ८२ ९५ ।

४ वही ३२।१ ७ ।

उत्तराध्ययनसूत्र में बहुत ही सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया गया है। कामभोगादि का सुख से उपभोग किया जाता है और वे भोग के समय सुखकर प्रतीत होते हैं तो फिर ये दुःख के कारण अथवा दु खरूप क्यो है? इस परिणाम का दृष्टान्त द्वारा दिग्दर्शन किया गया है। जिस प्रकार किम्पाक वृक्ष के फल देखने और खाने म सुन्दर तथा स्वादु होता हुआ भी भक्षण करनेवाले के प्राणो का शीघ्र ही सहार कर देता ह ठीक उसी प्रकार इन विषयभोगो की दशा ह। इसलिए कामभोग ( तृष्णा ) से युक्त प्राणी शान्ति को नही प्राप्त कर सकते। कारण यह है कि सर्वप्रकार के दु खों का मल कारण तष्णा ही ह। ससार म जितने भी कायिक और मानसिक दु ख हैं वे सब कामभोगो म मूर्च्छित होनवाले व्यक्तियो को ही प्राप्त होते हैं। ये ताल विषय के समान हैं। अत ये सबसे अधिक भयकर हं। इनको सुख का हेतु समझना मृत्यु को जीवन समझने के समान महा अज्ञानता ह। परन्तु विषयासक्त पुरुषों के लिए इन कामभोगो का याग करना अ यन्त कठिन ह। यद्यपि ये कामभोग कमबन्ध के असाधारण कारण हैं तथापि ये दुर्जेय हैं। इन कामभोगो के सेवन में क्षणमात्र तो सुख है परन्तु दु ख चिरकाल तक रहता है एव ये कामभोग ससार के बन्धन का कारण होन से मोक्ष के पूर्ण प्रतिबन्धक हैं अर्थात इनके ससर्ग म रहनेवाला जीव मोक्ष के निरतिशय आनन्द को कभी प्राप्त नही कर सकता। वस्तुत विश्व के सारे अनर्थों का मल तष्णा ही है। इसके बिना ससार म कोई उपद्रव या अनर्थ नही होता।

उत्तराध्ययनसूत्र में तृष्णा को दुस्त्य य बतलाया गया है तथा इसकी उपमा गरुड पक्षी से की गयी है। तात्पय यह ह कि जिस प्रकार सप गरुड से शकित रहता ह उसी प्रकार मुमुक्षु को भी सदा पापकर्म के आचरण से सशकित रहना चाहिए क्योंकि ये कामभोग कठिनाई से त्याग जात हं। फिर भी जिन आत्माओ ने इन विषयो का याग कर दिया ह वे कम से लिप्त नही होते अर्थात मोक्षपद को प्राप्त कर लेते ह और जो मनुष्य दुर्बद्धि और कामभोगो म आसक्त है वे विषयो से चिपक

---

१ उत्तराध्ययन १९।१८ तथा ३२।२ ।

२ वही ३२।१ १।

३ वही ३२।१९ तथा १३।१६।

४ वही १३।२७।

५ वही १४।१३।

६ वही १४।४७ ४९।

७ वही २५।४१।

जाते हैं। क्योंकि मनुष्य-सम्बन्धी ये सब कामभोग केवल मात्र कुशा के अग्रभाग में ठहरे हुए जल-बिन्दु के समान अत्यन्त क्षुद्र होते हैं अतः भगवान् महावीर का कथन है कि कठिनाई से छोड़ने योग्य इन कामभोगों को सदैव के लिए छोड़ दो। क्योंकि लोभ विजय से जीव को सन्तोष प्राप्त होता है फिर ऐसा सन्तोषी जीव लोभजन्य कर्म का बन्ध नहीं करता और लोभ से संचित किए हुए पूर्वकर्मों का भी क्षय कर देता है।

उपयक्त तथ्यों को देखन से पता चलता है कि जैन आचार-दर्शन में यह आवश्यक माना गया है कि साधक चाहे गृहस्थ हो या श्रमण उसे अपरिग्रह की दिशा म आगे बढ़ना चाहिए। सामान्य तौर पर देखा जाता है कि मनुष्य को मानव जाति को सग्रह एव शोषण-वृत्ति ने कितने कष्टों में डाला है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार समविभाग और समवितरण साधना का आवश्यक अग माना गया है। अतएव ग्रन्थ में कहा गया है कि जो समविभाग और समवितरण नही करता उसकी मुक्ति सम्भव नहीं ह। ऐसा व्यक्ति पापी ही है। समविभाग और समवितरण सामाजिक एव आध्यात्मिक विकास के अनिवाय अग हैं। इसके बिना आध्यात्मिक उपलब्धि भी सम्भव नही है। अत जैन आचार्यों ने नैतिक साधना की दृष्टि से अपरिग्रह को अनिवाय माना है तथा तष्णा की समाप्ति का भी एक ही उपाय बतलाया है—हृदय में सन्तोष-वृत्ति या त्याग भावना का उदय।

इस प्रकार दोनों ग्रन्थो के तुलना मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस ससार म दु खों का मूल कारण तृष्णा ह जिसका दूसरा नाम आसक्ति है। यह तष्णा या आसक्ति ही सग्रहवृत्ति या परिग्रह का मूल है। अत आसक्ति को दूर करने के लिए यावहारिक रूप में परिग्रह को भी त्यागना आवश्यक है। तष्णा के कारण ही व्यक्ति दु खो म पडा है। यह सभी पापो की जननी है। जो इससे रहित है उसे शोक नहीं

---

१ उत्तराध्ययन २५।४३ तथा ६।१२।

२ कुसग्गमेत्ता इमे कामा। वही ७।२४।
इहकामाणियट्टस्स अत्तट्ठे अवरज्झई। वही ७।२५।

३ लोभविजएणं सतोसी भाव जणयइ लोभवेयणिज्ज कम्म न बन्धइ पुव्वबद्ध च निज्जरेइ॥ वही २९।७१।

४ बहुमाई पमुहरी थद्धे लद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अविय-ते पावसमणित्ति वुच्चई॥
वही १७।११ तथा जन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनो का तुलनात्मक अध्ययन भाग २ पृ २३६।

होता । इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध और जन-दशन तृष्णा के उदय और आसक्ति के प्रहाण को अपने नैतिक दशन का महत्त्वपूण अग मानत हैं । आसक्ति के प्रहाण के दो ही उपाय हैं । आध्यात्मिक रूप म आसक्ति को दूर करने के लिए हृदय में सन्तोष का होना नितान्त आवश्यक है जब कि व्यावहारिक रूप में आसक्ति के प्रहाण के लिए जैन-दशन में सुझायी गयी परिग्रह की सीमारेखा का निर्धारण भी आवश्यक है ।

**धम्मपद और उत्तराध्ययन का निरोधवादी दृष्टिकोण**

धम्मपद और उत्तराध्ययन म इन्द्रिय सयम पर काफी बल दिया गया है । लेकिन प्रश्न यह ह कि क्या पूण इन्द्रिय निरोध सम्भव है ? आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से इन्द्रिय व्यापारो का निरोध एक अस्वाभाविक तथ्य है । अत यह विचारणीय है कि इन्द्रिय दमन के सम्बन्ध म क्या धम्मपद और उत्तराध्ययन का दृष्टिकोण आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सहमत है । धम्मपद में कहा गया है कि मनुष्य इन्द्रियों के विषयो में असयत रहता है । उसे मार ( काम ) साधना से उसी प्रकार गिरा देता है जैसे कमजोर वृक्ष को वायु गिरा देती ह । लेकिन जो इन्द्रियों के प्रति सुसयत रहता है उसे मार उसी प्रकार साधना से विचलित नही कर सकता जसे वायु पवत को विचलित नही कर सकती । प्राज्ञभिक्षु के लिए यह आवश्यक है कि वह इन्द्रियों का निरोध कर सन्तुष्ट हो भिक्षु अनुशासन मे सयम से रहे ।

इन्द्रियो के विषय अपनी पूर्ति के प्रयास म मनुष्य को किस प्रकार नैतिक पतन की ओर ले जाते हैं इसका सजीव चित्रण उत्तराध्ययन के ३२व अध्याय म मिलता है । यहाँ उसके कुछ अश प्रस्तुत हैं ।

रूप को ग्रहण करनवाली चक्षु-इन्द्रिय है और रूप चक्षु इन्द्रिय का विषय है । प्रिय रूप राग का और अप्रिय रूप द्वेष का कारण ह । श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को ग्रहण करनेवाली और शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है । प्रिय शब्द राग का और अप्रिय श द द्वेष का कारण ह । गध को नासिका ग्रहण करती है और गन्ध नासिका का ग्राह्य

---

१ धम्मपद गाथा सख्या ७ ८ ।

२ वही ३७५ ।

३ इसका मनोहारी वणन डॉ सागरमल जन ने अपनी जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दशनो का तुलनात्मक अध्ययन नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है देखिए उपयक्त ग्रन्थ भाग १ पृ ४७१ ।

४ उत्तराध्ययन ३२।२३ तथा ३२।२४ ३२।२७ २८ ३२ ।

५ वही ३२।३६ तथा ३२।३७ ४ ४१ ४३ ।

विषय है। सुगन्ध राग का कारण है। रस को रसनेन्द्रिय ग्रहण करती है और रस रसनेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। मनपसन्द रस राग का कारण और मन के प्रति कलस्स द्वेष का कारण है। स्पश को शरीर ग्रहण करता है और स्पश स्पशनेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। सुखद स्पश राग का तथा दु खद स्पर्श द्वेष का कारण है।[1]

इस प्रकार उपयुक्त तथ्यों को देखने से पता चलता है कि स्पर्शनेन्द्रिय के वशीभूत होकर हाथी रसनेन्द्रिय के वशीभूत होकर मछली घ्राणन्द्रिय के वशीभूत होकर भ्रमर चक्षु-इन्द्रिय के वशीभत होकर पतगा और श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभत होकर हिरण मृत्यु का ग्रास बनता है। जब एक इन्द्रिय के विषयों में आसक्ति मृत्यु का कारण बनती है तो फिर पाँचों इन्द्रियों के विषयों के सेवन में आसक्त मनुष्य की क्या गति होगी ? वास्तव में इन्द्रिय-दमन का अर्थ विषयो से मुँह मोडना नही बल्कि विषयों के मूल में सन्नद्ध रागात्मक भावनाओ को समाप्त करना ह। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से वर्णन दोनो ग्रन्थों में किया गया है। ●

---

१ उत्तराध्ययन ३२।४९ तथा ३२।५ ५३ ५४ ५८।

२ वही ३२।६२ तथा ३२।६३ ७१ ७२।

३ वही ३२।७२ तथा ३२।७६ ८ ८७ ९४।

४ जैन बौद्ध तथा गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ पृ ४७२।

अध्याय ६

# धम्मपद मे प्रतिपादित सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री तथा उसका उत्तराध्ययन मे प्रतिपादित सामाजिक एव सास्कृतिक सामग्री से समानता और विभिन्नता

**धम्मपद में प्रतिपादित सामाजिक एव सांस्कृतिक सामग्री**

धम्मपद म यद्यपि वर्णव्यवस्था का सद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत नही किया गया है तथापि उसकी गाथाओ से स्पष्ट ह कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था चार वर्णों और उससे सम्बद्ध अनकानक जातियो के रूप म ही थी। ब्राह्मण के लक्षणो की विवचना के लिए ब्राह्मणवग का एक अध्याय ही धम्मपद म मिलता है। हि दू धमशास्त्रो के अनुसार ब्राह्मणो के काय थे—अध्ययन-अध्यापन यजन याजन दान और प्रतिग्रह कि तु इन्हें मलत एक आदश के रूप म ही मानना चाहिए। समचे ब्राह्मणवग की एक थोडी-सी सख्या ही इस आदर्श तक पहुच पाती थी और अनेक ब्राह्मण कृषि राजकाय आदि म लग थ। धम्मपद म हम पूरा एक अध्याय ही ब्राह्मण बनानवाले गुणो के वर्णन के रूप म देखत ह। बुद्ध को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होन ज मना-जाति के सिद्धान्त पर कठोर आघात किया तथा चरित्र कम और गुण को महत्त्व प्रदान करते हुए ही किसी यक्ति की श्रष्ठता स्वीकार करने का उपदेश दिया। बुद्ध न उसीको सच्चा ब्राह्मण माना जो तप ब्रह्मचय सयम और इन्द्रिय दमन जैसे गुणो से युक्त हो। क्षत्रिय और वश्य शब्द का धम्मपद म सीधे उल्लेख दृष्टिगोचर नही होता। धमसूत्रो म जैसे वैश्यो और शूद्रो के ब्राह्मण और क्षत्रियों की भाँति अलग अलग वर्णों के रूप म उल्लेख मिलत हैं उस रूप म शूद्रो का धम्मपद में कोई उल्लेख नही है। किन्तु साधारणतया धम्मपद म एसी अनेक हीन जातियो का

---

१ अगुत्तरनिकाय पचकनिपात द्वितीय पण्णासक प्रथमवग सातवाँ सूत्र।

२ धम्मपद छब्बीसवा ब्राह्मणवग्ग तुलनीय—सुत्तनिपात वासेटठसुत्त प १६५–१७१।

३ उदक हि नयन्ति नेत्तिका उसुकारा नमयन्ति तेजन।
दारु नमयन्ति तच्छका अत्तान दमयन्ति पण्डिता॥
धम्मपद गाथा-सख्या ८०।

उल्लेख है जिन्हें कम्मकर अथवा यवकत कहा गया है और जिन्हें शूद्र-वर्ण का ही समझा जाता है। वस्तुत' विभिन्न शिल्पगत कार्यों को करनेवाले अनेक लोग शूद्र के ही अन्तर्गत ग्रहण किये गये थे। हथौड कुल्हाणी तक्षणी आदि बनानेवाले लोहार और बढ़ई इसी वग के सदस्य थे। ऐसे ही तकनीकी काय करनेवालों का भिन्न-भिन्न समूह था जो अपने पारम्परिक पेशे को अपनाते थे। ऐसी अनेक शूद्र जातियाँ थी जो अपने पेशे के कारण विख्यात थी। बुनकर बढ़ई (तच्चक) लोहार (कम्मार) दन्तकार कुम्भकार (कुम्हार) आदि विभिन्न शूद्र-वर्ग थे।

वर्णव्यवस्था के समान ही बुद्धकालीन भारतीय समाज में दासप्रथा भी प्रचलित थी। बुद्ध ने भी दास मोक्ष पर जोर दिया और दास-दासी प्रतिग्रहण को अनुचित बतलाया। बौद्धसघ में सम्मिलित हो जान पर दास-दासी मुक्त हो जाते थे। किन्तु इसके अतिरिक्त दास-दासियो को अपन घरो में नौकरों और सेवकों की तरह रखनेवाले धनी लोगो के मन पर भी बुद्ध के उपदेशों का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। अनेक दास-दासी सघ के सदस्य होकर और बुद्ध तथा बौद्ध भिक्षुओं की सेवा करके दासभाव से मुक्त हो जान का प्रयत्न करते थे और कभी-कभी बुद्ध के उपदेशों को सुनकर अपन दुगणों से मुक्त हो जाते थे। वत्सराज उदयन की रानी सामावती की खज्जुत्तरा नामक दासी रानी के लिए फल खरीदते समय कुछ सिक्के चरा लिया करती थी किन्तु बुद्ध का उपदेश सुनकर उसन चोरी करना छोड दिया और अपनी स्वामिनी को भी बुद्ध के उपदेश सुनने के लिए उत्साहित किया। रानी भी उससे प्रसन्न होकर उसे अपनी शिक्षिका और माता समान मानने लगी। विवरणी नामक एक दूसरी दासी अपनी स्वामिनी की आज्ञा से भिक्षु सघ को रोज भोजन देने के कारण स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

धम्मपद म पारिवारिक जीवन का क्रमबद्ध विवरण तो दृष्टिगोचर नहीं होता है फिर भी उस समय समाज वर्णाश्रम के अतिरिक्त अनेक परिवारो म विभक्त था। इस बात की जानकारी परोक्ष रूप से अवश्य दिखायी पडती है। ये परिवार छोटे-बडे सभी प्रकार के होते थे। सामान्य रूप से एक परिवार म माता पिता भाई-बन्धु रहा करते थे। नारी अपने कई रूपों म हमारे सामने आती है। जैसे—माता पत्नी बहन

---

१ देखिए चानना डी आर स्लेवरी इन एन्स्येण्ट इण्डिया पृ ४५।

२ धम्मपद अटठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नामन और एल एस० तैलग जिल्द १ पृ २ २।

३ महावस सम्पादित डब्ल्य गायगर पृ २१४।

४ माता पिता कयिरा अञ्ञेवापि च ञातका। धम्मपद गाथा-सख्या ४३।

माता पुत्री पुत्रवधू वेश्या भिक्षुणी उपासिका आदि । भिक्षुणी तथा उपासिका का उल्लेख धम्मपद में प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी दृष्टिगोचर नही होता है । माताओं के लिए भगवान् बुद्ध ने कहा है कि ससार में माता पिता की सेवा करना परम सुखदायक है ।

एक निवृत्तिपरक धर्म होने के कारण तथा ज्ञान साधना और निर्वाण के मूल प्रश्नों तक ही प्राय सीमित होने के कारण बौद्धधम के ग्रन्थों म तत्कालीन समाज में प्रचलित सस्कारों अथवा वैसी अन्य अनेक सस्थाओं के कहीं भी विस्तृत विवरण नही प्राप्त होते हैं यद्यपि बुद्ध जन्म मरण अथवा विवाह से सम्बन्धित अनेक सस्कारों अथवा प्रथाओं की व्यथता की ओर कुछ अस्पष्ट निर्देश अवश्य करते हैं । ऐसी स्थिति में धम्मपद के आधार पर समाज में प्रचलित सस्कारो आदि का कोई ब्योरवार विवरण नही प्रस्तुत किया जा सकता । धम्मपद म कुछ स्थल ऐसे अवश्य प्राप्त होते हैं जिनसे मृत्यु के उपरान्त शव क्रिया किस प्रकार की जाती थी इसकी थोडी-बहुत जानकारी उपलब्ध होती है । ग्रन्थ में कायानुपश्यना का उपदेश करते हुए भगवान बुद्ध ने भिक्षओं को श्मशान में पड हुए मृतक शरीरों को देखकर अपने शरीर की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने का उपाय बतलाया है । भिक्षुओ को वे उपदेश देते हुए कहते हैं कि वे अर्थात् भिक्षु श्मशान म जाकर एक दिन दो दिन अथवा तीन दिन के मृतको को देख जो फले हुए नीले पडे हुए पीब भरे हुए कौओं गिद्धो चीलो कुत्तो और अनेक प्रकार के जीवों द्वारा खाय जाते हुए कुछ मांससहित और कुछ मासरहित हड्डी कंकाल-वाले हैं । इस प्रकार मरे हुए शरीर को श्मशान मे फको हुई अपथ्य लौकी की भाँति कुम्हलाए हुए मृत शरीर को देखकर भिक्षु को अपने शरीर की नश्वरता के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए ।

---

१ सुखामेत्तेय्यता लोके अथोपेत्तेयता सुखा ॥
धम्मपद गाथा-सख्या ३३२ ।

२ पस्स चित्तकट बिम्ब असकाय समुस्सित ।
आतुर बहुसकप्प यस्स नत्थि धव ठिति ॥
वही गाथा-सख्या १४७ ।

यानि मानि अपत्थानि अलाबनेव सारदे ।
कापोतकानि अट्ठीनि तानि दिस्वान का रति ॥ वही गाथा-सख्या १४९ ।

अट्ठीन नगर कत मस लोहित लेपन ।
यत्थजरा च मच्चु च मानो मक्खो च ओहितो ॥ वही गाथा-सख्या १५ ।

तुलनीय दीघनिकाय हिन्दी अनुवाद पृ १९ –१९२ सुत्तनिपात ११।८ ९ १ ११ ।

बौद्ध-साहित्य में खाद्य-सामग्री या भोजन को खादनीय या भोजनीय कहा गया है। भोज्य पदार्थों में दूध और दूध से बने अनेक द्रव्यों का प्रयोग होता था। दूध दही मट्ठा मक्खन और घी इनमें प्रमुख थे। दूध में चावल डालकर खीर बनाना बहुत प्रचलित था। धम्मपद में दूध से दही जमाने का उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय दाल का प्रयोग किया जाता था मगर वह दाल किस चीज की है इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। भोजन और पेय को मीठा करनेवाले तत्त्वों में ईख का रस अथवा उस रस से बनाये हुए शक्कर या गुड का उल्लेख भी मिलता है। बुद्ध ने अपने अनुयायी भिक्षुओं को गुड ग्रहण करने की आज्ञा दी थी।

धम्मपद अटठकथा से तत्कालीन समाज में प्रचलित मादक पेयों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इनका उपयोग प्राय भोजों त्योहारों और मेलों के अवसर पर किया जाता था जब मित्र और परिचित आमन्त्रित होते थे। अटठकथा के अनुसार वत्सराज उदयन को पकड लेने के बाद अवन्तिराज चण्ड प्रद्योत तीन दिनों तक लगातार मद्यपान करता रहा किन्तु साधारणतया मद्यपान में दोष माना जाता था। शराबों की दुकानदारी करना अनुचित माना गया है। भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को शराब पीने से मना किया था। किन्तु बीमारी के समय सुरा का उपयोग वर्जित नहीं था।

बौद्धधर्म वेश-धारण मात्र से ज्ञान की प्राप्ति नहीं मानता। वेश-धारण की सार्थकता इसीमें है कि चित्तमलों का परित्याग हो जाय। जटा गोत्र और जन्म से

१ देखिए उपासक सी एस डिक्शनरी ऑफ अर्ली बुद्धिस्टिक मोनास्टिक टर्म्स प ७६ १७६।

२ सुत्तनिपात १।२।१८।

३ सज्जु खीरव मुच्चति। धम्मपद गाथा-संख्या ७१।

४ वही गाथा-सख्या ६४ ६५।

५ धम्मपद अटठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नार्मन और एल एस० तैलंग भाग ४ पृ १९९।

६ फूड ऐण्ड ड्रिंक्स इन ऐंश्येण्ट इण्डिया ओमप्रकाश पृ ६ –७१।

७ धम्मपद अटठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नार्मन और एल एस० तैलग भाग १ प १९३।

८ सुरामेरयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो॥ धम्मपद गाथा-संख्या २४७।

९ वही गाथा-सख्या ९ १ ।

कोई ब्राह्मण नहीं होता ब्राह्मण वही है जिसम सत्य और धम है। जिसम ये गुण हैं वही पवित्र ह। यदि चित्तराग द्वेष और मोह के मल से अपवित्र है तो जटायें और मृगछाल क्या करेंगे ? ऊपरी रूपरंग मनुष्यो की पहचान नही ह। कुछ लोग तो बडे सयम की भडक दिखाकर विचरण किया करते हैं वे नकली मिट्टी के बन भडकदार कुण्डल के समान अथवा लोहे के बन सोन का पानी चढ़ाये हुए के समान वेश बनाकर विचरण करते हैं और भीतर से मले तथा बाहर से चमकदार होते हैं।

धम्मपद से अलकारो के विषय में कोई विशेष सूचना नही प्राप्त होती। हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि सम्भवत उस समय समृद्ध-वग की स्त्रियाँ विशेषकर गणिकाओ म स्वणनिर्मित आभषणों का ज्यादा प्रचलन था। धम्मपद से मणिकुण्डल का उल्लेख प्राप्त होता ह जो बड ही कलात्मक ढग से बने होत थ।

धम्मपद से तत्कालीन समाज म प्रचलित कुछ महत्त्वपूण प्रसाधनो की भी जानकारी प्राप्त होती है। पुरुष और नारी दोनो ही विभिन्न प्रकार के प्रसाधनो का उपयोग करते थे यद्यपि प्रमखत यह नारी के जीवन का ही अग माना जाता था। प्रसाधन म फलों और उनसे बनी मालाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था जो स्त्रियों द्वारा केश विन्यास में प्रयुक्त होती थी। केशो को स्निग्ध करने के लिए तेलों का प्रचलन था जो सम्भवत फलो से ही निर्मित होत थ। फलो से अनेक प्रकार के इत्र भी निकाले जाते थे। धम्मपद म माला बनानवाले कुशल व्यक्तियों की चर्चा है। स्वय कोसल राज प्रसेनजित की रानी मल्लिका एक मालाकार की पुत्री थी। चन्दन तगर कमल और जही आदि सुगन्धित चीजो का वणन धम्मपद म प्राप्त होता है। पेडो के

---

१ धम्मपद गाथा सख्या ३९३।

२ वही गाथा-सख्या ३९४।

३ प्राचीन भारतीय वेश-भषा मोतीचन्द्र पृ ४५।

४ धम्मपद गाथा-सख्या ३४५ तुलनीय थेरी गाथा क्रमश १३।४।३२९ १३।१।२५९ १३।१।२६४ १३।१।२६८ १३।४।३२९ तथा गाथा-सख्या ११६८।

५ पुप्फरासिम्हा कयिरा मालागुणे बहू।

धम्मपद गाथा-सख्या ५३।

६ चन्दन तगर वापि उप्पल अथ वस्सिकी।

वही गाथा-सख्या ५५ तथा देखिए गाथा-सख्या ४४ ४५ ५४ ५६।

मल फलों फूलों और पत्तों के रस को निकालकर उनकी गन्ध से शरीर को सुगन्धित किया जाता था।

लकड़ी का काम करनेवाले बढ़ई कहलाते थे। इनका काय भवन-निर्माण और कलात्मक वस्तुए बनाने से लेकर कृषि वस्त्र उद्योग से सम्बन्धित औजार खिलौना आदि का निर्माण सभी कुछ था। इसके अतिरिक्त वे रथ बलगाड़ी आदि के अग-प्रत्यग का निर्माण करते थे। लकड़ी का काय करनेवालो को धम्मपद में तच्छक या तच्छका कहा गया ह। श्रीमती टी डब्ल्यू रीज डेविड्स के मत में ये रथकार अथवा यानकार ऐसी आदिवासी जातियाँ थीं जो वशानुगत रूप में रथ निर्माण या लकड़ी का काम किया करती थी। कृषि-कार्यों में प्रयुक्त होनेवाले सभी औजार लोहे से ही बनते थे जिन्हें बनानेवालो को लोहार या कुम्भकार कहते थे। बाण बनानवाले लोगो को चापकार या उसुकार कहा जाता था। ये विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने के बाद बाण बनाते थे। मालाकार फलों की माला आदि बनाते थे और उनकी कला भी शिल्प रूप में उल्लिखित है।

धातु उद्योग मे अनकानेक लोग लगे हुए थ जिन्ह लोहार स्वणकार और कसेरा कहा जाता था। इन सबमें प्रमख लोहार होते थे जो लोहे से सम्बन्धित कार्य करत थ। लोहा और उसके तकनीकी ज्ञान तथा उसे पिघलाकर उससे विविध औजारो के बनाने की एक विकसित प्रणाली का आभास मिलता है। लोहे को साफ कर उसे कडा और मजबत बनाकर उससे विविध औजारो के बनाने की एक विकसित प्रणाली का आभास मिलता ह। लोहे को साफ कर उसे कडा और मजबत बनाकर उससे विविध औजारो का निर्माण किया जाता था। इन औजारो में युद्ध में प्रयुक्त होनेवाले हथियार और सनिको के पहनने के कवच भी बनते थे। लोहे के बाण भी बनाये जाते थे। बाण बनानेवालो को इषुकार या उसुकार कहा जाता था। ये इषुकार

---

१ प्राचीन पालि-साहित्य से ज्ञात सस्कृति का एक अध्ययन त्रिवेदी कृष्ण कान्त पृ २२ अप्रकाशित शोधप्रबन्ध।

२ दारु नमयन्ति तच्छका। धम्मपद गाथा-सख्या १४५।

३ द डायलाग्स ऑफ दि बुद्ध जिल्द १ पृ १ ।

४ उसुकारा नमयन्ति तेजन। धम्मपद गाथा-सख्या १४५।

५ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल उपाध्याय भरतसिंह पृ ५३ ।

६ सुत्तनिपात कासिभारद्वाजसुत्त ११४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया रैप्सन ई जे पृ १८३ प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया मेहता एन रतिलाल पृ २४५।

बड़ी दक्षता से बाण बनाते थे। धम्मपद[1] में उसुकार द्वारा बिल्कुल सीधा तीर बनाने की प्रशंसा की गयी है। इस ग्रन्थ में जंग लगकर लोहे के नष्ट होने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

सुवण्ण = सुवण्ण चाँदी = रुपिय मणि = मणि बिल्लौर = वेलर फलिक स्फटिक आदि धातुएं एवं रत्न मूल्यवान समझे जाते थे। इनका प्रयोग अलंकार और बहुमूल्य पात्रों के निर्माण में होता था। दक्ष सुवर्णकार और उसका अन्तवासी शुद्ध और अच्छी तरह से साफ किये गये सोने से ही किसी वस्तु का निर्माण कर अपनी योग्यता प्रदर्शित करते थे। धम्मपद की एक उपमा से ज्ञात होता है कि कम्मार = सुवर्णकार बारी बारी से चाँदी के मल को साफ करता है। यह सफाई सम्भवतः किसी अम्ल की सहायता से होती थी। वस्तु विनिमय के साथ साथ उस समय सिक्कों का लेन-देन भी चलता था। उस समय के प्रमुख सिक्के कार्षापण (रुपैया) या कहापण का उल्लेख धम्मपद में प्राप्त होता है। किन्तु उसका मूल्यमान क्या था यह निश्चित नहीं हो पाता। धम्मपद का जो उद्धरण ऊपर दिया जा चुका है उसकी अट्ठकथा के अनुसार एक कहापण बीस मासे का होता था। किन्तु बुद्धघोष की यह टीका बुद्ध के समय से लगभग एक हजार वर्षों बाद गुप्तकाल में लिखी गयी थी। बुद्धघोष का यह कथन है कि कहापण चाँदी का सिक्का होता था।

बौद्धधर्म में गुरुकुलों के समान ही गुरु शिष्य-परम्परा के निर्वाह की पूर्ण चेष्टा की गयी है। भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को उपदेश दिया कि वे अपने गुरुओं तथा गुरुतुल्य

---

१ उजुं करोति मेधावी उसुकारो व तेजनं।

धम्मपद गाथा संख्या ३३।

२ अयसा व मलं समुट्ठितं तदुट्ठाय तमेव खादति।

वही गाथा-संख्या २४०।

३ अनुपुब्बेन मेधावी थोकं थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलं मत्तनो॥

वही गाथा-संख्या २३९।

४ वही गाथा-संख्या १८६।

५ धम्मपद अट्ठकथा बुद्धघोष सम्पादित एच सी नामन और एल एस तैलंग जिल्द २ पृ २ ७।

६ वही पृ २ ७ साथ में देखिए बुद्धकालीन भारतीय भूगोल उपाध्याय भरतसिंह पृ ५५१।

व्यक्तियों के प्रति व्यवहार में समुचित आदर अनुराग एव सत्कार दिखलावें। उपासकों को भी उपदेश दिये गये कि वे अपने माता-पिता अग्रज तथा गुरु का सम्मान करें। इस प्रकार का वन्दन मन वचन और काया का वह प्रशस्त व्यापार है जिससे पथ प्रदर्शक गुरु एव विशिष्ट साधनारत साधकों के प्रति श्रद्धा और आदर प्रकट किया जाता है। इसम उन व्यक्तियो को प्रणाम किया जाता है जो साधना-पथ पर अपेक्षाकृत आगे बढ़े हुए हैं। वन्दन के सम्बन्ध में बुद्ध-वचन है कि पुण्य की अभिलाषा करता हुआ व्यक्ति वषभर जो कुछ यज्ञ वह इहलोक में करता है उसका फल पुण्यात्माओं के अभिवादन के फल का चौथा भाग भी नही होता। अत सरलवृत्ति महात्माओं को अभिवादन करना ही अधिक श्रेयस्कर है। सदा वृद्धों की सेवा करनेवाले और अभिवादनशील पुरुष की चार वस्तुए वृद्धि को प्राप्त होती हैं—आयु सौन्दर्य सुख तथा बल। धम्मपद का यह श्लोक किंचित् परिवर्तन के साथ मनुस्मृति म भी पाया जाता ह। उसम कहा गया है कि अभिवादनशील और वृद्धो की सेवा करनेवाले व्यक्ति की आयु विद्या कीर्ति और बल ये चारों बातें सदैव बढ़ती रहती हैं।

बुद्धकालीन समाज म पशु भी सम्पत्ति के रूप म माने जाते थे। उनमें कुछ पशु यथा—हाथी घोड युद्ध में भी उपयोगी थे। धम्मपद म हाथियो में महानाग तथा धनपालक नामक हाथी का उल्लेख मिलता है। जब कभी मदोन्मत्त हाथी बन्धन तोडकर भाग जाता था तो महावत उसे अकुश के द्वारा वश म किया करता था। हाथी और घोड पशुओ में श्रेष्ठ माने जात थ। इसके अतिरिक्त सब्बर और सूअर का उल्लेख भी धम्मपद म मिलता ह। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सूअर शिकार के काम आते थे।

---

१ य किञ्चियिटठ च हुत च लोके
सवच्छर यजेथ पुञ्ञपेक्खो।
सब्बम्पि त न चतुभागमेति
अभिवादना उज्जुगतेसु सेय्यो॥
धम्मपद गाथा-सख्या १ ८।

२ अभिवादनसीलिस्स निच्च वद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति आयु वण्णो सुख बलं॥
वही गाथा-सख्या १ ९।

३ मनुस्मृति २।१२१।

४ धम्मपद गाथा-सख्या ३२५।

समाज में देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। पालि-निकाय से ज्ञात होता है कि देवराज इन्द्र सर्वाधिक लोकप्रिय देवता थे। इनकी पूजा करनेवालों की संख्या समाज में सबसे अधिक थी और ब्राह्मणधर्मावलम्बियों के समान बौद्ध भी इनको देवराज ही मानते थे। वे इनका उल्लेख विभिन्न नामों से करते हैं जैसे शक्र वासव मघवा आदि। मघवा शब्द का उल्लेख धम्मपद में भी प्राप्त होता है लेकिन उनके कार्य और निवास-स्थान का वर्णन उपलब्ध नहीं है। धम्मपद से यह भी ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में वृक्ष देवता वनदेवी चैत्य पर्वत कूप यक्ष गन्धर्व नाग आदि की पूजा होती थी। वृक्षों को देवता अप्सरा नाग प्रेतात्मा आदि का निवास स्थान मानकर लोग सन्तान यश धन इत्यादि की अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए वृक्षोपासना करते थे। कतिपय लोग वृक्षवासी प्रेतात्माओं तथा नागों के भय निवारणार्थ वृक्ष-पूजा करते थे। वस्तुतः वृक्ष-पूजन नहीं होता था पूजा तो की जाती थी पूजित वृक्ष में निवास करनेवाले देवता अथवा प्रेतात्मा की। भारतीय ग्रामीण जनता में आज भी यह विश्वास प्रबल है। इसी आधार पर कई वृक्षों को देव-स्वरूप माना जाता है जैसे — पिप्पल। जब इसको दार्शनिक आधार प्रदान किया गया तो समस्त प्रकृति परमेश्वर की अभिव्यक्ति मानी गयी पर जनता के विश्वास का आधार तो अपने मूलरूप में ही बना रहा।

धम्मपद में सार्वजनिक कार्य-सम्बन्धी उल्लेख तो नहीं है लेकिन इस ग्रन्थ पर लिखी गयी टीकाओं से ज्ञात होता है कि जनता सार्वजनिक कार्य में अग्रसर रहती थी और बाग लगाना उपवन का निर्माण पुल बंधवाना प्याऊ बैठाना कूप खोदवाना और पथिकों के विश्राम के लिए धर्मशाला बनवाना उत्तम सार्वजनिक कार्य माने जाते थे। इसी प्रकार मार्ग को साफ करना गाँवों की सफाई करना तथा सबके उपयोग के योग्य स्थलों को शुद्ध रखना महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक कार्य माने जाते थे।

---

१ अप्पमादेन मघवा देवानं सेट्ठतं गतो। धम्मपद गाथा-संख्या ३ ।

२ बहु वे सरणं यन्ति पब्बतानि वनानि च।
आरामरुक्खचेत्यानि मनुस्सा भय तज्जिता ॥
नेतं खो सरणं खेमं नेतं सरणमुत्तमं।
नेतं सरणं आगम्म सब्ब दुक्खा पमुच्चति ॥
वही गाथा-संख्या १८८ १८९ ।

३ उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास डॉ नलिनाक्षदत्त तथा श्रीकृष्णदत्त बाजपेयी पृ १६।

४ धम्मपदट्ठकथा मघमाणवक की कथा भिक्षु धर्मरक्षित ( अप्रकाशित )।

स्वर्ग-नरक का उल्लेख भी धम्मपद में देखने को मिलता है। भगवान् बुद्ध के अनुसार पाप-कर्म करनेवाले नरक में तथा सन्मार्ग पर चलनेवाले स्वर्ग को जाते है।[1] दुष्कर्म करनेवाला इस लोक तथा परलोक दोनों में दुःखी होता है। अपने कर्मों की बुराई देखकर वह शोक करता है और नष्ट हो जाता है। लेकिन पुण्य-कर्म करनेवाला इस लोक तथा परलोक दोनों में प्रसन्न रहता है तथा अपने कर्मों की पवित्रता को देखकर वह सुखी रहता है।

इस काल में शिल्पियों की अवस्था अच्छी थी। उद्योग-धन्धे सुचारु रूप से चलत थे। समाज की आर्थिक स्थिति भी अच्छी थी। वस्त्र उद्योग पर्याप्त उन्नति पर था। कुटीर-धन्धो में लगे हुए लोग भी सुखी एव प्रसन्न थे। व्यावसायिक केन्द्र अथवा नगर वणिक-पथों और जल-मार्गों के किनारे अवस्थित थे वाराणसी साकेत श्रावस्ती मथुरा कौशाम्बी वैशाली राजगृह चम्पा तक्षशिला कान्यकुब्ज कुसीनारा आदि ऐसे ही नगर थे। सबको अपन व्यवसाय की स्वतन्त्रता थी। समाज म आर्थिक स्थिति के अनुसार भी एक मापदण्ड था जिसके अनुसार क्षत्रिय महाशाल ब्राह्मण महाशाल श्रेष्ठि महाश्रेष्ठि अनुश्रेष्ठि और उत्तर श्रेष्ठि-पदों से धनवान लोग विभूषित थे। राजा इनका बडा सम्मान करते थे और अनेक कार्यों में इनसे परामर्श लिया करत थ।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के आधार पर धम्मपद से सामाजिक रचना का जो चित्र प्राप्त होता है उसम वैदिक हिन्दू वर्णव्यवस्था के सैद्धान्तिक पक्ष का तो कोई समर्थन नही है किन्तु व्यवहार में प्रचलित समाज के चार वर्णों और उन वर्णों के भीतर की अनेकानेक जातियों को स्वीकृति दी गयी है। वर्ण भी कर्मप्रधान ही थे किन्तु उनमें धीरे-धीरे जन्मजात श्रेष्ठता एव हीनता की भावना घर करती जा रही थी जिसका कि पीछे तथागत को विरोध करना पड़ा और कहना पडा कि व्यक्ति कर्म से ही नीच ऊँच होता है जन्म से नहीं। एक अलग वर्ण के रूप में धम्मपद में शूद्रो का कोई उल्लेख तो नहीं है किन्तु अनेक पेशेवर और हीन जातियों के रूप में इनका उल्लेख मिलता है जिन्हें कम्मकर अथवा तच्छक कहा गया है। चाण्डाल पुक्कुस और निषाद जैसी अन्य हीन जातियाँ भी थी। इसके अतिरिक्त कुटुम्ब परिवार विवाह खान-पान

१ धम्मपद गाथा-सख्या १२६।

२ वही १५।

३ वही १६।

४ बुद्धिस्ट इण्डिया टी डब्ल्यू रीज डेविड्स पृ ५७।

वस्त्राभूषण और सामान्य प्रयोग की वस्तुओं और समाज में स्थापित विभिन्न साधनों का भी विवरण प्राप्त होता है। धम्मपद में ब्राह्मणों की यज्ञ परम्परा के सम्बन्ध में भी सूचनाएं मिलती हैं। साथ ही सामान्य लोगों के धार्मिक आचार विचार देवी देवताओं आदि की भी चर्चाएं हैं।

**उत्तराध्ययन में प्रतिपादित सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामग्री**

धम्मपद की भांति उत्तराध्ययन भी विशुद्ध धार्मिक ग्रन्थ है पर कलेवर में किञ्चित बड़ा होने और यत्र-तत्र विवरणात्मक तथा संवाद आख्यानादि सामग्री की उपस्थिति के कारण यह सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से धम्मपद की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध प्रतीत होता है। नीचे इस ग्रन्थ में तत्कालीन वर्णाश्रम व्यवस्था पारिवारिक जीवन व्यापार शासन व्यवस्था आदि विषयों पर प्राप्त सामग्री का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। उत्तराध्ययनसूत्र के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामग्री के कुछ उल्लेख जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज नामक पुस्तक में डा जगदीश चन्द्र जैन ने किया है। यद्यपि उसमें उत्तराध्ययनसूत्र के सन्दर्भों का भी उल्लेख हुआ है किन्तु वह एक व्यापक दृष्टि से लिखा गया ग्रन्थ है। उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन नामक ग्रन्थ में डॉ सुदर्शनलाल जैन ने उत्तराध्ययन में उपलब्ध सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामग्री की विस्तार से चर्चा की है। उनका यह विवेचन सुव्यवस्थित एवं व्यापक है। उत्तराध्ययन की प्रस्तुत सामाजिक एवं सांस्कृतिक चर्चा में हम उन्हींके इस विवेचन को आधारभूत मानकर चर्चा कर रहे हैं। यद्यपि अनेक सन्दर्भों में हमें अन्यत्र से भी जो सामग्री उपलब्ध हुई है उसका भी हमने उपयोग किया है।

## वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्णव्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज का मेरुदण्ड था। उत्तराध्ययन के युग में मुख्य रूप से दो प्रकार की जातियाँ थी एक आर्य दूसरी अनार्य और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र ये चार वर्ण थे। ग्रन्थ में सदाचरण करनेवाले को आर्य और संस्कारहीन तथा सदाचरण से दूर रहनेवाले को अनार्य कहा गया है। आर्यों के

१ जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज जैन जगदीशचन्द्र पृ २२१।

२ कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइस्से कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा॥
उत्तराध्ययन २५।३३।

३ उवहसन्ति अणारिया — वही १२।४।
रमए अज्जवयणं मित वय बम्भाहण। — वही २५।२।
चरित्ता धम्म मारिय। — वही १८।२५।

पाँच भेद थे—क्षेत्र आर्य जाति आर्य कुल आर्य कर्म आर्य भाषा आर्य।[1] उस समय आश्रम-व्यवस्था भी थी। गृहस्थाश्रम को उत्तराध्ययन में घोराश्रम कहा गया है।[2] बाकी तीन आश्रमों का उल्लेख सीधे रूप में दृष्टिगोचर नहीं होता है। प्रत्येक वर्ण और आश्रमवालों के कार्य भिन्न थे।

उत्तराध्ययनसूत्र में और सामान्यरूप से प्राचीन जैन-साहित्य में विभिन्न वर्णों जातियों आदि के विषय में निम्न प्रकार की सामग्री प्राप्त होती है—

१ ब्राह्मण

चारों वर्णों में ब्राह्मणों की प्रमुखता थी। अधिकांश ब्राह्मण जैनधर्म के विरोधी थे अतः जैनधर्म में ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों को श्रेष्ठता प्रदान की गयी। तीर्थंकर क्षत्रिय-कुल में ही उत्पन्न होते हैं। इसी कारण महावीर को देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ में परिवर्तित किया गया। लेकिन उत्तराध्ययनसूत्र में कहीं भी ब्राह्मणों को क्षत्रियों से निम्नकोटि का नहीं बताया गया है। अपितु उसे वेदवित यज्ञार्थी ज्योतिषांग विद्या के ज्ञाता और धर्मशास्त्रों के पारगामी स्वात्मा और पर के आत्मा का उद्धार करने का अपने में सामर्थ्य रखनेवाला सबकामनाओं को पूर्ण करनेवाला तथा पुण्यक्षेत्र आदि विशेषणों से अलंकृत किया गया है। आगम साहित्य में अनेक स्थानों पर श्रमण और ब्राह्मण शब्द का प्रयोग एक साथ किया गया है जिससे यह भी प्रतीत होता है कि दोनों का समान रूप से आदरणीय स्थान था।

---

१ जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज पृ २२१।

२ घोरासमं चइत्ताणं। उत्तराध्ययन ९।४२।

३ निशीथचूर्णि ४८७ की चूर्णि आवश्यकचूर्णि पृ ४९६ जैन आगम-साहित्य में भारतीय समाज पृ २२४।

४ कल्पसूत्र २।२२ आवश्यकचूर्णि पृ २३९ तुलनीय डॉ जी एस घुर्ये कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया पृ ६३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ २९३।

५ जेय वेयविऊ विप्पा जन्नट्ठा यजे दिया।
जोइसंगविऊ जेय जेय धम्माण पारगा॥
जे समत्था समुद्धत्तु परं अप्पाणमेव य।
तेसिं अन्नमिणं देय भो भिक्खू सव्वकामियं॥
उत्तराध्ययन २५।७-८ तथा १२।१३।

६ आवश्यकचूर्णि पृ ७३ तुलनीय संयुत्तनिकाय समणब्राह्मणसुत्त २ पृ १२९।

उत्तराध्ययनसूत्र में ब्राह्मण के लिए 'माहण' शब्द का उल्लेख है जिसका अर्थ डॉ० सुदर्शनलाल जैन ने 'मतमारो' किया है। उस युग में ब्राह्मणों में यज्ञ-याग का प्रचलन था। वे अपने विद्यार्थियों के साथ इधर-उधर परिभ्रमण भी करते थे। उत्तराध्ययनसूत्र में भी विजयघोष ब्राह्मण के यज्ञ का उल्लेख है। जयघोष और विजयघोष नाम के दो भाई थे। जयघोष मुनि बन गये। विजयघोष ने यज्ञ का आयोजन किया। मुनि जयघोष यज्ञवाट में भिक्षा लेने गये। यज्ञ-स्वामी ने भिक्षा देने से इन्कार कर दिया और कहा कि यह भोजन केवल ब्राह्मणों को ही दिया जायगा। तब मुनि जयघोष ने समभाव रखते हुए उसे ब्राह्मण के लक्षण बताये।

### क्षत्रिय

क्षत्रिय युद्ध-कला में निष्णात होते थे। प्रजा की रक्षा करना इनका परम कर्तव्य माना जाता था। उत्तराध्ययनसूत्र में ऐसे अनेकश क्षत्रिय राजाओं का उल्लेख

---

१ उत्तराध्ययन २५।१९ २ २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३४।

२ उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९३।

३ के एत्थ खत्ता उवजोइया वा अज्झावया वा सह खण्डिएहिं।
एयं खु दण्डेण फलेण हन्ता कण्ठम्मि घेत्तूण खलेज्ज जो णं ?॥
अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता उद्धाइया तत्थ बहूकुमारा।
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेव समागया तं इसि तालयन्ति॥
उत्तराध्ययन १२।१८ १९।

४ वही २५वाँ अध्ययन।

५ इषुकार राजा—उत्तराध्ययन १४।३ ४८ उदायन राजा—वही १८।४८ करकण्डु—वही १८।४६ ४७ काशीराज—वही १८।४९ केशव—वही २२।६ ८ १ २७ ११।२१ कौशल राजा—वही १२।२ २२ जय—वही १८।४३ दशार्णभद्र—वही १८।४४ द्विमुख—वही १८।४६ ४७ नग्गति—वही १८।४६ ४७ ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती वही १३वाँ अध्ययन भरत—वही १८।३४ भोगराज—वही २२।८ ४४ मघवा—वही १८।३६ मृगापुत्र—वही १९वाँ अध्ययन महापद्म—वही १८।४१ महाबल राजा—वही १८।५१ रथनेमी—वही २२।३४–४४ राम—वही २२।२ २७ बलभद्र—वही १९।१ २ वासुदेव—वही २२।१–३ ७ विजय—वही १८।५ श्रेणिक राजा—वही २।२ १ १४ १५ ५४ सगर—वही १८।३५ सनत्कुमार—वही १८।३७ संजय राजा—वही १८वाँ अध्ययन समुद्रविजय—वही २२।३ ३६ ४४ हरिषेण राजा—वही १८।४२।

मिलता है जो धन वैभव आदि का परित्याग कर दीक्षा लेकर मुक्ति को प्राप्त हो गये। राजा अपने भुजबल से देश पर शासन करता था। वह सर्वसम्पन्न व्यक्ति होता था। छत्र चामर सिंहासन आदि राज चिह्न थे। राजा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र होता था। यदि वह विरक्त हो जाता तो लघु पुत्र को भी राज्य-सिंहासन दे दिया जाता था। राजकुमार यदि दुर्व्यसनों में फँस जाता तो उसे देश से निकाल दिया जाता था।

**वैश्य**

गृहपतियों को इब्भ श्रेष्ठी और कौटम्बिक नाम से भी पुकारा गया है। कितने ही गृहपति भगवान् महावीर के परमभक्त थे। उनके पास अपार धन-सम्पत्ति थी। वे खेती और व्यापार करते थे। व्यापार करने के कारण इन्हें वणिक भी कहा जाता था। उस समय व्यापार जहाजों के द्वारा भी चलता था। उत्तराध्ययन म कुछ ऐसे प्रसग मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि ये लोग व्यापार करते हुए विदेश में शादी भी कर लेते थे तथा व्यापार-सम्बन्धी काम समाप्त हो जाने पर उस विवाहिता स्त्री को साथ लेकर अपने देश लौट आते थे। ये लोग ७२ कलाओं का अध्ययन करते थे तथा नीतिशास्त्र में भी निपुण थे। ये लोग दोगुन्दक नामक देव के समान विघ्नरहित होकर सुखों का उपभोग करते थे। कौशाम्बी नाम की नगरी में निवास करनेवाले अनाथी मुनि के पिता अधिक धन का सचय करने से प्रभूतधनसचय नाम से जाने जाने लगे। इससे पता चलता है कि ये लोग प्राय चतुर धनाढ्य और विवेकशील

---

१ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्तिपत्र ४८९ तथा २२।११।

२ वही सुखबोधावृत्तिपत्र ८४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९६।

३ महावीरस्स भगवओ सीसे सोउमहप्पणो॥ उत्तराध्ययन २१।१।

४ चपाए पालिएनाम सावए आसि वाणिए। वही २१।१ ३५।१४।
पिहुडे ववहरतस्स वाणिओदेह धूयर।
त ससत्त पइगिज्झ सदेसमहपत्थिओ॥ वही २१।३।

५ बावत्तरीकलाओय सिक्खिए नीइकोविए। वही २१।६।
तस्स रूपवइ भज्ज पिया आणइ रुविणीं।
पासाए कीलए रम्मे देवो दोगुदगोजहा॥ वही २१।७।

६ कोसम्बी नाम नयरी पुराणपुर भेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झपभूयधण सचओ॥ वही २ ।१८।

होते थे। कुछ वणिक श्रमणवृत्ति को ग्रहण कर अर्थात् अपने सारे सांसारिक ऐश्वर्य को तिलाञ्जलि देकर वीतराग के धर्म में दीक्षित हो जाते थे। उत्तराध्ययन में वैश्य के लिए श्रावक शब्द का भी प्रयोग किया गया है जिससे पता चलता है कि चम्पानगरी का वह पालित नामवाला श्रावक केवल नाममात्र का श्रावक नही था बल्कि व्यापारी होने के साथ-साथ वह शास्त्रो के रहस्य का वेत्ता और जीवाजीवादि पदार्थों के मम का जाननेवाला था।

शूद्र

प्राचीन भारत म शूद्रो की दशा बडी दयनीय थी। समाज में इनको हेय दृष्टि से देखा जाता था। उत्तराध्ययनसूत्र के कुछ प्रसगो से यह पता चलता है कि इनकी जाति अधम मानी जाती थी और समाज के लोग इनसे घृणा करते थे। पर कुछ ऐसे भी प्रसग दृष्टिगोचर होते हैं जिनसे पता चलता है कि नीच जाति म उत्पन्न होते हुए भी ये लोग ज्ञानार्जन करके गुणी और जितेन्द्रिय बन गय। पुरिमतालनगर के चित्र और काम्पिल्यनगर के सम्भूत ने चाण्डालकुलोत्पन्न होत हुए भी कठिन तपस्या के द्वारा देवलोक को प्राप्त हो गये। उत्तराध्ययनसूत्र म चारों वर्णों की स्थापना का मुख्य आधार कम माना गया है। इससे इस बात पर तो प्रकाश नही पडता कि किस वण का कर्म क्या है फिर भी श्रमण सस्कृति के अनुसार इन चार वर्णों की स्थापना का मुख्य आधार सामाजिक उच्चता और नीचता तथा जातिवाद नही है इतना अवश्य स्पष्ट हो जाता ह।

---

१ इस सन्दभ के लिए देखिये—अनाथीमनि—उत्तराध्ययन २ वाँ अध्ययन चित्तमुनि—वही १३।२ ३ ९ ११ १३ १८ ३५ समुद्रपाल—वही २१वाँ अध्ययन।

२ वही २१।१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९७।

३ निग्गन्थ पावयण सावए से विकोविए। उत्तराध्ययन २१।२।

४ नरिद ! जाई अहमानराण सोवागजाइ दुहओ गयाण।
जहि वय सव्वजणस्सवेस्सा वसीय सोवाग-निवेसणसु॥ वही १३।१८ १९।

५ सोवागकुलसभूओ गुणुत्तरधरोमुणी।
हरिएसबलोनाम आसि भिक्खू जिइन्दिओ॥ वही १२।१।

६ दासा दसण्णे आसी मिया कालिंजरे नगे।

इमानोछट्ठिया जाई अन्नमन्नेणजाविणा॥
वही १३।६ ७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९८।

७ सुद्दो हवइ कम्मुणा॥ उत्तराध्ययन २५।३३।

**विभिन्न जातियाँ एवं गोत्रादि**

उत्तराध्ययनसूत्र में प्राप्त अनेक सन्दर्भों से यह ज्ञात होता है कि वर्णों के अति रिक्त बहुत सारी छोटी-छोटी उपजातियाँ भी थीं। जैसे—सवार[1] भारवाहक[2] कर्षक[3] सारथि बढ़ई लोहकार[5] गोपाल अण्डपाल चिकित्साचार्य नाविक और विविध प्रकार के शिल्पी आदि। इनके अतिरिक्त कुछ वर्णसंकर जातियों का भी उल्लेख मिलता है जैसे बुक्कुस और श्वपाक।

उत्तराध्ययनसूत्र म उपर्युक्त जातियों के अतिरिक्त गोत्रों कुलो और वशां आदि का भी उल्लेख मिलता है। गोत्रों में काश्यप गौतम गर्ग और वशिष्ठ कुलों में

---

१ हयमदद व वाहए। उत्तराध्ययन १।३७।

२ अबले जह भारवाहए। वही १०।३३।

३ घले सु बीयाइ ववन्ति कासगा। वही १२।१२।

४ अह सारही विचिन्तेइ। वही २७।१५ तथा देखिए—वही २२।१५ १७ आदि।

५ वडईहि दुमो विव। वही १९।६६।

६ चवेडमुट्ठिमाईहि कुमारेहिं अय पिव। ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो चुण्णिओ य अणन्तसो॥ वही १९।६७।

७ गोवालो भण्डवालो वाजहातद्दव्वऽणिस्सरो। वही २२।४६।

८ वही।

९ उवट्ठिया मे आयरिया विज्जा-मन्ततिगिच्छगा। वही २०।२२।

१० जीवो वुच्चइ नाविओ। वही २३।७३।

११ माहण भोइय विविहा य सिप्पिणो। वही १५।९।

१२ महावीरेण कासवेण पवइए। वही २९ का प्रारम्भिक गद्य तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ३९८ ३९९।

१३ तहा गोत्तेण गोयमो। उत्तराध्ययन १८।२२ तथा २२।५।

१४ थरे गणहरे गग्गे। वही २७।१।

१५ वासिट्ठि! भिक्खायरियाइ कालो। वही १४।२९।

अगन्धन भोग गन्धन और प्रान्तकुलो का और वंशों में इक्ष्वाकु व यादव वंश आदि का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।

**पारिवारिक जीवन**

उत्तराध्ययनसूत्र म कही-कही पारिवारिक जीवन का भी सकेत मिलता है। ग्रन्थ के रचनाकाल में छोटे और बड दोनों प्रकार के परिवार थे। सामान्य परिवार के सदस्य प्राय माता पिता पुत्रवधू भाई पत्नी तथा औरसपुत्र माने जाते थे।

परिवार में माता पिता का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। परिवार का प्रधान दायित्व पिता के ऊपर निर्भर था। माता पिता अपने पुत्र की खुशी के लिए कुछ भी करने को तैयार थे। मगधनरेश महाराजा श्रेणिक को अपने बारे में बताते हुए मुनि कहता है कि कौशाम्बी नाम की अतिप्राचीन नगरी में प्रभत धनसचय नाम के उसके पिता निवास करते थे। एक दिन एकाएक उसको अपनी आँखो में अत्यन्त पीडा होने लगी तथा आँखो की वेदना के कारण शरीर के प्रत्यक अवयव में दाह उत्पन्न हो गया। चिकित्सा के लिए चिकित्साशास्त्र में निष्णात वैद्य वहाँ पर उपस्थित थे लेकिन वे उसकी वेदना की निवृत्ति में सफल न हो सके। वैद्यो की प्रसन्नता के लिए पिता ने घर में विद्यमान अनेक बहुमूल्य पदार्थ उनको भेंट कर दिये। इसके अतिरिक्त उसके दु ख की निवृत्ति के लिए माता ने भी अनेक प्रकार के उपाय किये। इससे पता चलता है कि परिवार म पुत्र माता पिता का स्नेह भाजन माना जाता था। उत्तराध्ययनसूत्र म प्राप्त प्रसगो के आधार पर पता चलता ह कि कभी-कभी पुत्र जब दीक्षा

---

१ कुले जाया अगधणे। उत्तराध्ययन २२।४२।

२ माहण भोइय विविहाय सिप्पिणो। वही १५।९।

३ माकुले गन्धणाहोमो। वही २२।४४।

४ इक्खागरायवसभो। वही १८।३८।

५ वही २२।२७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ३९९।

६ मायापियाण्हुसाभाया भज्जा पुत्ताय ओरसा।
उत्तराध्ययन ६।३ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४ १।

७ पिया मे सव्वसार पि दिज्जाहि ममकारणा।
उत्तराध्ययन २ ।२४।

८ माया य मे महाराय ! पुत्तसोगदुहट्टिया।
वही २ ।२५।

ग्रहण करने समता का तो उसके माता-पिता असह्य वेदना का अनुभव करते थे। कुछ माता-पिता ऐसे भी थे जो पुत्र के साथ ही साथ दीक्षा ग्रहण कर लेते थे। उत्तराध्ययनसूत्र के १४वें अध्ययन में प्राप्त भृगु पुरोहित की कथा से यह स्पष्ट होता है। भृगु पुरोहित के दोनों पुत्रों को जब साधुओं ने प्रतिबोध दिया तो उन्होंने संयम लेने का निर्णय किया और माता-पिता को अपने इस निर्णय की सूचना दी। पहले तो माता पिता ने बहुत कुछ समझाया किन्तु जब देखा कि वे नहीं मान रहे हैं तो भृगु पुरोहित ने अपनी पत्नी यशा से इस प्रकार कहा— जिस प्रकार वृक्ष अपनी शाखाओं से ही शोभा को प्राप्त होता है और शाखाओं के कट जाने से उसकी सारी रमणीयता समाप्त हो जाती है उसी प्रकार पुत्रों के बिना मेरा इस घर में रहना अब ठीक नहीं है। जैसे इस लोक में परों से रहित पक्षी रण में सेना के बिना राजा एवं जहाज के डूबने से धनरहित वणिक अत्यन्त दुःखी होता है उसी प्रकार पुत्रों के बिना मुझे भी अनेक प्रकार के कष्टों का अनुभव करना पड़ेगा। प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त संकेतों से यह पता चलता है कि पुत्र और पति के दीक्षा ग्रहण कर लेने पर पत्नी भी घर में रहना उचित नहीं समझती थी तथा इन दोनों के साथ ही संयम-व्रत ग्रहण कर लेती थी।

भाई भाई में अटूट प्रेम होता था। पुरिमतालनगर के विशाल श्रेष्ठि-कुल में उत्पन्न चित्तमुनि पाँच पूर्वजन्मों में अपने भाई ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के साथ साथ उत्पन्न होता है परन्तु छठे जन्म में पृथक्-पृथक् हो जाता है। पुनः काम्पिल्यनगर में एक बार भेंट होने पर दोनों अपने सुख-दुःख का हाल कहते हैं। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती अपना वैभव चित्तमुनि को देना चाहता है लेकिन वह उसमें प्रलोभित नहीं होता है। वह ब्रह्मदत्त को उपदेश देता है लेकिन जब वह धर्मोपदेश का पालन नहीं करता तब वह अपना उपदेश व्यर्थ समझकर वहाँ से चला जाता है और कठिन तपस्या के द्वारा मुक्ति

---

१ पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो वासिट्ठि ! भिक्खायरियाइ कालो।
साहाहि रुक्खो लहए समाहिं छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं॥

पक्खाविहूणो व्व जहेह पक्खी भिच्चा विहूणो व्व रणे नरिन्दो।
विवन्नसारो वणिओ व्व पोए पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि॥

उत्तराध्ययन १४।२९,३० तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ० ४१४ २।

२ पत्नेन्ति पुत्ता य पई य मज्झं तेहं कहं नाणुगमिस्समेक्का।

उत्तराध्ययन १४।३६।

को प्राप्त करता है। इसी प्रकार इषुकार देश के राजा और रानी पुरोहित और उसकी पत्नी पुरोहित के दोनों पुत्र—छहों व्यक्ति पूर्वजन्म का ज्ञान होने पर दीक्षा लेते हैं। एक अन्य सन्दर्भ में जयघोष नामक मुनि द्वारा विजयघोष नामक अपने भाई के हित के लिए उचित मार्ग पर चलने का उपदेश दिये जाने का उल्लेख है। इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों से पता चलता है कि परिवार में भाइयों का एक-दूसरे के प्रति अत्यन्त सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध था और वह सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर तक निर्वाह करने का प्रयत्न किया जाता था।

उत्तराध्ययनसूत्र में नारी के अनेक रूपों का उल्लेख मिलता है। स्त्रियों के रूपलावण्य में पुरुष की आसक्ति न हो इसीलिए ग्रन्थ में स्त्रियों को राक्षसी एवं पङ्कभूत (कीचड़) तक कहा गया है। ये नाना प्रकार की चित्तवाली हैं तथा वक्षस्थल में कुचों (मांसपिण्ड) को धारण करती हैं। ये पहले पुरुष को प्रलोभित करती हैं पश्चात् उनसे दास की तरह व्यवहार करती हैं। ग्रन्थ में कुछ ऐसे भी सन्दर्भ मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि पति के मरने के बाद अन्तःपुर में सुरक्षित रहनेवाली स्त्रियों को कभी कभी कोई दूसरे ही पुरुष अपने उपभोग में लाते थे।

नारी का दूसरा रूप आदर्श था परन्तु इस प्रकार की नारियाँ बहुत कम थीं। अनाथी मुनि को दुःख से विमुक्त कराने के लिए उनकी पत्नी रात दिन उनकी परिचर्या में लगी रहती थी तथा उसका सारा समय प्रायः रोने में ही व्यतीत होता था। अपने पति के वियोग में वह अन्न जल और स्नान करना तथा चन्दनादि सुगन्धि द्रव्यों का

---

१ आसिमो भायरा दो वि अन्नमन्नवसाणुगा।
अन्नमन्नमणरत्ता अन्नमन्नहिएसिणो॥
उत्तराध्ययन १३।५।

२ वही १४वाँ अध्ययन तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४ २।

३ उत्तराध्ययन २५वाँ अध्ययन।

४ पङ्कभयाओ इत्थिओ। वही २।१७।

५ नो रक्खसीसु गिज्झेज्जा गंडवच्छासु णेगचित्तासु।
जाओ पुरिसंपलोभित्ता खेल्लन्ति जहा व दासेहिं॥
वही ८।१८।

६ तओ तेणज्जिए दव्वे दारे य परिरक्खिए।
कीलन्तिऽन्ने नरा राय हट्ठतुट्ठमलंकिया॥
वही १८।१६ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४ ३।

शरीर पर विलेपन करना एव पुष्पमाला आदि का पहनना इन सब वस्तुओं का परित्याग कर दिया था। परन्तु इतनी समवेदना प्रकट करने पर भी वह अपने पति को दु ख से छुड़ाने म सफल न हो सकी।[1] इस प्रकार व्यतिरूप से कुलीन स्त्री के गुणों का भी वर्णन किया गया है। आदर्श नारी के रूप म परिवार म पतिव्रता नारी का प्रथम स्थान था। राजीमती इसी प्रकार स्त्रीजनोचित सबलक्षणों से युक्त थी। अर्थात् कुलीन और सुशील स्त्रियो में जो गुण और लक्षण होने चाहिए वे सब उसमें विद्यमान थे। जिस समय राजीमती को पशुओ की दीनदशा को देखकर विवाह का सकल्प छोड़कर अरिष्टनेमि के वापस लौटने और दीक्षा ग्रहण करने का समाचार मिला उस समय उसका सारा ही हर्ष विलीन हो गया और शोक के मारे वह मच्छित हो गयी। लेकिन अरिष्टनेमि के महान् वैरा य की बात सुनकर वह भी अनेक राजक याओं के साथ दीक्षित हुई तथा ससार से विरक्त हो गयी। अत भारत का मुख उज्ज्वल करनेवाली रमणियो में राजीमती का स्थान विशेष प्रतिष्ठा को लिय हुए है। इस प्रकार बहुत सी सहचरियो को दीक्षा देकर और उनको साथ लेकर भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दन करन के लिए वह रैवतक पवत पर जा रही थी। अचानक जोर की वर्षा न सभी को सुरक्षित स्थान खोजने के लिए विवश कर दिया। सब इधर उधर तितर बितर हो गयी। राजीमती एक गुफा में पहुची जहाँ रथनेमि ध्यान में लीन खड़े थे। रथनमि ने राजीमती को देखा और सासारिक विषय भोगो का आनन्दपूर्वक सेवन करने की अभ्यर्थना की। तब राजीमती ने स्पष्ट कहा— रथनमि! मैं तुम्हारे ही भाई की परि यक्ता हूँ और तुम मुझसे विवाह करना चाहते हो? क्या यह वमन किये को फिर चाटन के समान घणास्पद नही है? तुम अपने और मेरे कुल के गौरव को स्मरण करो। इस प्रकार के अघटित प्रस्ताव को रखते हुए तुम्हे लज्जा आनी चाहिए। राजीमती की

---

१ भारिया मे महाराय! अणरत्ता अणुव्वया।
असुपुण्णहिं नयणहिं उर मे परि सिंचई॥
अन्नपाण च ण्हाण च गन्ध-मल्ल विलेवण।
मए नायमणाय वा सा बाला नोवभुंजई॥

उत्तराध्ययन २ ।२८ २९ तथा

उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४ ४।

२ पक्खदे जलिय जोइ धूमकेउं दुरासय।
नेच्छन्ति वतय भोत्तु कुले जाया अगधणे॥
धिरत्थुतेजसो कामी! जो त जीवियकारणा।
वन्त इच्छसि आवेउं सेय ते मरण भवे॥

उत्तराध्ययन २२।४२ ४३।

बात से रथनेमि को अपनी भूल समझ में आयी। अकुश द्वारा जैसे मत्त हाथी वश में आ जाता है शान्त-भाव से अपने पथ पर चल पड़ता है वैसे ही रथनेमि भी राजीमती के बोध-वचनों से स्वस्थ होकर स्वय अपने सयम-पथ पर आरूढ़ हो गया। इसी प्रकार इषुकार देश के राजा की पत्नी कमलावती अपने पति को सदुपदेश द्वारा सन्मार्ग पर लाने की कोशिश करती है और उसमें सफल भी हो जाती है। फिर दोनो जैन-दीक्षा लेकर कर्मों का क्षय करके मोक्ष जाते हैं। इससे पता चलता है कि पतिव्रता स्त्री के लिए पति के अतिरिक्त शेष सब निरथक समझा जाता था। उत्तराध्ययनसूत्र में राजी मती के लिए बहुश्रुता विशेषण दिया गया है। अत राजीमती का बहुत सख्या में अन्य स्त्री-जन को दीक्षित करना उनके विशिष्ट श्रुतज्ञान को ही प्रदर्शित करता है। य स्त्रियाँ अपन शरीर पर च दनादि सुगन्धि द्रव्यों का विलेपन करती थी तथा बालों म पुष्प की माला धारण करती थी। य अपने उलझे हुए केशो को सुलझान के लिए बाँस के बन हुए मोट दाँतोवाले ब्रश अथवा कघ का प्रयोग करती थी। कुछ क याय योग्य वर के साथ ब्याह दी जाती थी तथा कुछ क याय एसी भी थी जिन्हें माँगन के लिए वर-पक्ष के लोग स्वय कन्या के घर आते थ।

इस प्रकार उपयक्त तथ्यो को देखने से पता चलता ह कि नारी का स्वत त्र अस्तित्व था। फिर भी वह पुरुषो के अधीन तथा विषय वासना की पति के निमित्त समझी जाती थी।

---

१ तीसे सोवयण सो चा सजयाए सुभासिय।
अकुसेण जहानागो धम्मे सपडिवाइओ॥
उत्तराध्ययन २२।४८ तथा देखिए २२वाँ अध्ययन।

२ वही १४।३७–४९।

३ सयण परियण चेव सीलवत्ता बहुस्सुया।
वही २२।३२ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४ ५।

४ उत्तराध्ययन २ ।२९।

५ अहसाभमर स निभे कुच्च-फणग-पसाहिए। वही २२।३ ।

६ पिहुण्ड ववहरन्तस्सवाणिओदेइ धयरं । वही २१।३।

७ तस्स राई मइ कन्न भज्ज जायइ केसवो। वही २२।६।

८ धणेण किं धम्मधराहि गारे। वही १४।१७ १९।१७ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ४ ६।

उत्तराध्ययनसूत्र में कुछ धार्मिक तथा लोकव्यावहारिक रीति-रिवाजों एव प्रथाओं का उल्लेख भी मिलता है। सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान विवाह को दिया जाता है। विवाह स्त्री और पुरुष के मञ्जुल सामजस्य को कहा जाता है। जब पुत्र विद्याध्ययन समाप्त कर युवावस्था को प्राप्त करता था तब पिता उसकी शादी किसी रूपवती कन्या के साथ कर देता था। श्रेष्ठ कन्याओं को माँगने क लिए वर-पक्ष के लोग स्वय कन्या के घर आते थे तभी तो उग्रसेन ने वासुदेव से कहा कि यदि नेमिकुमार विवाहोचित महोत्सव के साथ मेरे घर आव तो मं विधिपूवक उसको कन्या देने के लिए सवप्रकार से प्रस्तुत हूँ। विवाह का समय समीप आने पर जया विजया ऋद्धि वृद्धि आदि औषधियों से सस्कारित पानी से वर को स्नान कराया जाता था तत्पश्चात् मशल आदि से ललाट का स्पर्श करना मागलिक माना जाता था। श्रेष्ठ कन्याय राजा-महाराजाओ को उपहार में दी जाती थी। वाराणसी के राजा कौशलिक की पुत्री भद्रा को जब उसके पिता ने मुनि हरिकेशि से विवाह के लिए प्राथना की तब मुनि न विवाह की प्राथना को अस्वीकार कर दिया। अत इस प्रकार के ऋषि नरेन्द्रों तथा देवेन्द्रो से भी पूजित माने जाते थे। उत्तराध्ययनसूत्र में प्राप्त सकेतो के आधार पर यह ज्ञात होता ह कि उस समय के राजा महाराजाओ की कई पत्नियाँ होती थी जिनके साथ वे भोग भोगा करते थे। सौयपुर नगर के राजा वसुदेव की रोहिणी और देवकी ये दो स्त्रियाँ थीं। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी होती थी जो अपने पति के मृत्योपरान्त अन्य हृष्ट-पुष्ट पुरुष के साथ स्वेच्छा से चली जाती थी।

ग्रन्थ में दाहसस्कार के भी उल्लेख हैं। पिता की मृत्यु पर पुत्र पुत्र के मरने पर पिता भाई की मृत्यु पर भाई और सगे-सम्बन्धी की मृत्यु पर जाति-जन चिता म

---

१ उत्तराध्ययन २१।७।

२ वही २२।६ ८।

३ सव्वोसहीहिण्हविओ कयकोउयमगलो।
दिव्वजुयलपरिहिओ आभरणेहिं विभूसिओ ॥ वही २२।९।

४ देवाभिओगेणनिओइएण दिन्ना मुरन्ना मणसा न झाया।

जोमेतया नेच्छइ दिज्जमार्णि पिऊणासय कोसलिएण रन्ना ॥
वही १२।२१ २२।

५ तस्सभज्जा दुवेआसी रोहिणी देवई तहा। वही २२।२।

६ वही १८।१६ १३।२५ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४१२।

अग्नि लेकर एक-दूसरे के पीछे घर का अनुसरण करते थे। मृत्यु स्वाभाविक रूप से आयु की समाप्ति होने पर तथा युद्ध आदि म तो होती ही थी परन्तु कुछ प्राणी शस्त्र प्रहार विषभक्षण अग्नि प्रवेश जल प्रवेश तथा त्याज्य वस्तु का सेवन करके आत्मघात भी करते थे। इसके अतिरिक्त जैन साधु मृत्यु समय आहार-त्यागरूप सल्लेखना व्रत लेकर शरीर का याग करते थे।

उस युग में देश म खती-बारी की बहुतायत थी इसलिए भोजन की कमी नही थी। पर यह सत्य है कि सामा य पुरुष को उत्तम भोजन नही मिलता था। भोज्य पदार्थों म दध दही मक्खन घी तेल चावलो से निष्पन्न ओदन और उसके साथ अनेक प्रकार के व्यञ्जन प्रतिदिन भोजन के काम में आते थे। पूड और खाजे उस समय के विशेष मिष्टान्न थे जो विशेष अवसरों पर बनाये जाते थे। जैन साध और साध्वी श्रावक और श्राविका मास और मदिरा का उपयोग कतई नही करत थे। अन्य लोगो में उसका प्रचलन था। मत्स्य बकरा मृग तथा महिष का मास बड चाव से खाया जाता था। मछली पकडने के लिए लोहे के काँटो का प्रयोग किया जाता था जिसे बडिश कहा गया ह। इसके अतिरिक्त जालों का भी उ लेख मिलता है। उस

---

१ उत्तराध्ययन १३।२५।

२ सत्थग्गहण विसभक्खण च जम्मण मरणाणिब धन्ति।
वही ३६।२६७।

३ मरणपिसपुण्णाण विप्पसण्णमणघाय। वही ५।१८ ५।३१।
न सतसति मरणत सीलवन्ता बहुस्सुया।

४ भुजाहि सालिम कर। वही ५।२९।
नाणावजण-सजुम वही १२।३४।

५ पभयम न त भुजसू वही १२।३५।

६ वाडेहि पजरेहि च सनिरुद्धाय अच्छहि। वही २२।१६ ८।१२ १५।१३।
नाह रमे पक्खिणि पजरेवा। वही १४।४१।

७ अय ककर भोइय जहाएस व एलए। वही ७।७।
पासेहि कडजालेहि मिओवाअवसो अह। वही १९।६४।
हि सउणो विव। वही १९।६६।
हुआसण जलनम्मि चिआसु महिसो विव। वही १९।५८।

८ रागाउरे बडिसविभिन्नकाए
मच्छजहा आमिसभोग गिद्धे। वही ३२।६३।

९. वही १९।६५ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४१५।

समय समाज में मदिरा-पान का भी प्रचलन था यथा—सुरा सीधु मेरक मधु और वारुणी। इसके साथ ही साथ खजूर द्राक्ष दुग्ध खाँड शकरा कौडे तम्बे निम्ब कट रोहिणी मद्य मिच सोंठ गजपीपल आम्र तवर और कपित्थफल के रसों का सेवन किया जाता था।[1]

पशु-सम्पत्ति स्थानापन्न थे। कुछ पशु युद्ध-स्थल में कुछ शिकार म कुछ मेहमान के प्रीतिभोज में कुछ यज्ञ म और कुछ अन्य कामों में आते थे। पालत पशुओं में गाय बैल घोडा और हाथी का उल्लेख मिलता है। पशुओ में घोडा और हाथी श्रेष्ठ माने जाते थे। उत्तराध्ययन में अनेक स्थानो पर गलि अश्व का भी उ लेख आता ह। वे दुर्विनीत होते थ। उन्हें चलाने या रोकने म भी चाबुक का प्रयोग करना पडता था। युद्ध म हाथी को आगे रखा जाता था इसीलिए उसे सग्राम-शीष के विभूषण से अलकृत किया गया है। उस समय कम्बोज देश के कन्थक घोड बहुत ही प्रसिद्ध थे। य चलन म बहुत तज होते थे। युद्धो म व राजा की सवारी के लिए हाथी का उपयोग होता था। ग धहस्ती सर्वहस्तियो में प्रधान और सबका मानमदक होता था। मदो मत्त हस्ती को वश में करने के लिए महावत अकुश का भी प्रयोग करता था। काले और सफेद शकरो तथा श्वानों का उ लेख भी मिलता है जिससे पता चलता है कि ये दोनो शिकार के काम म लाये जाते होगे। पक्षियो को पालने के लिए पिंजड तथा जालो

---

१ ख जरमुद्दियरसो खीररसो खण्डसक्कररसो वा।

उत्तराध्ययन ३४।१५ ३४।१ १३

१९।५४ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ४१५।

२ गवास मणिकडल पसवो दासपोरुस। उत्तराध्ययन ६।५ तथा ९।४९ १३।२४ २ ।१४।

३ अस्साहत्थीमणस्सामे। वही २ ।१४।

४ मागलियम्से व कस। वही १।१२।

५ नागो सगाम-सीसेवासूरो अभिहण पर॥ वही २।१ ।

६ जहासेकम्बोयाण आइण्णेक थएसिया। आसे जवेणपवरे।

वही ११।१६ तथा १३।३ १।१२ २३।५८।

७ मत्त च गधहत्थि च वासुदेवस्स जिटठय। वही २२।१ ।

८ अकुसेण जहानागो। वही २२।४७ तथा १४।४८

तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन प ४१४।

९ कवतो कोल सुणएहि सामेहि सबलेहि य।

उत्तराध्ययन १९।५५ तथा १९।६६।

का भी प्रयोग किया जाता था। लेकिन ग्रन्थ में अनेकविध पक्षियों का उल्लेख मिलता है जो पाले नहीं जाते थे यथा—चमगादड हंस चकवा समुद्र-पक्षी (जिनके पंख सदा अविकसित रहते हैं और डब्बे के आकार सदृश सदा ढँके रहते हैं) वितत पक्षी (जिनके पंख सदा खुले रहते हैं) बकरे का प्रयोग मेहमान के भोजन के लिए किया जाता था। पशुओं को कण ओदन और यवस (मूंग उड़द आदि धान्य) दिये जाते थे। चावलों की भूसी अथवा चावल मिश्रित भूसी पुष्टिकारक तथा सूअर का प्रिय भोजन था।

भारतीय व्यापारी अन्तर्देशीय व्यापार में दक्ष थे। वे किराना लेकर बहुत दूर दूर तक जाते थे। चम्पा नगरी का वणिक पालित चम्पा से नौकाओं में माल भरकर रास्ते के नगरों में व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नगर में पहुँचा। वस्तु को खरीदने और बेचनेवाले को वणिक कहा जाता था। व्यापार में कभी कभी मूलधन ही शेष बचता था। व्यापार करना मुख्य रूप से वणिक का ही कार्य माना जाता था। व्यापारी अपना माल भरकर नौकाओं व जहाजों से दूर दूर देशों में जाते थे। कभी कभी तूफान

---

१ नाहरम पक्खिणिपंजरे वा।

उत्तराध्ययन १४।४१ तथा १९।६३ आदि तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ ४१४।

२ चम्म उलोमपक्खीय तइया समुग्गपक्खिया।
विययपक्खीयबोधव्वा पक्खिणो य चउव्विहा॥

उत्तराध्ययन ३६।१८७।

३ अयकक्करभोईय तुंदिले चियलोहिए।
आउयं नरए कंखे जहाएस व एलए॥

वही ७।७।

४ ओयणं जवसं देज्जापोसेज्जा विसयंगणं।

वही ७।१।

५ वही १।५।

६ वही २१।२।

७ विक्किणन्तोय वाणिओ। वही ३५।१४ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ ४१८।

८ एगोत्थ लहई लाभं एगो मूलेणआगओ। उत्तराध्ययन ७।१४।

९ एगोमूलंपि हारित्ता आगओ तत्थ वाणिओ। वही ७।१५ २३।७–७३।

आदि के कारण नौका टूट जाती थी और सारा माल पानी में बह जाता था। तब वे समुद्र पार करके वापस लौट आते थे। विदेश-यात्रा से समुद्र पार कर कुशलतापूर्वक घर में वापस आ जाना निस्सन्देह शुभ कर्मों के उदय का सूचक माना जाता था। समुद्र के रास्ते से स्वदेश लौटने में काफी समय लगता था इसलिए गर्भवती स्त्रियाँ समुद्र में अर्थात् जहाज पर ही बच्चे को जन्म दे देती थी। दीर्घ मार्ग की यात्रा में क्षुधा और तृषा को शान्त करने के लिए कुछ लोग पाथेय लेकर चलते थे। उस समय व्यापार में शकट तथा रथ आदि का भी प्रयोग किया जाता था जो बैलों द्वारा खींचा जाता था। घोड़ों का व्यापार भी चलता था। कम्बोज के घोड़े श्रेष्ठ होते थे। वे बहुत तेज चलते थे और किसी भी तरह की आवाज से नहीं डरते थे। व्यापारियों का एक वर्ग था शिल्पी-वर्ग। शिल्पी-वर्ग के लोग नाना प्रकार के कलात्मक व जीवनोपयोगी वस्तुओं का निर्माण करते और उन्हें बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे। उस समय लुहार वर्ग का कार्य उन्नति पर था। वे लोग खेती-बारी के लिए काम में आने वाले हल कुदाली आदि तथा लकड़ी काटने के बसूला फरसा आदि बनाकर बेचते थे।

वस्तु विनिमय के साथ-साथ उस समय सिक्कों का लेन-देन भी चलता था। उसमें कुछ सिक्के इस प्रकार के हैं जिनका उल्लेख ग्रन्थ में मिलता है—कार्षापण — रुपैया। कार्षापण को ही मनुस्मृति में धारण और रजत पुराण कहा गया है। पाणिनि

---

१ जेतरन्ति अतरं वणियाव। उत्तराध्ययन ८।६।

२ खेमेण आगए चपे। वही २१।५।

३ अह पालियस्स घरणी समुद्दंमि पसवइ। वही २१।४।

४ अद्धाणं जो महंतं तु सपाहेज्जो पवज्जई।
गच्छन्तो सो सुही होई छुहातण्हविवज्जिओ॥
वही १९।२१।

५ अवसो लोहरहेजुत्तो जलते समिलाजुए।
चोइओतोत्तजुत्तेहिं रोज्झोवाजह पाडिओ॥
वही १९।५७ तथा ९।४६।

६ वही ११।१६।

७ वही ३६।७५।

८ अयन्तिए कूडकहावणेवा। वही २०।४२।

९ मनुस्मृति ८।१३५ १३६।

में इन सिक्कों को आहृत कहा है। डा वासुदेवशरण अग्रवाल ने चाँदी के सिक्कों को कार्षापण और ताँबे के कष का नाम पण बतलाया है।

काकिणी —ताँब का सबसे छोटा सिक्का था जो दक्षिणापथ म प्रचलित था। वस्तुओं को तौलने के लिए तराज का उल्लेख भी ग्रन्थ म मिलता है।

उस युग में प्रजा का पालन करने के लिए राजा का होना अत्यन्त आवश्यक माना जाता था। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार चक्र स्वस्तिक अकुश आदि चिह्न राजा के लक्षण मान जाते थ। छत्र चामर सिंहासन आदि राज चिह्न थे। राजा सर्वशक्ति सम्पन्न यक्ति व होता था। नि स्वामिक धन पर राजा का अधिकार होता था। कुरु जनपद के उसुकार नगर के राजा इषुकार न अपने भृगु पुरोहित के सार परिवार के प्रव्रजित हो जाने पर उसका सारा धन अपने खजान के लिए मगवाया था।

अपराधो म चौय कम प्रमुख था। चोरो के अनक वग यत्र तत्र कायरत रहत थे। लागो को चोरो का आतक सदा बना हता था। राजा चोरो के दमन के लिए सदा प्रय नशील रहत थ। उत्तराध्ययन में पाँच प्रकार के चोरो का उ लेख ह—

| | |
|---|---|
| १ आमोष | धन माल को लटनवाले। |
| २ लोमहार | धन के साथ साथ प्राणो को लटनवाले। |
| ३ ग्रथि भदक | ग्रथि भेद करनवाले। |
| ४ तस्कर | प्रतिदिन चोरी करनवाले। |

---

१ पाणिनि अष्टा यायी ५।२।१२।

२ पाणिनिकालीन भारतवष वासुदेवशरण अग्रवाल प २५७।

३ जहाकागिणिएहेउ सहस्स हारए नरो।

उत्तराध्ययन ७।११ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन प ४१९।

४ जहातुलाए तोलेउ। उत्तराध्ययन १९।४२।

५ अह असिएण छत्तेण चामराहि यसोहिए।

वही २२।११ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन प ४२३।

६ पुरोहिय तससुय सदार सो चा भिनिक्खम्म पहाए भोए।
कुड बसार विउलत्तम त राय अभिक्ख समवाय देवी॥

उत्तराध्ययन १४।३७।

७ आमोसेमोमहारे य गठिभेएयतक्करे। वही ९।२८।

| | |
|---|---|
| ५ कण्णुहर | कन्याओं का अपहरण करनेवाले । |

लोमहार अत्यन्त क्रूर होते थे । वे अपने आपको बचाने के लिए मानवों की हत्या कर देते थे । ग्रन्थि भेदक के पास विशेष प्रकार की कचियाँ होती थीं जो गाँठों को काटकर धन का अपहरण करते थे । नगर की सुरक्षा के लिए जो साधन काम में लिये जाते थे उनमें से कुछ के नाम प्रस्तुत सूत्र म मिलत है —

| | |
|---|---|
| प्राकार | धलि अथवा इटो का कोट । |
| गोपुर | प्रतोलीद्वार या नगरद्वार । |
| अट्टालिका | प्राकार कोष्ठक के ऊपर आयोधन स्थान अर्थात् बुज । |
| उत्सूलक | खाइयाँ या ऊपर से ढके गर्त । |

उस युग म प्राय साम्राज्य को विस्तृत करने की भावना से युद्ध हुआ करते थे । युद्ध म विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए रथ अश्व हाथी और पदाति ये अत्यन्त उपयोगी होते थे । युद्ध म घोडो का भी अत्यन्त महत्त्व था । वे तेज तर्रार होत थे । शत्रु सेना म घुसकर उसे छिन्न भिन्न कर देत थे । घोड अनक किस्म के होते थ । कम्बोज देश के आकीण और कन्थक घोड प्रसिद्ध थे । आकीण की नस्ल ऊँची होती थी और कथक पत्थर आदि के श द से भी भयभीत नही होते थे । युद्ध मे हाथी की अनिवाय आवश्यकता रहती थी । हाथी भी अनक जातियो के होत थे । गन्धहस्ती सर्वोत्तम हस्ती था । उसके मल-मूत्र म इतनी ग ध होती थी कि उससे दूसरे सभी हाथी मदोन्मत्त हो जाते थे । वह जिधर जाता सारी दिशाए ग ध से महक उठती थी ।

उस समय यद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था जिनका नामोल्लेख प्रस्तुत सूत्र में हुआ है—असि धारबनी करपत्र क्रकच कुठार कल्पनी

---

१ अन्नदत्तहरे तेणेमाई कण्हुहरेसढे । उत्तराध्ययन ७।५

२ पागार कारइत्ताण गोपुरट्टालगाणिय उस्सूलग ।

वही ९।१८ तथा ९।२ –२२ ।

३ हयाणीए गयाणीए रहाणीए तहेव य ।
पायत्ताणीए महया सव्वओपरिवारिए ॥

वही १८।२ ।

४ वही ११।१६ ।

५ मत्त च गन्धहत्थि वासुदेवस्स जेट्ठगं । वही २२।१ ।

गदा त्रिशूल क्षुरिका भल्ली पट्टिस मुसण्ढी मुद्गर मूशल शूल अंकुश वादित्र लौहरथ आदि।

उत्तराध्ययन में दास को भी एक काम-स्कन्ध माना गया है। उसका अर्थ है कामना-पूर्ति का हेतु। चार काम-स्कन्ध ये हैं—

१ क्षेत्र-वास्तु भूमि और गृह।
२ हिरण्य सोना चाँदी रत्न आदि।
३ पशु और
४ दास पौरुष।

जिस प्रकार क्षेत्र-वास्तु हिरण्य और पशु क्रीत होते थे उसी प्रकार दास भी क्रीत होते थे। इनका क्रीत सामग्री के रूप में उपयोग किया जा सकता था। दासो को स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त नही था।

वह युग धार्मिक मतवादो का युग था। बाह्य वर्षों और आचारों के आधार पर भी अनेक मतवाद प्रचलित थे। आदिकाल के मानव ऋजु-जड थे। अर्थात भगवान ऋषभ के समय के मानव सरल प्रकृति के तो थे किन्तु उन्हें अर्थ-बोध बहुत कठिनाई से होता था। विनीत होने पर भी विवेक की कमी थी। मध्यकाल के मानव ऋजु-प्राज्ञ थे। सरल होने के साथ बुद्धिमान भी थे। उनके जीवन में विनय और विवेक दोनों का सामजस्य था। किन्तु महावीर-युग के मानव वक्र जड थे। अर्थात् कुतर्क करनेवाले तथा विवेक से हीन थे। जन जन के मन में धर्म के प्रति निष्ठा प्रतिदिन कम होती जा रही थी। हिंसा झूठ लूट-पाट चोरी मायाचारी शठता कामासक्ति धनादि-सग्रह में आसक्ति मद्य मास भक्षण पर-दमन अहकार लोलुपता आदि दुर्गुण

---

१ असीहि अयसिवण्णाहि भल्ली हिंपट्टि सेहि य। उत्तराध्ययन १९।५५ ३८।
अवसोलोहरह जुत्तो जलन्ते समिलाजुए। वही १९।५६।
मुग्गरेहिं मुसढीहिं सूलेहिं मुसलेहिय। वही १९।६१।
तवनारायजुत्तेण भेत्तूण कम्मक चुय। वही ९।२२।
खुरेहि तिक्खधारेहि छुरियाहिं कप्पणीहिय। वही १९।६२।
तथा इसके लिए देखिए—वही ३४।१८ १९।५७ २१।५७ २२।१२ २।४७ २७।४-७ आदि।

२ खेत्त वत्थ हिरण्णं च पसवो दास-पोरुस।
चत्तारि काम-खन्धाणि तत्थ से उववज्जई॥
वही ३।१७।

३ पावदिट्ठी उ अप्पाण सासं दासव मन्नई। वही १।३९।

शैतान की आँत की तरह बढ़ रहे थे।[1] इतना होने पर भी ऐसे बहुत से व्यक्ति थे जो सदाचारी और धर्मपरायण थे। उनके जीवन के कण-कण में मन के अणु-अणु में धार्मिक भावनायें थीं। भगवान् महावीर ने द्रव्य-यज्ञ की अपेक्षा भाव-यज्ञ बाह्य शुद्धि की अपेक्षा अन्तरंग-शुद्धि द्रव्यसंयम की अपेक्षा भाव-संयम पर अधिक बल दिया। असमवसरण को हम चार प्रकार के वाद भी कह सकते हैं। चार प्रकार के वाद ये हैं—१ क्रियावाद २ अक्रियावाद ३ विनयवाद और ४ अज्ञानवाद।

उत्तराध्ययन में तापसों के कुछक प्रकार उल्लिखित हुए हैं। उस समय की सम्प्रदाय-बहुलता को देखते हुए ये बहुत अल्प हैं किन्तु इनका आकलन भी उस समय की धार्मिक स्थिति का परिचायक है—

| | |
|---|---|
| चीवरधारी | चीवर या वल्कल पहननेवाले। |
| अजिनधारी | चर्म के वस्त्र पहननेवाले। |
| नग्न | मृगचारिक उद्दण्डक आजीवक आदि सम्प्रदाय। |
| जटी | जटा रखनेवाले। |
| सघाटी | चिथरो को जोडकर पहननेवाले। |
| मुण्डी | सिर मडानेवाले। |
| शिखी | सिर पर शिखा रखनेवाले। |

---

१ उत्तराध्ययन ५।५ ६ ९ १ ७।५–७ २२ १ ।२ १७।१ १४।१६ १४।२१–२२ आदि। तथा केशि गौतमीय २३वाँ अध्ययन।

२ ज मग्गहा बाहिरिय विसोहिं।
न त सुदिट्ठ कुसला वयन्ति॥ उत्तराध्ययन १२।३८।

३ किरिय अकिरिय विणय अन्नाण च महामुनी
एएहिं चउहिं ठाणेहिं मेयन्ने किं पभासई।
वही १८।२३

सपुव्वमेव न लभेज्जपच्छा
एसोवमा सासय वाइयाण॥ वही ४।९ तथा उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ ४२८–४३।

४ चीराजिणं नागणिणं जडी-सघाडि-मुण्डिणं।
एयाणि वि न तायन्ति दुस्सीलं परियागयं॥ उत्तराध्ययन ५।२१ तथा उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन पृ ४३१।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उस समय जाति और वर्ण के आधार पर सामाजिक समठन था। जात-पाँत की बीमारी बहुत बढ़ी-चढ़ी हुई थी। शूद्रो की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। सर्वत्र उनका निरादर होता था। ब्राह्मणो का प्रभुत्व था। व धम के नाम पर हिंसा को प्रोत्साहन दे रहे थे। वे वेदो के वास्तविक रहस्य को नही जानते थे। क्षत्रिय और वश्यो के पास बहुत धन था। क्षत्रिय प्रजा का पालन करते और भोग विलासो म भी निमग्न रहते थे तथापि कुछ क्षत्रिय राजा जैन-दीक्षा भी लेते थे। वैश्य भारत म ही नही अपितु विदेशो में भी व्यापार हेतु जाते थे।

परिवार म माता पिता का स्थान सर्वोपरि था। परिवार के पालन-पोषण का दायित्व पिता पर था। पुत्र के प्रति सभी का स्वाभाविक स्नेह था। उसके बिना घर सूना-सूना था। पिता की मृत्यु के पश्चात वही परिवार का ध्यान रखता था। उसके दीक्षा लेने पर माता पिता को कष्ट होना स्वाभाविक था। नारियो की स्थिति भी ग भीर थी। वह भोग विलास की साधन मानी जाती थी। पुरुष जसा चाहता वसा कठपुतली की तरह उसको नचा सकता था परन्तु कितनी ही नारियाँ नर से भी आग थी वे पुरुषो का भी प्रतिबोध देती थीं। विवाह की प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। पुत्र और पुत्रियो के अधिकांश सम्बन्ध पिता ही निश्चित किया करता था। स्वयवर और ग धव विवाह की प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। बहु विवाह भी होते थे। कभी व्यापार के लिए विदेश म जानवाले वही पर विवाह कर लेते थे। कुछ दिन घरजमाई भी रह जाते थे। विवाह का कोई निश्चित नियम नही था किन्तु सुविधा के अनुसार विवाह कर लेते थे। किसीके मर जाने पर उसका दाह-सस्कार करने का प्रचलन था। दाह सस्कार प्राय पिता या पुत्र किया करता था।

आजीविका के लिए या युद्ध आदि के लिए पशु और पक्षियों का पालन किया जाता था। हाथी घोडा गाय बल आदि प्रमुख थे। भोजन मे घी दूध दही मिष्टान्न फल अन्न मुख्य था। कुछ लोग मास और मदिरा का भी उपयोग करते थे। क्षत्रिय लोग युद्ध म निपुण होते थे। वे चतुरगिणी सेना के साथ युद्ध करते थे। विविध प्रकार के अस्त्र और शस्त्र का भी उपयोग होता था। वैश्यो के साथ कभी-कभी उनकी पत्नियाँ भी समुद्र-यात्रा करती थी।

समाज में सुख और शान्ति का सचार करने के लिए शासन-व्यवस्था थी। शासन का अधिकार क्षत्रियो के हाथों में था। शासन करनेवाला व्यक्ति राजा के नाम से अभिहित किया जाता। वह देश की उन्नति का ध्यान रखता था। कभी-कभी अधिकार के नशे में पागल बनकर अपन कतव्य को भी वह विस्मृत हो जाता था। शत्रुओ का सदा भय बना रहता था।

चोर और डाकुओं का भी उपद्रव था उन्हें पकड़कर दण्ड देने के लिए न्याय व्यवस्था थी। अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था। कभी-कभी अपराधी को मृत्युदण्ड भी दिया जाता था। वध-स्थान पर ले जाते समय अपराधी को एक निश्चित वेश भूषा धारण करवाकर नगर म घुमाया जाता जिससे अन्य लोग इस प्रकार का अपराध न करें।

मानव की प्रवृत्ति त्याग-वैराग्य से हटकर भोग विलास की ओर अधिक थी। सन्तगण उन्हें सदा उद्बोधित करते रहते। अनेक धार्मिक दार्शनिक सम्प्रदाय थे। इन सबम श्रमण और ब्राह्मणों का आधिपत्य था। श्रमणो के त्याग-वैराग्य और उग्र तप का सवत्र स्वागत होता था। राजा भी उनके कोप से डरते थे। चारों वणवाले जैन श्रमण होते थे किन्तु क्षत्रिय और ब्राह्मण अधिक थे।

इस तरह उत्तराध्ययन में समाज और सस्कृति का जो सामान्य चित्रण मिलता है वह तत्कालीन अन्य ग्रन्थो का अवलोकन किए बिना पूर्ण नही कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उत्तराध्ययन के मख्यत धार्मिक ग्रन्थ होने से तथा किसी एक काल-विशेष की रचना न होने से इसम चित्रित समाज व सस्कृति से यद्यपि किसी एक काल विशेष का पूर्ण चित्र उपस्थित नही होता है फिर भी तत्कालीन समाज एव सस्कृति की एक झलक अवश्य मिलती है।

इस तरह दोनों ग्रन्थों का सूक्ष्म अवलोकन करने पर पता चलता है कि तत्कालीन समाज-व्यवस्था की एक झलक इनमें अवश्य मिलती है। यह निश्चित है कि उस समय समाज चार वर्णों म विभक्त था जाति-प्रथा का जोर था ब्राह्मणो का आधिपत्य था प्रजा धनसम्पन्न थी शूद्रों की स्थिति चिन्तनीय थी नारी विकास की ओर कदम उठा रही थी तथा धार्मिक एव दार्शनिक मतान्तर काफी थे। गौतम बुद्ध एव महावीर स्वामी के कारण इनम महत्त्वपूर्ण सुधार हुए और इन्हें नवीन प्रेरणा भी मिली।

●

# ग्रन्थ सूची


| | |
|---|---|
| अंगुत्तरनिकाय | सम्पा आर मोरिस ई हार्डी एवं मेबेल हण्ट पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८५-१९१ सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९६ हिन्दी अनुवाद अनुवादक भदन्त आनन्द कौसल्यायन कलकत्ता ई स १९५७। |
| अट्ठसालिनी | सम्पा डॉ पी वी बापट और आर डी वाडकर प्रथम संस्करण पूना १९४२। |
| अभिधर्मकोशम | ( भाष्य एवं व्याख्यासहित ) सम्पा स्वामी द्वारिकादास शास्त्री वाराणसी १९७१। |
| अभिधर्मकोश | ( फ्रेन्च अनु ) आचार्य नरेन्द्रदेव इलाहाबाद १९५८। |
| अभिधर्मकोश | सम्पा राहुल सांकृत्यायन काशी विद्यापीठ वाराणसी वि स १९८८। |
| अभिधर्मकोश भाष्य | सम्पा प्रहलाद प्रधान पटना १९६७। |
| अभिधम्मत्थसंगहो | ( प्रकाशिनी टीका ) सम्पा भिक्षु रेवतधम्म एवं रमाशंकर त्रिपाठी वाराणसी १९६७। |
| अभिधम्मत्थसंगहो | आचार्य अनुरुद्ध सम्पा धर्मानन्द कोशाम्बी सारनाथ १९४१। |
| अभिधान चिन्तामणि | हेमचन्द्र भावनगर वि स २४४१। |
| अभिधान राजेन्द्रकोश | ( सात खण्ड ) श्री विजय राजेन्द्रसूरिजी रतलाम वि स २४५ । |
| अर्थविनिश्चयसूत्रनिबन्धनम | सम्पा डा एन एच सान्तानी पटना १९७१। |
| अनुत्तरोपपातिक दशा | हिन्दी टीकासहित आत्मारामजी लाहौर १९३६। |
| अर्ली मोनास्टिक बुद्धिज्म | नलिनाक्ष दत्त कलकत्ता १९६ । |
| आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन खण्ड १ और २ | मुनि श्री नागराजजी कलकत्ता १९६९। |
| आउट लाइन्स ऑफ जैनिज्म | जे एल जैनी कैम्ब्रिज १९१६। |
| आत्ममीमांसा | प दलसुख मालवणिया बनारस १९५३। |

| | |
|---|---|
| आवश्यकसूत्र | ( मलयगिरि टीकासहित ) आगमोदय समिति बम्बई १९२८-१९३६ । |
| आवश्यकचूर्णि | रतलाम १९२८ । |
| इतिवुत्तक | सम्पा विण्डिस पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८९ । |
| इण्डियन फिलासफी भाग १ एव २ | डॉ एस राधाकृष्णन् लन्दन १९२९ । |
| इतिवुत्तक | सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९ । |
| इण्डियन बद्धिज्म | ए के वाडर दिल्ली १९७ । |
| उत्तराध्ययनसूत्र | जे शार्पेन्टियर उपसला सन् १९२२ अंग्रेजी अनुवाद हर्मन जैकोबी सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट-४५ नियुक्ति भद्रबाहु चर्णि जिनदास गणिमहत्तर रतलाम १९३३ शान्तिसूरि की शिष्यहिता बृहद्वृत्ति टीका बम्बई १९१६ १७ नमिचन्द्र की सुखबोधा टीका अहमदाबाद १९३७ लक्ष्मीवल्लभ विहित वृत्तिसहित आगमसंग्रह कलकत्ता १९३६ जयकीर्ति टीकासहित हीरालाल हंस राज जामनगर १९ ९ भावविजय विरचित वृत्तिसहित जैन आत्मानन्द सभा भावनगर वि स १९७४ विनय भक्ति सुन्दरचरण ग्रन्थमाला वेणप वि स २४६७-२४८५ कमल संयमकृत टीका के साथ यशो विजय जैन ग्रन्थमाला भावनगर १९२७ हिन्दी अनुवाद सहित आमोलक ऋषि हैदराबाद वि स २ ६ रतनलाल डोसी सैलाना वि स २ ८- ९ साध्वी श्री चन्दना आगरा वि स २ २९ हिन्दी टीका सहित आत्मारामजी जैनशास्त्रमाला कार्यालय लाहौर १९३९-४२ टीका जयन्त विजय आगरा १९२३ अंग्रेजी अनुवाद आर डी वाडेकर और एन वी वैद्य पूना १९५४ । |
| उत्तराध्ययनसूत्र एक परिशीलन | डॉ सुदर्शनलाल जैन सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति वाराणसी १९७ । |
| उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन | आचार्य तुलसी श्वे तेरापंथी महासभा कलकत्ता १९६८ । |

| | |
|---|---|
| उदान | सम्पा सैन्थाल पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८५ सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९ । |
| उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास | डॉ नलिनाक्ष दत्त तथा श्रीकृष्णदत्त वाजपेयी लखनऊ १९५६ । |
| उत्तर वदिक समाज एव सस्कृति | विजय बहादुर राव वाराणसी १९६६ । |
| ए हिस्ट्री ऑफ दि कैनोनिकल लिटरेचर | एच आर कापडिया सूरत १९४१ । |
| ए कम्प्रीहेंसिव हिस्ट्री ऑफ जनिज्म | ए के चटर्जी कलकत्ता १९७८ । |
| ऐन आउटलाइन आफ अर्ली बुद्धिज्म | डॉ अजयमित्र शास्त्री वाराणसी १९७५ । |
| ऐक्सपेक्टस आफ अर्ली जैनिज्म | डा जयप्रकाश सिंह वाराणसी १९७२ । |
| ऋग्वेद | प्रका श्रीपाद सातवलेकर भारत मुद्रणालय औन्ध नगर १९४ । |
| कल्पसूत्र | बम्बई १९३८ ई सिवान १९६८ ई । |
| कथावत्थु | भिक्षु जगदीश काश्यप देवनागरी सस्करण १९६१ । |
| कमग्रन्थ | ( कम विपाक ) देवेन्द्र सूरि श्री आत्मानन्द जन पुस्तक प्रचारक मण्डल २४४४ । |
| कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया | श्री जी एस घुय न्ययाक १९५ । |
| कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया | ई जे रैप्सन दिल्ली १९५५ । |
| खुद्दकनिकाय भाग १ | सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९ । |
| खुद्दकपाठ | भिक्षु धमरत्न सारनाथ १९५५ । |
| गौतमबुद्ध | आनन्द के कुमार स्वामी एव आई बी ह्वानर, सूचना प्रकाशन विभाग देहली । |
| चुल्लवग्ग | सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५६ । |
| चूल्लनिद्देश | सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९ । |
| जातक | भदन्त आनन्द कौसल्यायन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग बुद्धाब्द २४८५ । |

| | |
|---|---|
| जातककालीन भारतीय संस्कृति | वियोगी मोहनलाल महतो पटना विक्रमाब्द २ १५। |
| जातिभेद और बुद्ध | भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९४९। |
| जैन-आचार | मोहनलाल मेहता वाराणसी १९६६। |
| जैन-दर्शन | न्याय विजयश्री हेमचन्द्राचार्य जैन सभा पाटन सन् १९५६। |
| जैन-दर्शन | महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसी सन् १९५५। |
| जैन दर्शन | मोहनलाल मेहता सन्मति ज्ञानपीठ आगरा १९५९। |
| जैन दर्शन मनन और मीमांसा | मुनि नथमल राजस्थान १९६२। |
| जैनधर्म | प कैलाशचन्द्र शास्त्री भा दि जैनसघ मथुरा वी नि स २४७४। |
| जैनधर्म का प्राण | प सुखलाल सघवी सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली १९६५। |
| जैनआगम साहित्य में भारतीय समाज | जगदीशचन्द्र जैन वाराणसी १९६५। |
| जैन-दर्शन म आत्मविचार | लालचन्द्र जैन वाराणसी १९८४। |
| जैनधर्म की एतिहासिक रूपरेखा | डॉ सागरमल जैन ... |
| जैन-साहित्य का इतिहास ( पूर्व पीठिका ) | कैलाशचन्द्र शास्त्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वी नि स २४८९। |
| जैन-साहित्य का बृहद् इतिहास भाग २ | डॉ जगदीशचन्द्र जैन वाराणसी १९६६। |
| जैन साइकोलाजी | मोहनलाल मेहता जैनधर्म प्रचारक समिति अमृतसर १९५५। |
| जैन बौद्ध और गीता के आचार-दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन भाग १ एव २ | डॉ सागरमल जैन राजस्थान १९८२। |
| जैनतत्त्वकलिका | सम्पा अमरमुनि पजाब १९८२। |
| जैनधर्म का मौलिक इतिहास भाग १ | हस्तीमल जैन जयपुर १९७१ ई |

| | |
|---|---|
| भाग २ | जयपुर १९७४ ई । |
| जैनिज्म | कालेटी एण्ड ए एन उपाध्ये बम्बई १९७४ ई । |
| जैनिज्म इन बुद्धिस्ट लिट्रेचर | डॉ भागचन्द्र जैन नागपुर १९७२ । |
| डाक्ट्राइन्स ऑफ जैनाज | डब्ल सुब्रिंग दिल्ली १९६२ । |
| डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स | जी पी मलाल शेखर पालि टक्स्ट सोसायटी लन्दन १९६ । |
| डिक्शनरी आफ अर्ली बुद्धिस्टिक मोनास्टिक टर्म्स | सी एस उपासक वाराणसी १९७५ । |
| तत्वार्थसूत्र | उमा स्वाति ( मूल ) अनुवादक कैलाशचन्द्र प्रथम सस्करण मथुरा वी नि स २४७७ । |
| तत्वार्थवार्तिक | अकलकदेव काशी १९५३ १९५७ । |
| तांत्रिक बौद्ध-साधना और साहित्य | नागेन्द्र उपाध्याय काशी स २ १५ । |
| थेरीगाथा | सम्पा आर पिशल पालि टक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८३ नालन्दा देवनागरी सस्करण १९५९ । |
| द डायलाग्स ऑफ द बुद्ध | टी डब्ल्य रीज डविडस लन्दन १९ । |
| द लाइफ ऑफ बुद्ध एज लीजण्ड एण्ड हिस्ट्री | ई जे थामस लन्दन १९४९ । |
| दशन दिग्दशन | राहुल सांकृत्यायन इलाहाबाद १९४४ । |
| दशन और चिन्तन | प सुखलालजी अहमदाबाद १९५७ । |
| दी हिस्ट्री ऑफ बुद्धिस्ट थाट | ई ज थामस लन्दन १९६३ । |
| दी बैक ग्राउण्ड टू दी राइज ऑफ बुद्धिज्म | ए के नारायण दिल्ली १९८ । |
| दी रिलीजन्स ऑफ इण्डिया | ए बाथ दिल्ली १९८ । |
| दी अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म | वी ए स्मिथ आक्सफोर्ड १९२४ । |
| दीघनिकाय | सम्पा टी डब्ल्य रीज् डेविडस एव जे ई कार पेन्टर पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८९ –१९११ सम्पादक भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५८ |

| | |
|---|---|
| | हिन्दी अनुवाद अनुवादक राहुल सांकृत्यायन सारनाथ १९३६ । |
| दीपवंश | सम्पा ओल्डेनबर्ग लन्दन १८७९ । |
| दीपवंश एण्ड महावंश | विल्हेल्म गायगर कोलम्बो १९ ८ । |
| दशवैकालिक | आत्मारामकृत हिन्दी टीकासहित महेन्द्रगढ़ वि सं० १९८९ । |
| धम्मपद | सम्पा एस एस थेर पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९१४ नारद महाथेर कलकत्ता १९७ नालन्दा देव-नागरी संस्करण अंग्रेजी अनुवाद अनुवादक एफ मक्सम्यूलर सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट जिल्द १ ( भारतीय संस्करण ) दिल्ली १९६५ एस राधा कृष्णन मद्रास १९६९ हिन्दी अनुवाद भिक्षु धमरक्षित मोतीलाल बनारसीदास तृतीय संस्करण १९८३ सम्पा भदन्त आनन्द कौसल्यायन सारनाथ बुद्धाब्द २४८४ अवधकिशोर नारायण महाबोधि ग्रन्थमाला वि स १९९५ । |
| धम्मपद अटठकथा | बुद्धघोष सम्पादित एच सी नामन और एल एस तैलंग ५ जिल्दो म सम्पन्न पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९ ६–१५ अंग्रेजी अनुवाद बुद्धिस्ट लीजेण्ड ई डब्ल्यू बर्लिंगेम कैम्ब्रिज १९२१ भिक्षु धमरक्षित ( अप्रकाशित ) धर्मानन्द नामक स्थविर तथा ज्ञानेश्वर स्थविर द्वारा सिंहली लिपि में सम्पादित कोलम्बो १९३१ । |
| धम्मचक्कप्पवत्तनसुत्त | भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९४९ । |
| धम और दर्शन | देवेन्द्रमुनि शास्त्री आगरा १९६७ । |
| धर्म और समाज | प सुखलाल सघवी बम्बई १९५१ । |
| नन्दिसूत्र | मुनि हस्तीमलजी द्वारा सम्पादित जैन आगम ग्रन्थमाला । |
| नीतिशास्त्र का समीक्षात्मक अध्ययन | गुलाम मुहम्मद याहया खाँ वाराणसी १९८३ । |
| निशीथचूर्णि | जिनदास गणी सन्मति ज्ञानपीठ आगरा सन् १९५७ । |

प्राचीन पालि साहित्य से
ज्ञात संस्कृति का एक अध्ययन
(अप्रकाशित शोधप्रबन्ध) कृष्णकान्त त्रिवेदी बी एच य १९७७।
प्राचीन भार ीय वश भूषा मोतीच द्र इलाहाबाद स २ ७।
प्राचीन भारत का सामा
जिक इतिहास जयशकर मिश्र पटना १९८ ।
पाणिनि अष्टाध्यायी निणयमागर प्रेस १९२९।
पाणिनिकालीन भारतवष वासुदेवशरण अग्रवाल पटना वि स २ १२।
पालि साहित्य का इतिहास भरतसिंह उपाध्याय प्रयाग सवत् २ ८।
पद्मनन्दि पचविंशतिका जन सस्कृति सरक्षक सघ सोलापुर १९६२।
प्राकृतभाषा और साहित्य
का आलोचनात्मक इतिहास नेमिच द्र शास्त्री वाराणसी १९६६ ।
पालि लिटरचर एण्ड
लग्वज वि हे म गायगर कलकत्ता १९४३।
प्राचीन भारतीय कालगणना
एव पारम्परिक सवत्सर रामजी पाण्डय वाराणसी १९८ ।
प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया एन रतिलाल मेहता बम्बई १९३९।
बुद्धचर्य्या राहुल साकृत्यायन सारनाथ १९५२।
बुद्धा ओल्डनबग ( जमनी से अग्रजी अनुवाद ) १८८२।
बुद्ध-वचन भद त आन द कौस यायन सारनाथ १९५८।
बुद्धिज्म इट्स हिस्ट्री एण्ड
लिटरेचर श्रीमती रीज डविड्स लन्दन १८९६।
बुद्धिस्ट इण्डिया श्रीमती रीज डविड्स कलकत्ता १९५ ।
बुद्धिस्टिक स्टडीज विमलाचरण लाहा कलकत्ता १९३१।
बुद्धिस्ट फिलासफी ए बी कीथ वाराणसी १९६३।
बोधिचर्यावतार सम्पा पी एल वैद्य दरभगा १९६ शान्तिदेव
लखनऊ १९५५।
बुद्धकालीन समाज और धर्म मदनमोहन सिंह पटना १९७२।
बुद्धकालीन भारतीय भूगोल भरतसिंह उपा याय प्रयाग वि स २ १८।
बौद्धधर्म के विकास का
इतिहास डॉ गोविन्दचन्द्र पाण्डेय लखनऊ १९६३।
बौद्धधर्म के २५ वष सम्पा पी वी बापट दिल्ली १९५६।

| | |
|---|---|
| बौद्धधर्म-दर्शन | आचार्य नरेन्द्रदेव पटना १९५६। |
| बौद्धधर्म के मूल सिद्धान्त | भिक्षु धर्मरक्षित वाराणसी १९५८। |
| बौद्धधर्म-दर्शन तथा साहित्य | भिक्षु धर्मरक्षित वाराणसी १९५६। |
| बौद्धचर्या विधि | भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९५६। |
| बौद्धयोगी के पत्र | भिक्षु धर्मरक्षित सारनाथ १९५६। |
| बौद्ध-दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन भाग १ तथा २ | भरतसिंह उपाध्याय कलकत्ता वि स २ ११। |
| बौद्ध दर्शन मीमासा | आचार्य बलदेव उपाध्याय वाराणसी तृतीय सस्करण १९७८। |
| बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक | परशुराम चतुर्वेदी इलाहाबाद १९५८। |
| बौद्ध-सस्कृति का इतिहास | डॉ भागचन्द्र जैन भास्कर नागपुर १९७२। |
| भगवतीसूत्र | आगमोदय समिति बम्बई १९२१ ई । |
| भगवान गौतमबुद्ध | डॉ विद्यावती मालविका वाराणसी १९६६। |
| भगवान बुद्ध | आचार्य धर्मानन्द कौशाम्बी बम्बई १९५६। |
| भगवान महावीर | शोभनाथ पाठक भोपाल १९८४। |
| भारतीय दर्शन | उमेश मिश्र लखनऊ १९६४। |
| भारतीय दर्शन भाग १ एव २ | डॉ एस राधाकृष्णन् दिल्ली १९७३। |
| भारतीय दर्शन | बलदेव उपाध्याय वाराणसी १९४५। |
| भारतीय दर्शन | वाचस्पति गैरोला लोक भारतीय प्रकाशन द्वितीय सस्करण १९६६। |
| भारतीय दर्शन | नन्दकिशोर देवराज इलाहाबाद १९४१। |
| भारतीय दर्शन | सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एव धीरेन्द्रमोहन दत्त पटना १९६१। |
| भारतीय दर्शन में मोक्ष चिन्तन | डॉ अशोककुमार लाड भोपाल १९७३। |
| भारतीय दर्शन की रूपरेखा | एम हिरियन्ना दिल्ली १९७३। |
| भारतीय संस्कृति म जैनधर्म का योगदान | डॉ हीरालाल जैन भोपाल १९६२। |
| भारतीय सस्कृति और साधना भाग २ | गोपीनाथ कविराज पटना १९६३। |

| | |
|---|---|
| मज्झिमनिकाय | सम्पा वी ट्रेन्कनर आर चामस एव श्रीमती रीज डविडस पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८८–१९२५ सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५४ हिन्दी अनुवाद राहुल सांकृत्यायन सारनाथ १९६४। |
| महावंश | सम्पादित डब्ल्यु गायगर पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९ ८ भद त आनन्द कौसल्यायन हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग १९४२। |
| महापरिनिब्बानसुत्त | भिक्षु धर्मरक्षित वाराणसी १९५८। |
| महानिद्देस | सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९५९। |
| महावग्ग | नालन्दा से सम्पादित १९५६ ई । |
| महावीर हिज लाइफ ऐण्ड टीचिंग | डॉ विमलाचरण लाहा ल दन १९३७। |
| महावीर वाणी | सम्पा बेचरदास डोसी राजघाट वाराणसी १९६६। |
| माध्यमिककारिका | सम्पा पसे सेन्ट पीटसबग १९ ३–१९१ । |
| मिलिन्दपन्ह | सम्पा वी ट्रेन्कनर पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९२८। |
| मनुस्मृति | चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी १९६५ ई । |
| मनुअल ऑफ इण्डियन बुद्धिज्म | एच कन स्ट्रासबग १८९६। |
| मनोविज्ञान की ऐतिहासिक रूपरेखा | डॉ सीताराम जायसवाल लखनऊ १९७२। |
| योगसूत्र | पतजलि बम्बई १९१७। |
| लाइफ आफ बुद्धा | राकहिल लन्दन १८८४। |
| विनयपिटक | सम्पा एच ओल्डनबग पालि टक्स्ट सोसायटी लन्दन १८७९–८४ सम्पादित भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा देवनागरी सस्करण १९५६–५८। |
| विभङ्ग | सम्पा श्रीमती रीज डेविड्स पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९ ४ सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा १९६ । |
| विभङ्गअटठकथा ( सम्मोह विनोदिनी ) | सम्पा ए पी बुद्धदत्त थेर पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १९२३। |

| | |
|---|---|
| विभाविनी टीका ( अभिधम्मत्थ संगहो की विभाविनी टीका) | सम्पा रेवतधम्म वाराणसी १९६५ । |
| विसुद्धिमग्ग | आचार्य बुद्धघोष सम्पा धर्मानन्द कोशाम्बी बम्बई १९४ । |
| विशुद्धिमार्ग ( विसुद्धिमग्ग की हिन्दी ) | अनु भिक्षु धमरक्षित सारनाथ १९५७ । |
| विपाकसूत्र | बडौदा वि सं १९२२ । |
| विशेषावश्यकभाष्य ( उत्तर भाग ) | जिनभद्रगणि क्षमा श्रमण जन सोसायटी अहमदाबाद सन् १९३७ । |
| व्यवहारभाष्य ( निर्युक्ति भाष्य तथा मलयगिरि विरचित विवरणयुक्त ) | केशवलाल प्रेमचन्द्र अहमदाबाद वि सं १९८२–८५। |
| शाक्य | श्रीमती रीज डविडस केगेनपौल १९३१ । |
| शूद्रो का प्राचीन इतिहास | आर एस शर्मा अनुवादक विजय ठाकुर दिल्ली १९७९ । |
| श्रीमद्भगवद्गीता | गीता प्रेस गोरखपुर । |
| संयुक्तनिकाय | सम्पा ल्योनफीयर पालि टेक्स्ट सोसायटी लन्दन १८८४–१९ ४ सम्पा भिक्षु जगदीश काश्यप नालन्दा प्रकाशन १९५४ । |
| सम प्राब्लम्स इन जैन साइकोलाजी | डॉ कलघाटगी धारवाड १९६१ । |
| समवायाङगसूत्र | मुनि घासीलाल प्रथम आवृत्ति राजकोट १९६२ । |
| सिस्टम्स ऑव बुद्धिस्ट थाट | यामाकामी सोगेन कलकत्ता १९१२ । |
| सुत्तनिपात | सम्पा पी व्ही बापट विश्व-भारती शान्तिनिकेतन १९२४ भिक्षु धर्मरत्न सारनाथ १९६१ । |
| सूत्रकृताङ्ग | नियक्तिसहित आगमोदय समिति बम्बई १९१७ । |
| सेन्ट्रल फिलासफी ऑव बुद्धिज्म | डॉ टी आर वी मूर्ति लन्दन १९६ । |
| सोशल आगनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम | रिचर्ड फिक कलकत्ता १९२ । |

| | |
|---|---|
| स्टडीज इन दी ओरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म | गोविन्दचन्द्र पाण्डेय इलाहाबाद १९५७। |
| स्टडीज इन जन फिलासफी | नथमल टाटिया वाराणसी १९५१। |
| स्याद्वादमञ्जरी | आचाय मल्लिषण सम्पा डॉ जगदीशचन्द्र जन आगास ( राज ) १९७ । |
| स्लेवरी इन एश्यण्ट इण्डिया | डी आर चानना दिल्ली १९५७। |
| हर्ट ऑफ जैनिज्म | एस स्टीवन्सन लन्दन १९१५। |
| हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर जिल्द २ | विण्टरनित्ज कलकत्ता १९३८। |
| हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर भाग १ एव २ | डा विमलाचरण लाहा लन्दन १९३३। |
| हिन्दू-सभ्यता | डा राधाकुमुद मुकर्जी पटना १९७१। |
| त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र | हेमचन्द्र सूरि मबई वि स १९६५। |
| ज्ञाताधमकथा | हिदी अनवाद आमोलक ऋषि हैदराबाद वी स० २४४६। |


